हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर पुराणों का प्रभाव

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर पुराणों का प्रभाव

[इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि
के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

लेखिका
डा० शशि अग्रवाल, एम० ए०, डी० फिल्०

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

प्रकाशक—
हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण :: २०००, १६६०
मूल्य ६)

मुद्रक : श्री प्रेमचन्द मेहरा, न्यू ईरा प्रेस, ८ साउथ रोड, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

पुराणों से उद्भुत कृष्ण-भक्ति परम्परा भारतीय जीवन एवं भारतीय साहित्य में अद्भूत गरिमा से ओत-प्रोत होकर प्रतिष्ठापित हुई। मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में पुष्टिमार्गी भक्त-प्रवरों ने जिस भाव विह्वलता और आर्द्रता के साथ कृष्ण-भक्ति की रसधारा बहाई है वह अक्षुण्ण, अपरिमेय, जीवनदायिनी अथ च कल्याणमयी है। प्रस्तुत-ग्रन्थ "हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर पुराणों का प्रभाव" की लेखिका डाक्टर शशि अग्रवाल ने बड़े चिन्तन-मनन के साथ कृष्णभक्ति-काव्य और उसके मूल-स्रोत पुराणादि का विस्तृत विवेचन किया है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद की ओर से इस विशिष्ट-ग्रन्थ का प्रकाशन करते हुए हमें हर्ष होता है।

इस ग्रन्थ में कृष्णभक्ति-काव्य में निहित दार्शनिक विचारधारा, राधा की उपस्थापना, अवतारवाद, सृष्टि-उत्पत्ति आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर पुराणों के संदर्भ से व्याख्या प्रस्तुत की गई है। आशा है, विद्वज्जन इस अध्ययन को उपयोगी पावेंगे और साहित्य-जगत् में यह ग्रन्थ समादृत होगा।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

विद्या भास्कर
मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष

परिचय

अनेक शताब्दियों से भारतवर्ष में हिन्दू-धर्म का जो रूप सर्वसाधारण में प्रचलित है उस पर प्रधानतया पौराणिक देवतवाद, विश्वास, कर्मकांड आदि की छाप मुख्य है। वर्तमान हिन्दू-धर्म का मूलाधार अवश्य वैदिक धर्म तथा उसके बाद स्मृतिकाल में प्रचलित स्मार्त-धर्म कहा जा सकता है किन्तु इन प्राचीन धार्मिक रूपों के अवशेष वास्तव में वर्तमान हिन्दू-धर्म में बहुत कम रह गये हैं। यही कारण है कि हिन्दी, मराठी, बंगाली, कन्नड, तमिल आदि भारत की आधुनिक भाषाओं का मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य पौराणिक विचारावली से विशेष प्रभावित है। वास्तव में यह साहित्य पुराणों की पृष्ठभूमि की विस्तृत जानकारी के बिना ठीक से नहीं समझा जा सकता है। इसी उद्देश्य से कुमारी शशि अग्रवाल को "हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर पुराणों का प्रभाव" शीर्षक विषय 'डी० फिल्०' के लिए कार्य करने को मैंने दिया था।

मुझे बहुत प्रसन्नता है कि कुमारी शशि अग्रवाल ने अनेक वर्ष अध्ययन करके अत्यन्त परिश्रम और योग्यता के साथ अपने अध्ययन को पूरा किया और उपर्युक्त विषय के थीसिस पर प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग से डी० फिल्० की उपाधि प्राप्त की। प्रस्तुत-ग्रंथ इसी थीसिस का संशोधित और परिवर्द्धित रूप है। मुझे विश्वास है कि मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी इसमें प्रचुर मात्रा में मौलिक उपयोगी सामग्री पायेंगे और यह उनके अध्ययन को नई दिशाओं में प्रेरित करने में सहायक सिद्ध होगा।

प्रस्तुत ग्रंथ के प्रारम्भिक अध्यायों में पुराणों तथा हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य का संक्षिप्त परिचय देने के उपरांत हिन्दी मध्ययुगीन साहित्य की उपर्युक्त धारा पर पुराणों के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। पृथक्-पृथक् अध्यायों में दार्शनिक विचारधारा, भक्तिभावना, राधा की कल्पना, विष्णु के अवतारों के विस्तार, सृष्टि उत्पत्ति तथा राजवंशों के वर्णन और काव्य रचना पर प्रभावों का विस्तृत अध्ययन है। एक प्रकार से ग्रंथ में दार्शनिक तथा धार्मिक प्रभावों का अध्ययन विस्तार से किया गया है,

काव्यगत अथवा भाषागत समीक्षा गौण है। यह एक प्रकार से स्वाभाविक है, क्योंकि पुराण-साहित्य प्रधानतया धार्मिक है, काव्य का अंग उसमें गौण है।

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य की अन्य धाराओं, विशेषतया रामकाव्य की धारा पर पुराणों के प्रभाव का अध्ययन भी रोचक संबद्ध विषय हो सकता है, जिसे आशा है, कोई अन्य अनुसंधानकर्ता अपने भावी थीसिस का विषय बनायेगा। इसी प्रकार यदि समस्त अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के मध्ययुगीन साहित्यों पर पुराणों के प्रभाव का अध्ययन हो सके तो उस काल के भारतीय साहित्य तथा विचारधारा पर इस प्रभाव का पूर्ण मूल्यांकन हो सकेगा। बहुत संभव है कि प्रस्तुत अध्ययन इस दिशा के भावी अध्ययनों को प्रेरित करे।

डा० शशि अग्रवाल को मैं इस उपयोगी अध्ययन को पूर्ण करके प्रकाशित करने के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ। आशा करता हूँ कि उनका यह विद्वत्ता पूर्ण ग्रंथ देवदत्त के पुत्र के समान एक साथ 'ज्येष्ठ-कनिष्ठ' बनकर नहीं रह जायगा बल्कि उनके अध्ययन-क्रम का प्रथम पुष्प सिद्ध होगा।

धीरेन्द्र वर्मा

काशी,
मार्गशीर्ष, सं० २०१७ वि०

समर्पण

पूज्य भाभी और बाऊजी

की

पुण्य-स्मृति में

भूमिका

भारतवर्ष में कृष्ण-भक्ति की परम्परा अति प्राचीन है। कृष्ण-भक्ति का मूल, द्वैपायन व्यास द्वारा प्रणीत श्रीमद्भागवत तथा अन्य वैष्णव पुराणों में सन्निहित है। हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में भक्ति, दर्शन, सृष्टि उत्पत्ति, अवतार वर्णन और राजवंश वर्णन आदि अनेक काव्य सम्बन्धी ऐसी विशेषताएँ हैं जो पुराणों से ही आई हैं। अतः हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर पौराणिक प्रभाव का अध्ययन अपना अलग ही महत्त्व रखता है। कृष्ण-काव्य पर अनेक पुस्तकें हैं परन्तु उस पर पौराणिक प्रभाव दिखाने की नवीनता इस प्रबंध की विशेषता है। इसी दृष्टिकोण से इस प्रबंध की सामग्री संकलित की गई है। प्रस्तुत-प्रबंध आठ अध्यायों में विभक्त है।

पहला अध्याय तीन भागों में विभाजित है जिनमें क्रमशः हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य को प्रभावित करनेवाले महापुराणों, अन्य महापुराणों तथा उप-पुराणों का परिचय दिया गया है। महापुराणों के विषय में विद्वानों में प्रायः यह मतभेद है कि कौन पुराण महापुराण हैं और कौन उपपुराण। प्रस्तुत प्रबंध में पार्जिटर, विल्सन आदि कतिपय प्रसिद्ध विद्वानों के विचारानुसार महापुराणों की सूची दी गई है। अठारह महापुराणों में वैष्णव पुराणों का हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर अधिक प्रभाव पड़ा है, अतः उनका परिचय अलग दिया गया है, तथा शेष शैव और ब्राह्म पुराणों का अलग। पुराण-साहित्य के विषय में जितने भी विभिन्न भारतीय और विदेशी विद्वानों के विचार उपलब्ध हुए, लगभग उन सभी का यथावश्यक वैज्ञानिक प्रयोग किया गया है। महापुराणों का अध्ययन इस अध्याय की विशेषता है।

दूसरे अध्याय में हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। १५०० ई० के पूर्व से लेकर वर्तमान काल तक के हिन्दी कृष्ण-भक्त कवियों की जीवनी तथा काव्य पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में कृष्ण भक्त कवियों का एक विशिष्ट स्थान है। हिन्दी साहित्य के विकास में इनका विशेष योग है और बिना इनके काव्य को पढ़े हिन्दी साहित्य के विकास का ज्ञान संभव नहीं। इनका प्रभाव समस्त हिन्दी-काव्य पर है। सूर की कविता संसार के महान् कवियों की कृतियों में अपना विशिष्ट स्थान रखती

है। वास्तव में हिन्दी कृष्णभक्त कवियों में सूरदास इतने महान् भक्त, दार्शनिक और संगीताचार्य हैं कि उनकी जोड़ का हिन्दी में तुलसी को छोड़ दूसरा कवि दिखाई ही नहीं पड़ता। नंददास के काव्य में माधुर्य प्रचुर मात्रा में है। इनके पद-लालित्य और भावावलि की प्रशंसा हिन्दी-संसार में पूर्ण रूप से व्याप्त है। परमानन्द का 'परमानन्द सागर' भी सूरसागर के समकक्ष रखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त हिन्दी के लगभग सभी कृष्णभक्त-कवियों के काव्य की अपनी अलग ही विशेषता है। कृष्णभक्त-कवियों के काव्य में केवल काव्य-सौंदर्य और संगीत का माधुर्य ही नहीं है वरन् कृष्ण-भक्ति का अविरल स्रोत और भक्ति के विविध रूप भी दिखाई पड़ते हैं। श्रीकृष्ण की आराधना केवल ब्रज में ही नहीं हुई, समस्त भारत में कृष्ण-भक्ति फैली हुई है। कृष्णभक्ति काव्य बंगाली, गुजराती और मैथिली साहित्य का भी विशेष अंग है। भगवान् के अनेक अवतार हुए परन्तु जनता पर जितना गहरा प्रभाव ब्रज के कृष्ण का पड़ा उतना किसी और का नहीं। वास्तव में कृष्णभक्ति-काव्य अनूठा है और उसका संक्षिप्त अध्ययन इस अध्याय की विशेषता है।

तीसरे अध्याय में हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य की दार्शनिक विचारधारा पर पौराणिक काव्य के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। यह अध्याय आठ भागों में विभक्त है। हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के ब्रह्म, जीव, माया, मोक्ष, जगत्, ब्रज, वृन्दावन आदि, तथा राधा और रास के वर्णन पर पुराणों की दार्शनिक विचारधारा के प्रभाव का अध्ययन इस अध्याय की विशेषता है। ब्रह्म, माया आदि दार्शनिक तत्त्वों के विवेचन में वेदान्त और उपनिषदों की दार्शनिक विचारधारा का भी अध्ययन किया गया है।

चौथे अध्याय में हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में वर्णित भक्ति और उस पर पुराणों के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। यह अध्याय पाँच भागों में विभाजित है जिनमें क्रमशः सगुण-निर्गुण भक्ति, भक्ति के प्रकार, नवधा भक्ति, भक्ति की रसानुभूति और भक्ति के विविध भाव आदि पर विचार किया गया है और इस पर पौराणिक प्रभाव दिखाया गया है। वैदिक काल से चली हुई भक्ति की अजस्र धारा जो उपनिषदों, ब्राह्मण-ग्रंथों, स्मृतियों और पुराणों के मार्ग से बहती हुई अपना रूप और मार्ग बदल चुकी थी, मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन के महाप्रवाह में विलीन हो गई। फिर भी इस भक्ति की धारा पर उपनिषदों और पुराणों का पर्याप्त प्रभाव दिखलाई पड़ता है, जिसका अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

पाँचवें अध्याय में राधा का विशेष अध्ययन किया गया है। कृष्णभक्ति-शाखा के प्रत्येक वैष्णव संप्रदाय में राधा की किसी न किसी रूप में मान्यता है, किंतु इन वैष्णव संप्रदायों में राधा का आविर्भाव कब हुआ, किस प्रकार हुआ और संस्कृत साहित्य, पौराणिक साहित्य और उपनिषदों आदि में राधा का क्या स्वरूप था इन सब बातों पर प्रकाश डालना इस अध्याय की विशेषता है। भक्ति के विभिन्न वैष्णव संप्रदायों में राधा का जैसा रूप है, उसका भी अध्ययन किया गया है। उपलब्ध सामग्री का आवश्यक वैज्ञानिक प्रयोग और उसकी परख में सर्वथा मौलिक दृष्टिकोण रखने का प्रयत्न हुआ है।

छठवें अध्याय में भगवान् विष्णु के विभिन्न अवतारों का अध्ययन किया गया है। हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत विष्णु के अवतारों का वर्णन मुख्यतः सूरदास ने किया है। उनके इस वर्णन पर श्रीमद्भागवत महापुराण का पूर्ण प्रभाव दिखलाया गया है। पुराणों के अन्तर्गत विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन है किंतु हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अंतर्गत सूरदास ने विष्णु के सत्रह अवतारों का ही वर्णन किया है, अतः इन्हीं सत्रह अवतारों पर पौराणिक प्रभाव दिखलाया गया है। श्रीमद्भागवत तथा अन्य वैष्णव पुराणों में सबसे अधिक विस्तार से श्रीकृष्ण अवतार का वर्णन मिलता है। हिन्दी के कृष्णभक्ति-काव्य में भी श्रीकृष्ण अवतार का वर्णन सब अवतारों से अधिक विस्तार से हुआ है। हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में श्रीकृष्ण-अवतार पर पौराणिक प्रभाव भी इस अध्याय में दिखलाया गया है।

सातवें अध्याय में हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में जो सृष्टि-उत्पत्ति और राज-वंशों का वर्णन दिया गया है, उस पर पौराणिक प्रभाव का अध्ययन किया गया है। सभी पुराणों की वंशावली का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि उसमें द्यावा-पृथ्वी का सा अन्तर है। यही नहीं, यदि हम किसी भी पुराण की वंशावली को बिना किसी दूसरे से तुलना किये हुए क्रमशः देखते हैं, तो उसमें भी भ्रम होता है। श्रीमद्भागवत और विष्णु पुराण इस दोष से किसी सीमा तक मुक्त हैं। इन्हीं दोनों का विशेष प्रभाव सूर के वंश वर्णन पर पड़ा है, जिसका अध्ययन किया गया है।

आठवें अध्याय में हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के काव्य सम्बन्धी अंशों पर पौराणिक काव्य के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। हिन्दी कृष्णभक्त कवियों में नन्ददास के ही काव्य पर श्रीमद्भागवत के काव्य-सम्बन्धी अंशों का विशेष प्रभाव पड़ा है, अतः इसका अध्ययन विस्तार से किया गया है।

मेरा यह कार्य जिनके परम अनुग्रह से पूर्ण हो सका, उन श्रद्धेय डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मेरा परम कर्त्तव्य है। उनके न केवल पांडित्यपूर्ण निर्देशन द्वारा मेरे अनुसंधान-कार्य का मार्ग सुगम हुआ, वरन् उनके द्वारा सदैव अध्ययन के लिए प्रोत्साहन भी प्राप्त होता रहा। प्रस्तुत प्रबंध उन्हीं के आशीर्वाद और अनुग्रह का परिणाम है। हाँ, प्रबंध की न्यूनताएँ अवश्य मेरी अपनी हैं। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल तथा डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी की मैं अत्यन्त आभारी हूँ क्योंकि उन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये जिनके फलस्वरूप मेरा यह कार्य अधिक पूर्ण हो सका। डॉ० रामकुमार वर्मा ने सदैव अपने आशीर्वाद और प्रोत्साहन द्वारा मेरा उत्साह बढ़ाया और समय-समय पर उन्होंने मेरी सहायता की। उनके प्रति आभार प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्द ही नहीं हैं।

इस अवसर पर मैं डॉ० शैलकुमारी को नहीं भूल सकती जिनके सतत-स्नेह द्वारा मुझे इस प्रबन्ध के लिए सदैव प्रोत्साहन मिलता रहा, परन्तु धन्यवाद देकर मैं उनकी सद्भावनाओं की अवहेलना नहीं करना चाहती। अन्य मान्यवर विद्वानों के साथ ही श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी जी द्वारा भी समय-समय पर मुझे सहायता प्राप्त होती रही जिसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। इस अवसर पर मैं उन सभी विद्वानों का स्मरण करती हूँ जिनके ग्रन्थों से मैंने अपने अध्ययन में प्रेरणा एवं सहायता पाई। इनके अतिरिक्त उन समस्त शुभचिन्तकों की गणना करना कठिन ही नहीं वरन् असंभव है जिनके शुभ आशीर्वाद और शुभ कामनाएँ इस कार्य की पूर्ति में सहायक हो सकीं।

अंत में, मैं अपने पाठकों से नम्र-निवेदन करूँगी कि हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर मैंने जो पौराणिक प्रभाव दिखाया है उन्हें मैं अंतिम वाक्य कहने का दावा नहीं करती। परंतु हिन्दी के विज्ञ-आलोचकों से यह विनम्र आशा अवश्य करती हूँ कि वे उक्त सामग्री के निजी परीक्षण और निरीक्षण के बाद लेखिका के मन की जाँच करें। पुस्तक में प्रेस सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ रह गई हों तो पाठक क्षमा करेंगे। यदि हिन्दी साहित्य के पाठकों और मर्मज्ञों को इसमें कुछ रोचकता मिली तो मैं अपने श्रम को सफल समझूँगी।

—लेखिका

विषय-सूची

परिशिष्ट

———

अध्याय १

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य को प्रभावित करनेवाले पुराणों का परिचय

संस्कृत साहित्य में अठारह महापुराण और अठारह उपपुराण प्रसिद्ध हैं। महापुराण निम्नलिखित हैं :—

१—श्रीमद्भागवत	१०—भविष्य पुराण
२—विष्णु पुराण	११—गरुड़ पुराण
३—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण	१२—ब्रह्माण्ड पुराण
४—बृहन्नारदीय पुराण	१३—ब्रह्म पुराण
५—पद्म पुराण	१४—वायु पुराण
६—वामन पुराण	१५—स्कंद पुराण
७—मत्स्य पुराण	१६—मार्कण्डेय पुराण
८—वाराह पुराण	१७—अग्नि पुराण
९—कूर्म पुराण	१८—लिंग पुराण

इन अठारह महापुराणों में से प्रथम छः पुराण वैष्णव पुराण हैं। अन्य बारह पुराण शैव और ब्राह्म हैं।

अठारह महापुराणों में से लगभग आधे पुराणों का सम्बन्ध वैष्णव धर्म तथा कृष्ण भक्ति से नितांत स्फुट है। शेष में श्रीमद्भागवत, विष्णु, ब्रह्मवैवर्त्त, नारद और पद्म—इन पाँच पुराणों में विष्णु के आध्यात्मिक रूप तथा महिमा का व्यापक और सर्वाङ्ग सुन्दर वर्णन किया गया है, जिसने हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य को बहुत प्रभावित किया है। वामन, मत्स्य, वाराह और कूर्म—इन चार पुराणों का नामकरण तथा निर्माण भगवान् विष्णु के चार अवतारों को लक्ष्य करके रखा गया है, किन्तु हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य को प्रभावित करने में इनका बहुत कम हाथ है। कूर्म पुराण यद्यपि नाम से वैष्णवपुराण प्रतीत होता है; किन्तु इसमें शिव की महानता को विष्णु से अधिक दिखाने का प्रयत्न किया गया है। अतः कूर्म पुराण को वैष्णव पुराणों के अन्तर्गत भी नहीं रखा

जा सकता। अन्य सभी वैष्णव पुराणों का हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर बहुत प्रभाव पड़ा है। उनका परिचय आगे दिया जाता है।

(१) **श्रीमद्भागवत**—भागवतकार के अनुसार यह निगम कल्पतरु का स्वयं गलित फल है जिसे शुकदेव जी ने अपनी मधुर वाणी से संयुक्त कर अमृतमय बना डाला है।[१] वस्तुतः यह संस्कृत साहित्य का एक अनुपम रत्न है और भक्ति शास्त्र का सर्वस्व है। वैष्णव आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी के समान भागवत को भी अपना उपजीव्य माना है। वैष्णव धर्म के अवांतरकालीन लगभग समस्त धार्मिक सम्प्रदाय भागवत से ही प्रभावित हैं, विशेषतया वल्लभ-सम्प्रदाय तथा चैतन्य-सम्प्रदाय, जो उपनिषद्, भगवद्गीता तथा ब्रह्मसूत्र जैसे प्रस्थानत्रयी के साथ भागवत पुराण को भी अपना उपजीव्य मानते हैं। वल्लभाचार्य भागवत पुराण को महर्षि व्यास देव की 'समाधि भाषा' कहते हैं। अर्थात् जिन परम तत्त्वों की अनुभूति व्यासदेव को समाधि दशा में हुई थी उन्हीं का विस्तृत वर्णन व्यासदेव ने भागवत पुराण में किया है। भागवत पुराण का प्रभाव वल्लभ-सम्प्रदाय पर बहुत पड़ा है। यही कारण है कि यह सम्प्रदाय इतना अधिक सरस और रसस्निग्ध है। भागवत पुराण में सरस गेय गीतियों की प्रधानता है, साथ ही भगवान् की स्तुतियाँ इतनी आध्यात्मिकता से पूर्ण हैं कि उनको बुद्धिगत करना विशेष शास्त्र-मर्मज्ञों का ही कार्य है।

श्रीमद्भागवत के विषय में यह शंका की जाती है कि यह महापुराण है अथवा उपपुराणों के अन्तर्गत है। कुछ लोग देवीभागवत को महापुराण मानते हैं। लेकिन यह ठीक नहीं। श्रीमद्भागवत को महापुराण मानने के लिए पर्याप्त सामग्री है। मत्स्य पुराण के अनुसार "जिसमें गायत्री के द्वारा धर्म का विस्तार तथा वृत्रासुर का वध वर्णित है वही श्रीमद्भागवत महापुराण है।[२]" अतः श्रीमद्भागवत को ही अष्टादश पुराणों के अन्तर्गत मानना सर्वथा उचित प्रतीत होता है।

भागवत पुराण के अनुशीलन से उसके अभिमत सिद्धांत का परिचय मिलता है। भागवत पुराण अद्वैत-तत्त्व का ही प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में करता है। इसका आध्यात्म-पक्ष है पूर्ण अद्वैत तथा व्यवहार-पक्ष है विशुद्ध भक्ति। भागवत पुराण अद्वैत ज्ञान के साथ भक्ति का सामंजस्य उपस्थित करता है, और यही

---

[१] भागवत १।१।२. [२] मत्स्य पुराण—५३

उसकी विशेषता है। भागवत पुराण के दार्शनिक सिद्धांतों और विशुद्ध भक्ति ने हिन्दी कृष्ण-भक्तिकाव्य को बहुत अधिक प्रभावित किया है जिसे विस्तारपूर्वक आगे दिखलाया जायगा।

श्रीमद्भागवत में भगवान् विष्णु के बाईस अवतारों का वर्णन हुआ है जिसमें श्रीकृष्ण अवतार का वर्णन ही प्रमुख है। भागवत पुराण के इस मनोरम वर्णन ने हिन्दी कृष्ण-भक्तकवियों को बहुत अधिक प्रभावित किया है। भगवान् विष्णु की महिमा का वर्णन करना इसकी एक महती विशेषता है। विष्णुपरक होते हुए भी इस पुराण में अन्य किसी भी देवता के प्रति अनुदार दृष्टिकोण नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की एकता प्रतिपादित करते हुए स्वयं भगवान् ने कहा है—"हम ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर तीनों स्वरूपतः एक ही हैं और हम ही सम्पूर्ण जीवरूप हैं, अतः जो हममें कुछ भी भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है।[1]" अतः भागवत पुराण साम्प्रदायिकता की भावना से पूर्णतया मुक्त है।

(२) **विष्णु पुराण**—विष्णु पुराण के सम्बन्ध में मत्स्य पुराण कहता है कि "बाराह भगवान् के कल्प अर्थात् जिस सृष्टि के प्रारम्भ में बाराह रूप में भगवान् अवतरित हुए थे, वृत्तांत को लक्ष्य कर पराशरनन्दन ने जिसमें सम्पूर्ण धर्मयुक्त उपदेशों को कहा है, उसे विष्णु पुराण कहते हैं। पण्डित लोग वैष्णव पुराण का प्रमाण तेईस सहस्र श्लोकों में जानते हैं।[2]" वैष्णव पुराणों में श्रीमद्भागवत के पश्चात् द्वितीय कोटि में इस पुराण की गणना की जाती है। दार्शनिक महत्त्व की दृष्टि से यदि श्रीमद्भागवत पुराणों की श्रेणी में प्रथम स्थान रखता है तो विष्णु पुराण निश्चय ही द्वितीय श्रेणी का अधिकारी है। यह वैष्णव दर्शन का मूल आलम्बन है। आचार्य रामानुज ने अपने 'श्रीभाष्य' में इसके प्रमाण तथा उद्धरण बहुलता से दिये हैं।

विष्णु पुराण में छः अंश अर्थात् खंड हैं, तथा एक-सौ छब्बीस अध्याय हैं। प्रथम अंश में सृष्टि उत्पत्ति वर्णन के पश्चात् प्रह्लादचरित्र और ध्रुवचरित्र

---

[1] भागवत ४।७

[2] वाराह कल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः।
यत्प्राह धर्मानखिलान् तदुक्तं वैष्णवं विदुः।
त्रयो विंशति साहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः॥

—मत्स्य पुराण—अ० ५३.

का विस्तृत वर्णन है। द्वितीय अंश में आश्रम सम्बन्धी कर्त्तव्यों का विशेष निर्देश है। तृतीय अंश में पहले सात मन्वन्तरों के मनु, इन्द्र, देवता, सप्त-ऋषि और मनु-पुत्रों का वर्णन है। चतुर्युगानुसार भिन्न-भिन्न व्यासों के नाम तथा ब्रह्मज्ञान के माहात्म्य का वर्णन है। चतुर्थ अंश विशेषतया ऐतिहासिक है जिसमें सोमवंश के अन्तर्गत ययाति का चरित्र वर्णित है। यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, धनु, पुरु—इन पाँच प्रसिद्ध क्षत्रिय वंशों का भिन्न-भिन्न अध्यायों में वर्णन मिलता है। अन्य पुराणों के राजवंश-वर्णन की अपेक्षा यह अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है। पञ्चम अंश में श्रीकृष्ण का अलौकिक चरित्र वैष्णवभक्तों का आलम्बन है। यह कृष्ण-चरित्र भागवत के दशम स्कन्ध के समान ही है, किंतु उसकी अपेक्षा बहुत संक्षेप में है। इस पुराण के दार्शनिक सिद्धांतों और कृष्णचरित्र का प्रभाव हिंदी भक्ति-काव्य पर बहुत अधिक पड़ा है। षष्ठ अंश केवल आठ अध्यायों का है, जिसमें प्रलय तथा भक्ति का विशेष रूप से विवेचन किया गया है।

साहित्यिक दृष्टि से यह पुराण बहुत ही सरस, रमणीय और सुन्दर है। इसके चतुर्थ अंश में प्राचीन सुष्ठु गद्य की झलक देखने को मिलती है। भक्ति और ज्ञान का सामंजस्य इस पुराण में बहुत ही सुन्दरता से दिखाया गया है। विष्णुपरक पुराण होने पर भी साम्प्रदायिकता की भावना इसमें नाम-मात्र को भी नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं महादेव के साथ अपनी अभिन्नता दिखलाते हुए कहा है—"आप यह भली-भाँति समझ लें कि जो मैं हूँ सो आप हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत्, देव, असुर और मनुष्य आदि कोई भी मुझसे भिन्न नहीं है। हे हर! जिन लोगों का चित्त अविद्या से मोहित है वे भिन्नदर्शी पुरुष ही हम दोनों में भेद देखते और बतलाते हैं। हे वृषभध्वज! मैं प्रसन्न हूँ, आप पधारिये, मैं भी अब जाऊँगा।[1]"

(३) **ब्रह्मवैवर्त्त**—मत्स्य पुराण में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के सम्बन्ध में कहा गया है कि "रथन्तर नामक कल्प के वृत्तांत को लक्ष्य कर सावर्णि मनु ने नारद ऋषि के लिए कृष्ण भगवान् के श्रेष्ठ माहात्म्य को जिस पुराण में कहा है और जिसमें

---

[1] योऽहं स त्वं जगच्चेदं स देवासुरमानुषम्।
मत्तो नान्यदशेषं यत्तत्त्वं ज्ञातुमिहार्हसि॥
अविद्यामोहितात्मानः पुरुषा भिन्नदर्शिनः।
वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर॥

—विष्णु पुराण—५।३३।४८-४६

ब्रह्म वाराह के उपदेश बारम्बार वर्णित हैं, वह अठारह सहस्र श्लोकों का ब्रह्म-वैवर्त्त नामक पुराण कहा जाता है।[1]" हिंदी कृष्ण-भक्तिकाव्य को प्रभावित करनेवाले पुराणों में यह भी अपना एक विशेष स्थान रखता है। इस पुराण में चार खण्ड है -(१) ब्रह्म खण्ड, (२) प्रकृति खण्ड, (३) गणेश खण्ड और (४) कृष्ण जन्म खण्ड। जैसा कि इनके खण्डों के नाम से ही पता चलता है, इन चारों में क्रमशः ब्रह्मा, देवी, गणेश और श्रीकृष्ण के चरित्रों का वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड इस पुराण के आधे से अधिक भाग में आया है। यह विस्तार की दृष्टि से ही नहीं वरन् वैष्णवतथ्यों के प्रकाशन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। कृष्ण चरित्र का विस्तृत और सांगोपांग रूप से वर्णन करना इस पुराण का प्रधान लक्ष्य मालूम होता है। इस पुराण की एक विशेषता यह भी है कि इसमें राधा का वर्णन हुआ है। राधा कृष्ण की शक्ति है और इस राधा का वर्णन बड़े सांगोपांग ढंग से किया गया है। राधा-कृष्ण की लीला, स्वरूप तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में वैष्णव सम्प्रदायों में, विशेष-तया गौड़ीय वैष्णव, बल्लभमत तथा राधावल्लभी मतों में जिन साधनभूत रहस्यों का आजकल प्रचार है, उनका मूल ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में मिलता है। कृष्ण गोपी और कृष्ण की शक्तिभूता राधा के चरित्र का विस्तृत वर्णन इस पुराण में किया गया है।

इस पुराण में वृन्दावन तथा गोलोक का वर्णन भी मिलता है। राधा गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण की हृदयेश्वरी प्राणवल्लभा है। श्रीदामा के शाप से राधा इस भूतल पर अवतीर्ण होती है।[2] इस पुराण के पन्द्रहवें अध्याय में कृष्ण के साथ राधा के विवाह का वर्णन हुआ है। अतः वह कृष्ण की स्वकीया मानी गई है। राधा के चरित्र के इस वर्णन से हिंदी कृष्णभक्ति-काव्य बहुत अधिक प्रभावित हुआ है। इस पुराण में राधा नाम की व्युत्पत्ति दो प्रकार से बतलाई गई है—

---

[1] रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य यत्।
सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यसंयुतं।
यत्र ब्रह्मवराहस्य चरितं वर्ण्यते मुहुः।
तदष्टादश साहस्रं ब्रह्मवैवर्त्तमुच्यते।

—मत्स्य पुराण, अ० ५३

[2] ब्रह्म वैवर्त्त—६

राधेत्येवं संसिद्धा राकारो दानवाचकः ।
स्वयं निर्वाणदात्री या सा राधा परिकीर्तिता ॥[१]

भाव यह है कि निर्वाण की दात्री होने के कारण ही वे राधा………… कहलाती हैं। और—

रा च रासे च भवनाद् धा एवं धारणादहो ।
हरे रालिंगनादारात् तेन राधा प्रकीर्तिता ॥[२]

इसका भाव है कि रास में विद्यमान रहने तथा भगवान् श्रीकृष्ण को आलिंगन देने के कारण ही श्रीमती राधा इस नाम से प्रसिद्ध हैं।

यह पुराण कृष्णपरक है, इसलिए कृष्ण भक्त वैष्णवों में इसकी बहुत अधिक मान्यता है। विशेषतः गौड़ीय वैष्णवों में इसका बहुत ही अधिक महत्त्व है।

(४) **बृहन्नारदीय पुराण**—मत्स्यपुराण नारदपुराण का वर्णन करते हुए कहता है—"जिस पुराण की कथा में नारद ने बृहत्कल्प के प्रसंग में धर्म का उपदेश दिया है, वह नारदीय पुराण कहा जाता है। इसका प्रमाण पच्चीस सहस्र श्लोकों का है।"[३] नारदपुराण को मत्स्यपुराण में बृहन्नारदीय पुराण भी कहा गया है। 'नारद पुराण' नाम का एक उपपुराण भी है। ये दोनों ही पुराणों के पचलक्षणों से दूर हैं जैसा कि अंग्रेज विद्वान् एच० एच० विल्सन ने कहा है—"इन दोनों ही पुराणों के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें पुराणों के पंच लक्षण नहीं मिलते। ये दोनों ही साम्प्रदायिक भावना से पूर्ण हैं और अर्वाचीन प्रतीत होते हैं। इनका ध्येय विष्णु की सत्ता को प्रतिपादित करना प्रतीत होता है। इनमें अनेक ऐसी प्रार्थनाएँ हैं जो विष्णु के एक न एक रूप का वर्णन करती हैं। इनमें विष्णु पूजा माहात्म्य का भी वर्णन है। अनेक ऐसी प्राचीन और अर्वाचीन कथाएँ हैं जो हरिभक्ति का महत्त्व बतलाती हैं।[४]"

---

[१] ब्रह्मवैवर्त्त ४।१७।२२३. [२] ब्रह्मवैवर्त्त ४।१७।२२४

[३] यत्राह नारदो धर्म्मान् बृहत्कल्पाश्रयानिह ।
पंचविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ॥

— मत्स्य पुराण, अ० ३५

[४]—"From a cursory examination of these Puranas, it is very evident that they have no conformity to the definition of a Puran, and that both are sectarial and modern compilations, intended to support the doctrine of Bhakti, or faith in Vishnu,

बृहन्नारदीय पुराण के दो भाग हैं। पहले भाग में मोक्ष धर्म, स्वर वर्ण व्यवस्था, नक्षत्र व संक्षिप्त आदि कल्प निरूपण, व्याकरण निरूपण, निरुक्त, ज्योतिष, ग्रह विचार, मन्त्र सिद्ध, देवताओं के मन्त्र, अनुष्ठानों की विधि तथा अठारहों पुराणों की विषयानुक्रमणिका आदि अनेक उपयोगी विषयों का भी वर्णन है।

हिन्दी कृष्ण-भक्तिकाव्य को प्रभावित करने की दृष्टि से इसका दूसरा भाग अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें एकादशी व्रत का माहात्म्य दिखाने के लिए बहुत विस्तारपूर्वक राजा रुक्मांड गद और मोहनी की कथा वर्णित है। बृहन्नारदीय पुराण विष्णुपरक पुराण है। विष्णु की महिमा स्थान-स्थान पर राजा रुक्मांड-गद की कथा में वर्णित है; किन्तु श्रीकृष्ण-अवतार की कथा इस पुराण में नहीं दी गई है।

(५) **पद्म पुराण**—मत्स्यपुराण, पद्मपुराण का परिचय देता हुआ कहता है—"जिस समय यह समस्त संसार एक स्वर्णमय पद्म के रूप में परिणत था, उस समय के वृत्तांत का जिसमें वर्णन किया गया है, पण्डित लोग उसे पद्म पुराण कहते हैं, उस पद्मपुराण की कथा इस मर्त्यलोक में पचपन श्लोकों में कही गई है।[1]" पद्मपुराण का एक संस्करण आनंदाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली से चार भागों में प्रकाशित हुआ है। इसमें पाँच खंड है—

(१) सृष्टि खंड, (२) भूमि खंड, (३) स्वर्ग खंड, (४) पाताल खंड, (५) उत्तर खंड।

इन पाँचों खंडों के अतिरिक्त एक खड 'क्रियायोगसार' और है। पर इस खंड की कल्पना बाद की मालूम पड़ती है। यह कदाचित् प्रक्षिप्त अंश है।

(१) **सृष्टि खंड**—पाँच पर्वों में विभाजित है। (क) पौष्कर पर्व—इसमें

---

with this view they have collected a variety of prayers addressed to one on other form of that divinity, a number of observances and holiday connected with his adoration, and different legends come perhaps of an early, other of a more recent date, illustrative of the efficiency of devotion to Hari."

(Vishnu Puran—By H. H. Wilson) Page XXXII

[1] **मत्स्य पुराण—अ० ५३**

देवता, मुनि पितर तथा मनुष्यों आदि नौ प्रकार की सृष्टि का वर्णन है। (ख) तीर्थ पर्व—इसमें पर्वत, द्वीप तथा सप्तसागर का वर्णन है। (ग) तृतीय पर्व—इसमें अधिक दक्षिणा देनेवाले राजाओं का वर्णन है। (घ) राजाओं का वंशानु-कीर्तन—इसमें राजाओं की वंशावली का वर्णन है। (ङ) मोक्ष पर्व—इसमें मोक्ष तथा उसके साधन का वर्णन किया गया है।

(२) भूमि खंड—इसके एक सौ सत्ताईस अध्याय अनेक पौराणिक कथाओं से भरे हुए हैं। आरम्भ में शिवशर्मा नामक ब्राह्मण के पितृ-भक्ति-द्वारा स्वर्गलोक की प्राप्ति का वर्णन है। फिर राजा पृथु के जन्म और चरित्र का वर्णन है। विभिन्न प्रकार के नैमित्तिक तथा आभ्युदयिक दानों के अनन्तर सती सुकला की पातिव्रतसूचक कथा बहुत विस्तार के साथ दी गई है। ययाति और मातलि के अध्यात्म-विषयक सम्वाद में पाप और पुण्य के फलों का वर्णन और विष्णु भक्ति की प्रशंसा की गई है। महर्षि च्यवन की कथा भी बहुत विस्तार-पूर्वक दी गई है।

(३) स्वर्ग खंड—इसके प्रथम अध्याय में देवता, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष आदि लोकों की स्थिति का विस्तृत वर्णन है। इसी स्वर्ग खंड में शकुन्तलो-पाख्यान है जो महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान से बहुत अधिक भिन्न है परन्तु कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तल' से बिल्कुल मिलता-जुलता है।[1] इससे पता चलता है कि कालिदास ने अपने नाटक 'अभिज्ञान शाकुंतल' की कथा महाभारत से न लेकर इसी पुराण से ली है। 'विक्रमोर्वशी' के सम्बन्ध में भी ठीक यही बात है।

(४) पाताल खंड—इसमें पाताल और पाताल के नागलोक का विशेष वर्णन है। नाग देवताओं का भी विस्तृत वर्णन है। राम की कथा भी रावण के प्रसंग में विस्तारपूर्वक वर्णित है। पर इस कथा की विशेषता यह है कि यह कालिदास के द्वारा रघुवंश में वर्णित राम की कथा से मिलती-जुलती है। भवभूति के उत्तर रामचरित में वर्णित कथा से भी मिलती है। इसमें रावण के वध के अनन्तर सीता-परित्याग तथा रामाश्वमेध की कथा भी आई है। जब अश्वमेध में अश्व की बलि दी जाने लगी तो वह अश्व एक ब्राह्मण बन गया, क्योंकि वह पहले एक ऋषि था और दुर्वासा के शाप से ही घोड़ा बन गया था। अन्त में वह राम के सम्पर्क के कारण स्वर्ग चला जाता है।

---

[1] संस्कृत साहित्य का इतिहास—ले० बलदेव उपाध्याय, गौरीशंकर उपाध्याय।

(५) **उत्तर खंड**—इसमें विविध प्रकार के आख्यानों का संग्रह है। विष्णु भक्ति की विशेष रूप से प्रशंसा की गई है।

वस्तुतः पद्मपुराण विष्णु भक्ति का प्रतिपादन करनेवाला एक वृहद् पुराण है। सम्पूर्ण पद्मपुराण में विष्णुभक्ति की बहुत अधिक प्रधानता है, फिर भी अन्य देवताओं के प्रति अनुदार भावों का प्रदर्शन कहीं भी नहीं किया गया है। शिव और विष्णु के एकता प्रतिपादक निम्नलिखित श्लोक उदार दृष्टिकोण के परिचायक हैं—

शैवं च वैष्णवं लोकमेकरूपं नरोत्तम।
द्वयोश्चाप्यन्तरं नास्ति एकरूपं महात्मनोः॥
शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे।
शिवस्य हृदये विष्णुः विष्णोश्च हृदये शिवः॥
एक मूर्तिस्त्रयो देवाः ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
त्रयाणामन्तरं नास्ति गणभेदा प्रकीर्तिताः॥[१]

साहित्यिक दृष्टि से भी यह पुराण बहुत सुन्दर है। अधिकांश पुराणों में तो अनुष्टुप का ही प्रयोग हुआ है परन्तु इस पुराण में अनुष्टुप के अतिरिक्त अन्य बड़े छन्दों का भी समावेश है।

ख—अन्य पुराणों का संक्षिप्त परिचय

(१) **वामन पुराण**—मत्स्यपुराण वामन पुराण का वर्णन करते हुए कहता है—"ब्रह्माजी ने त्रिविक्रम (वामन भगवान्) के उस माहात्म्यमय वृतांत का जिसमें उन्होंने अपने तीन-पगों से तीनों लोकों को नाप लिया था, जिस पुराण में भलीभाँति कीर्तन किया गया है, और जो कूर्म कल्प से सम्बन्ध रखनेवाला तथा कल्याणप्रद है, उसे वामनपुराण कहते हैं।" भगवान् विष्णु के वामन अवतार का वर्णन करना इस पुराण का मुख्य उद्देश्य है। विष्णुपरक होने के कारण यह वैष्णवपुराणों की कोटि में तो आता है, किंतु हिंदी कृष्ण-भक्ति-काव्य इससे प्रभावित हुआ प्रतीत नहीं होता। अन्य वैष्णवपुराणों की भाँति इसमें कृष्णावतार, उनके अलौकिक कार्य और रासलीला आदि का वर्णन नहीं है।

यद्यपि यह पुराण विष्णुपरक है फिर भी इसके कई अध्यायों में शिव-पार्वती की कथा दी गई है। हिमवान का मेनका से पार्वती आदि तीन कन्याओं

---

[१] पद्म पुराण १।४।७२

को उत्पन्न करना[1], उमा-शिव का विवाह[2], गणेश की उत्पत्ति[3], स्वामि-कार्तिकेय की उत्पत्ति आदि की कथाओं से यह पता चलता है कि यह पुराण साम्प्रदायिक संकीर्णता की भावना से बहुत दूर है।

(२) **मत्स्य पुराण**—यह पुराण पर्याप्त रूप से विस्तृत है। इसमें दो-सौ इक्यानबे अध्याय तथा चौदह हजार श्लोक हैं। इस पुराण के प्रारम्भिक अध्यायों में मन्वन्तर के सामान्य वर्णन के अनन्तर पितृवंश का वर्णन विशेष रूप से दिया गया है। वैराज पितृवंश[4], अग्निश्वास पितरों[5], और वर्हिखट् पितरो[6] का वर्णन बहुत विस्तार से हुआ है। सोमवंश का वर्णन भी बहुत विस्तार के साथ हुआ है और विशेषतः ययाति का चरित्र बहुत विस्तृत रूप में वर्णित है।

श्राद्ध कल्प का वर्णन सात अध्यायों में वर्णित है।[7] व्रतों का वर्णन इस पुराण की महती विशेषता है जो कि सैंतालीस अध्यायों में हुआ है।[8] प्रयाग का भौगोलिक वर्णन तथा महिमा कथन दस अध्यायों में किया गया है।[9] शंकर और त्रिपुरासुर के संग्राम का वर्णन बहुत विस्तार से मिलता है। मत्स्य अवतार का वर्णन तो इस पुराण का मुख्य विषय है ही।

इन सब वर्णनों के अतिरिक्त हमें इस पुराण में कुछ अन्य विशेषताएँ भी दिखाई पड़ती हैं। इस में समस्त पुराणों की विषयानुक्रमणी दी गई है[10], जिससे हम पुराणों के क्रमिक विकास का यथेष्ट परिचय पा सकते हैं। दूसरी विशेषता यह है कि इस पुराण में हम भृगु, अंगिरा, अत्रि, विश्वामित्र, कश्यप, वशिष्ठ, पराशर, अगस्त्य इन प्रवर ऋषियों के वंशों का वर्णन बहुत ही सुचारु रूप से क्रमपूर्वक कई अध्यायों में पाते हैं[11]। राजधर्म का विशिष्ट वर्णन भी हमें इस पुराण में मिलता है। दैव, पुरुषाकार, साम, दाम, दण्ड, भेद, दुर्ग, यात्रा, सहाय-सम्पत्ति और तुलादान आदि का वर्णन[12] इस पुराण को राजनैतिक महत्त्व प्रदान करता है। इसी राजधर्म के अन्तर्गत अद्भुत शान्ति का खंड भी एक नवीनता लिये हुए है। इस पुराण की एक और विशेषता है—प्रतिमा

---

[1] वामन पुराण—५० [2] वामन पुराण—५३ [3] वामन पुराण—५४ [4] मत्स्य पुराण—१३ [5] मत्स्य पुराण—१४ [6] मत्स्य पुराण—१५ [7] मत्स्य पुराण—१६-२३ [8] मत्स्य पुराण—५५-१०२ [9] मत्स्य पुराण—१०३-११२ [10] मत्स्य पुराण—५३ [11] मत्स्य पुराण—१९५-२०२ [12] मत्स्य पुराण—२१५-२४२

लक्षण—अर्थात् भिन्न-भिन्न देवताओं की प्रतिमाओं की नामपूर्वक निर्माण विधि। भारतीय प्रतिमा-शास्त्र वैज्ञानिक पद्धति पर अवलम्बित है। विभिन्न उनकी प्रतिष्ठा पीठ का निर्माण भी एक विशिष्ट ढंग से होती है। इन सबका वर्णन इस पुराण में अनेक अध्यायों में बहुत विस्तारपूर्वक प्रामाणिक और वैज्ञानिक रूप से दिया गया है।[1]

(३) **वाराह पुराण**—मत्स्यपुराण वाराहपुराण का परिचय देता हुआ कहता है—"महा वाराह के माहात्म्य के विषय पर विष्णु भगवान् ने पृथ्वी के लिए मानव कल्प के प्रसंग में चौबीस सहस्र श्लोकों में जिसे वर्णित किया है, वह पुराण इस लोक में वाराह पुराण के नाम से प्रसिद्ध है।"

महावाराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च।
विष्णुनाभिहितं क्षोण्यै तद्वाराहमित्युच्यते॥
मानवस्य प्रसंगेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः।
चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते॥

—मत्स्य पुराण, अ० ५३

इस पुराण के दो पाठ भेद उपलब्ध होते हैं:—(१) गौड़ीय, (२) दाक्षिणात्य। इनमें अध्यायों की संख्याओं में भी अन्तर है। मत्स्यपुराण के अनुसार इसमें २४,००० श्लोक होने चाहिए; परन्तु कलकत्ते की एशियाटिक सोसायटी ने इस ग्रंथ का जो संस्करण निकाला है उसमें केवल १०,७०० श्लोक हैं। इससे ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ का एक बहुत बड़ा भाग अब तक नहीं मिला है।

यह पुराणों के लक्षणों से बहुत दूर है। इसमें कहीं-कहीं बहुत संक्षेप में सृष्टि-सम्बन्धी वर्णन है, और कहीं-कहीं राजाओं का वर्णन है। राजवंशावलियाँ कहीं नहीं दी गई हैं।

मनु के शासन का भी वर्णन नहीं हुआ है। यह पुराण भी लिंगपुराण की तरह ही धार्मिक है। विष्णु से सम्बन्धित अनेक व्रतों का वर्णन है। द्वादशी व्रत का विवेचन प्रधान है।

इस पुराण के दो अंश विशेष महत्त्व के हैं—(१) मथुरा माहात्म्य—जिसमें मथुरा के समग्र तीर्थों का बड़ा ही विस्तृत वर्णन दिया गया है। यह अध्याय मथुरा का भूगोल जानने के लिए बहुत उपयोगी है। (२) नचिकेतोपाख्यान—

---

[1] मत्स्य पुराण—२५७ २७०

जिसमें नचिकेता का उपाख्यान बहुत विस्तार से दिया गया है। इस उपाख्यान में स्वर्ग तथा नरक के वर्णन पर ही विशेष बल दिया गया है।

यह पुराण काफी प्राचीन है। हेमाद्रि ने (१३वीं शताब्दी) अपने चतुर्वर्ग चिन्तामणि में इस पुराण में वर्णित बुद्ध द्वादशी का उल्लेख किया है तथा गौड़नरेश बल्लालसेन (१३वीं शताब्दी) ने 'दानसागर' में इस पुराण से अनेक श्लोक उद्धृत किये हैं।

(४) **कूर्म पुराण**—मत्स्यपुराण कूर्म पुराण के सम्बन्ध में कहता है—"जिस पुराण में भगवान् जनार्दन (विष्णु) ने कूर्म रूप धारण कर रसातल में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चारों पदार्थों के माहात्म्य को इन्द्र के समीप में इन्द्रद्युम्न की कथा के प्रसंग में कहा है, वह लक्ष्मी कल्प में सम्बन्ध रखनेवाला अठारह सहस्र श्लोका में समाप्त कूर्म पुराण के नाम से विख्यात है।"

> "यत्रधर्म्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले। मा ऋषिभिः शक्रसन्निधौ। सप्तदशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानु माहात्म्यं कथयामास कूर्म्मरूपी जनार्दनः। इन्द्रद्युम्नप्रसंगेन वंगिकं॥"
>
> —मत्स्य पुराण, अ० ५३

इस पुराण के अध्ययन से पता चलता है कि इसमें चार संहिताएँ थीं—(१) ब्राह्मी, (२) भागवती, (३) सौरी, (४) वैष्णवी। परन्तु आजकल केवल ब्राह्मी संहिता ही उपलब्ध है और उसी का नाम कूर्म पुराण है। भागवत तथा मत्स्य पुराणों के अनुसार इसमें १८,००० श्लोक होने चाहिए, परन्तु उपलब्ध पुराण में केवल ६००० श्लोक ही हैं, अर्थात् मूल ग्रन्थ का केवल तृतीयांश ही उपलब्ध है।

विष्णु भगवान् ने कूर्म अवतार धारण कर इन्द्रद्युम्न नामक विष्णु भक्त राजा को इस पुराण का उपदेश दिया था, इसीलिए यह कूर्मपुराण के नाम से अभिहित किया जाता है। इसके नाम के कारण लोग इसे वैष्णवपुराण समझ लेते हैं परन्तु वास्तव में इसमें शिव की ही प्रधानता दिखलाई गई है। इसमें सर्वत्र शिव ही मुख्य देवता के रूप में वर्णित हैं। अधिकांश भाग दुर्गा और शिव की उपासना का है। इस पुराण में शक्ति की पूजा पर भी बहुत बल दिया गया है। शक्ति के सहस्र नाम यहाँ दिये गये हैं।[1]

---

[1] **कूर्मपुराण**—१।१२

इस पुराण के दो भाग हैं। पूर्व भाग में ५२ अध्याय और उत्तर भाग में ४४ अध्याय हैं। पूर्व भाग में सृष्टि प्रकरण के अनन्तर पार्वती की तपश्चर्या तथा उनके सहस्र नामों का वर्णन है। इसी भाग में काशी तथा प्रयाग का माहात्म्य भी वर्णित है।

इस पुराण में भगवान् विष्णु, शिव के रूप तथा लक्ष्मी गौरी की प्रतिकृति-स्वरूप बतलाए गये हैं। शिव देवाधिदेव के रूप में इतने महत्त्वपूर्ण रूप से वर्णित किये गये हैं कि उन्हीं के प्रसाद से भगवान् कृष्ण जाम्बवती की प्राप्ति में सफल होते हैं। इस पुराण में सर्वत्र शिव ही प्रमुख देवता के रूप में वर्णित हैं। पर यह भी स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। ये एक ही ब्रह्म की पृथक्-पृथक् मूर्तियाँ हैं। अतएव साम्प्रदायिकता की संकीर्णता से इसे मुक्त कहना ही उपयुक्त होगा।

(५) **भविष्य पुराण**—इस पुराण में भविष्य में होनेवाली घटनाओं का वर्णन किया गया है। यही इसके नामकरण का भी कारण है। इस पुराण के सम्बन्ध में सबसे अधिक गड़बड़ी है। यहाँ तक कि समय-समय पर होनेवाले विद्वानों ने इसमें अपने समय में होनेवाली घटनाओं को भी जोड़ना आरम्भ कर दिया। इसमें 'इंग्रेज' नाम से उल्लिखित अंग्रेजों के आने का भी वर्णन मिलता है। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र को इस पुराण की विभिन्न चार हस्तलिखित प्रतियाँ मिली थीं जो आपस में विषय की दृष्टि से नितांत भिन्न थीं। उनका कहना है कि आजकल जो भविष्य पुराण उपलब्ध है उसमें इन उपर्युक्त चारों प्रतियों का मिश्रण है।

पुराणों के पंच लक्षणों से यह पुराण पूर्ण है। पहले अध्याय में सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन है। सृष्टि-उत्पत्ति का वर्णन अन्य पुराणों के समान ही है। साम्प्रदायिकता का जहाँ तक सम्बन्ध है, भविष्य पुराण उससे पूर्णतया मुक्त है। भविष्य-पुराण के उत्तरार्ध के दूसरे अध्याय में लिखा है कि "ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों सनातन देव एक ही परमात्मा के स्वरूप है। इनमें केवल नाम और क्रिया का भेद है।" इतना अवश्य है कि इसमें सूर्य देवता की भी प्रधानता है। निन्यानबे अध्याय में सूर्य-पूजा की आवश्यकता बहुत विस्तार से बतलाई गई है। इस पुराण में अनेक पौराणिक कथाएँ आई हैं किन्तु वे सूर्य-पूजा के सम्बन्ध में ही कही गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो सूर्य-पूजा के विधान का वर्णन करना ही इस पुराण का मुख्य उद्देश्य है।

(६) **गरुड़ पुराण**—मत्स्यपुराण गरुड़पुराण का परिचय देते हुए कहता है—"गरुड़ नामक कल्प के अवसर पर विश्वराड् (ब्रह्माण्ड) से गरुड़ की उत्पत्ति हुई थी, उक्त विषय को लेकर भगवान् विष्णु द्वारा कथित अट्ठारह सहस्र तथा एक सहस्र अर्थात् उन्नीस सहस्र श्लोकोंवाले पुराण को इस लोक में लोग गरुड़पुराण कहते हैं।"

> यदा च गरुडे कल्पे विनतागरुडोद्भुवं।
> अधिकृत्याब्रवीद्विष्णु तदीहोचते ॥
> तदाष्टदश चैकं च सहस्राणीह पठ्यते।
>
> —मत्स्य पुराण—अ० ५३

इसके आरम्भ में विष्णु और उनके अवतारों का संक्षेप में माहात्म्य वर्णित है। पूर्वखंड में विभिन्न विद्याओं का विस्तृत वर्णन है। एक अंश में विभिन्न प्रकार के रत्नों की परीक्षा है। जैसे मोती की परीक्षा, पद्मराग की परीक्षा, मरकत, वैदूर्य, इन्द्रनील, भीष्म-रत्न, करकेतन, पुलक, रुधिराख्य रत्न, स्फटिक तथा विद्रुम की परीक्षा क्रमशः दी गई है।[१] अध्याय १०८ से ११५ तक राजनीति का वर्णन भी उपलब्ध होता है। आयुर्वेद के आवश्यक नियमों तथा चिकित्सा का वर्णन कई अध्यायों में किया गया है।[२] विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए विभिन्न औषधियों की व्यवस्था दी गई है। पशु-चिकित्सा का विधान भी एक अध्याय में बतलाया गया है।

छन्द शास्त्र का विवेचन छः अध्यायों में हुआ है। एक अध्याय में गीता का सारांश भी दिया हुआ है। इसमें सांख्य योग का भी वर्णन दिया गया है। गरुड़ पुराण के इस अंश को यदि अग्नि पुराण के समान ही समस्त विद्याओं का विश्वकोष कहा जाय तो अनुचित न होगा।

गरुड़ पुराण का उत्तर खंड 'प्रेत कल्प' कहा जाता है। इसमें पैंतालीस अध्याय हैं। मरने के बाद मनुष्य की गति क्या होती है, वह किस योनि में उत्पन्न होता है, तथा कौन-कौन से भोग भोगता है, इसका वर्णन इस पुराण में बहुत अधिक विस्तार से मिलता है। उत्तर खंड में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इन्हीं वर्णनों की प्रधानता है।

गर्भावस्था, नरक, यम, यम नरक का मार्ग, प्रेत गणों का वास-स्थान, प्रेत

---

[१] गरुड़ पुराण—६६-८०. [२] गरुड़ पुराण—१५०-१८१.

लक्षण, प्रेत योनि से मुक्ति, प्रेतों का रूप, मनुष्यों की आयु, यमलोक का विस्तार और वर्णन, सपिण्डीकरण की विधि, वृषोत्सर्ग विधान आदि विषयों का वर्णन अन्य पुराणों में हुआ तो अवश्य है पर वह बहुत संक्षिप्त है। श्राद्ध के समय इस पुराण का पाठ किया जाता है। इस उत्तर खंड (प्रेत कल्प) का जर्मन-भाषा में भी अनुवाद हुआ है।

(७) **ब्रह्माण्ड पुराण**—मत्स्यपुराण ब्रह्माण्ड पुराण का परिचय देते हुए कहता है—"ब्रह्मा ने ब्रह्माण्ड के माहात्म्य को लेकर जिस पुराण में उपदेश किया था और जिसमें भविष्य तथा कल्पों के वृतान्त विस्तारपूर्वक वर्णित हैं, वह बारह सहस्र दो सौ श्लोकों में विस्तृत ब्रह्माण्ड पुराण कहा जाता है।"

यच्चब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत् पुनः।
तच्चद्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकं॥
भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः।
तद्ब्रह्माण्डपुराणं च ब्रह्मणा समुदाहृतं॥

—मत्स्य पुराण—अ० ५३

इस पुराण का नाम ब्रह्माण्ड पुराण पड़ने का कारण है इसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का वर्णन होना। यों तो प्रत्येक पुराण में भुवन कोष का वर्णन उपलब्ध होता है किन्तु इस पुराण में सम्पूर्ण विश्व का सांगोपांग वर्णन किया गया है। आजकल उपलब्ध ब्रह्माण्ड पुराण में प्राक्रयापाद तथा उपोद्घात पाद ये दो ही पाद उपलब्ध हैं। परन्तु नारद पुराण से पता चलता है कि प्रारम्भ में इस पुराण में १२,००० श्लोक थे और चार पाद—प्रक्रिया, अनुषंग, उपोद्घात और उपसंहार। नारद पुराण में इन चारों पादों की सूची भी दी हुई है। कूर्म पुराण की विषय सूची में इस पुराण को 'वायवीय ब्रह्माण्ड पुराण' कहा गया है। इस नामकरण के कारण अनेक पाश्चात्य विद्वान् भ्रम में पड़ गये हैं। उनके मत से इस पुराण का मूल वायुपुराण है; परन्तु यह नितांत निराधार धारणा है।

इस पुराण के प्रथम खंड में विश्व के भूगोल का विस्तार पूर्वक रोचक वर्णन है। जम्बू द्वीप तथा उसके पर्वतों और नदियों का वर्णन अनेक अध्यायों में है। भद्राश्व, केतुमाल, चन्द्रद्वीप, किंपुरुषवर्ष, कैलाश, शाल्मलि द्वीप, कुश द्वीप, क्रौंच द्वीप, शक द्वीप, पुष्कर द्वीप आदि समग्र वर्षों तथा द्वीपों का भिन्न-भिन्न अध्यायों में बहुत रोचक वर्णन है। इसी प्रकार ग्रहों, नक्षत्रों तथा युगो का

भी विशेष विवरण इसमें दिया गया है। इसके तृतीय पाद में भारत के प्रसिद्ध क्षत्रिय वंशों का वर्णन इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है।

इस पुराण के विषय में एक बात विशेष उल्लेखनीय है। ईसवी सन् ५ वीं शताब्दी में इस पुराण को ब्राह्मण लोग जावा द्वीप ले गये थे। वहाँ जावा की प्राचीन 'कवि भाषा' में इसका अनुवाद आज भी उपलब्ध है। इससे इस पुराण का समय बहुत ही प्राचीन सिद्ध होता है।

(८) **ब्रह्म पुराण**—मत्स्य पुराण ब्रह्म पुराण का परिचय देते हुए कहता है—"ब्रह्म पुराण तेरह सहस्र श्लोकों में कहा गया है, उसे लिखकर जो व्यक्ति सवत्सा जलधेनु के साथ वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि को दान देता है, वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है।"

> ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्र मरीचये।
> ब्राह्मं तु दशसाहस्रं पुराणं परिकीर्तितं॥
>
> —मत्स्य पुराण, अ० ५३

पुराणों की सूची में इसका नाम सर्वप्रथम आता है। इसीलिए इसे "आदि-ब्रह्मपुराण" भी कहते हैं। इसमें सूर्य की पूजा का विस्तार से वर्णन हुआ है, इसलिए इसे "सौर पुराण" भी कहते हैं। सूर्य की महिमा तथा उसके व्यापक प्रभुत्त्व का निर्देश कई अध्यायों में हुआ है।[1] इस पुराण में सर्वप्रथम सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन है—फिर मन्वन्तर आदि के वर्णन के पश्चात् सूर्यवंश और सोमवंश का वर्णन बहुत संक्षेप में किया गया है। श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन संक्षिप्त है किन्तु मूलकथा भागवत के समान ही है।

कई अध्यायों में उड़ीसा के तीर्थों का विस्तृत वर्णन हुआ है, यह इस पुराण की एक विशेषता है। उड़ीसा के तीर्थों के प्रसंग में सूर्य, शिव और कृष्ण की जगन्नाथ रूप में अराधना की गई है। पार्वती आख्यान भी कई अध्यायों में दिया गया है।[2] एक अध्याय में मार्कण्डेय आख्यान भी दिया गया है। इसके अनन्तर कई अध्यायों में गौतमी, गंगा, कृत्तिकातीर्थ, चक्रतीर्थ, पुत्रतीर्थ, यम-तीर्थ, आपस्तम्ब तीर्थ आदि अनेक प्राचीन तीर्थों के माहात्म्य गौतमी माहात्म्य के अन्तर्गत दिये गये हैं।[3]

इस पुराण में सांख्य योग की समीक्षा भी बहुत विस्तार से की गई है। जनक

---

[1] ब्रह्म पु० २३-२८. [2] ब्रह्म पु० २४-४०. [3] ब्रह्म पु० ७०-१७५

के प्रश्न करने पर महर्षि वशिष्ठ ने सांख्य के सिद्धांतों का विवेचन किया है। इसके कुछ अध्याय महाभारत के बारहवें पर्व (शान्ति पर्व) के कतिपय अध्यायों से अक्षरशः मिलते हैं। भूगोल का वर्णन विशेष नहीं है। धर्म ही परम पुरुषार्थ है, इस तत्त्व का प्रतिपादन पुराण के अन्त में बहुत सुन्दरता से हुआ है।[1]

(६) **वायु पुराण**—मत्स्यपुराण वायु पुराण के सम्बन्ध में कहता है—"इस मर्त्यलोक में श्वेत कल्प वृत्तांत के प्रसंग में वायु ने रुद्र माहात्म्य के समेत धर्ममय उपदेशों को जिस पुराण की कथाओं के प्रसंग में किया था, वह वायवीय पुराण है। वह पुराण इस लोक में चौबीस सहस्र श्लोकों में समाप्त हुआ कहा जाता है।"

श्वेतकल्पप्रसंगेन धर्म्मान् वायुरिहाब्रवीत्।
यत्रैतद्वायवीयं स्याद्रुद्रमाहात्म्यसंयुतं।
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते।

—मत्स्यपुराण, अ० ५३

इस पुराण में चार खंड हैं जो "पाद" कहलाते हैं :—(१) प्रक्रिया पाद, (२) अनुवेग पाद, (३) उपोद्घात पाद, (४) उपसंहार पाद।

पुराण के प्रारम्भ में सृष्टि प्रकरण पर्याप्त विस्तार के साथ कई अध्यायों में दिया गया है। इस पुराण में भूगोल और खगोल का वर्णन विस्तार पूर्वक हुआ है। जम्बूद्वीप तथा अन्य द्वीपों का वर्णन भी बहुत विस्तार से है।[2] यह पुराण भारतवर्ष को जम्बूद्वीप का मध्य स्थान मानता है। जम्बूद्वीप एशिया का प्राचीन नाम जान पड़ता है। खगोल का वर्णन भी विस्तृत है।[3] अनेक अध्यायों में युग, यज्ञ, ऋषि, तीर्थ का वर्णन हुआ है। साठवें अध्याय में चारों वेदों की शाखाओं का वर्णन किया गया है जो वैदिक साहित्य के इतिहास की दृष्टि से बहुत महत्त्व का है।

इस पुराण के राजवंश वर्णन के प्रसंग में बहुत से ऐतिहासिक तथ्यों का पता चलता है। मन्वन्तर और राजवंश वर्णन पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि पूर्व-काल में आर्य किस प्रकार पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण में जाकर अपना राज्यस्थापन करते थे, संस्कृति का विस्तार करते थे और अपने नाम पर उन नवीन राज्यों और नगरों का नामकरण करते थे।

---

[1] ब्रह्म पु० २३५-३६ [2] वायु पु० ३४-३६ [3] वायु पु० ५०-५३

ऋषिवंश, इक्ष्वाकुवंश और पुरुवंश के वर्णन से वैदिक काल से लेकर पुराण काल तक के राजाओं और ऋषियों की परम्परा का बहुत कुछ परस्पर संगत ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अर्जुन की वंश-परम्परा का वर्णन उन राजा उदयन तक भविष्य-कथन के रूप में किया गया है जो गौतम बुद्ध के समकालीन थे। इस प्रकार गौतम बुद्ध के पूर्व के इतिहास पर इस वंश-परम्परा-वर्णन के द्वारा एक हल्का सा प्रकाश पड़ता है।

इस पुराण में श्राद्ध, श्राद्ध-माहात्म्य, श्राद्धकाल, श्राद्धीय सामग्री और विधियों का वर्णन भी किया गया है। इस श्राद्ध-वर्णन के कतिपय अध्याय मत्स्य पुराण के श्राद्ध-वर्णन से मिलते-जुलते हैं। आचार-आश्रम और वर्ण-व्यवस्था का भी संक्षेप में वर्णन है। गया-श्राद्धमहिमा ग्रन्थ के मध्य और अन्त में दो बार दी गई है। संगीत-शास्त्र का वर्णन भी इस पुराण में है। छियासी और सतासी अध्यायों में गीतालंकार का वर्णन कर संगीतशास्त्र के स्वर, राग, ग्राम, मूर्च्छना आदि का सामान्य परिचय दिया गया है।

शैव पुराण होते हुए भी तीन अध्यायों में (९६, ९७, ९८) विष्णु माहात्म्य का वर्णन कर इस पुराण ने अपनी पक्षगतहीनता का परिचय दिया है। इसी व्याज से राम और कृष्णचरित्र का भी वर्णन हो गया है। पशुपति की पूजा से सम्बद्ध 'पाशुपतयोग' का निरूपण इस पुराण की एक विशेषता है। यह अंश प्राचीन योगशास्त्र को जानने के लिए बहुत उपयोगी है। अध्याय चौबीस में वर्णित 'शार्वस्तव' साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शिव के चरित्र का विस्तृत वर्णन इस पुराण की विशेषता है।

(१०) **स्कन्द पुराण**—इस पुराण का परिचय मत्स्य पुराण में इस प्रकार दिया गया है—"जिस पुराण में स्वामिकार्तिकेय ने माहेश्वर धर्म के विषय पर प्रलय काल में शिव के चरित्रों का गुणगान किया है, वह मर्त्यलोक में इक्यासी सहस्र एक सौ श्लोकों में विस्तृत स्कंद पुराण कहा जाता है।"

> यत्रमाहेश्वरान्धर्म्मानधिकृत्य च षण्मुखः।
> कल्पे तत्पुरुषे वृत्तं चरितैरुपबृंहितं ॥
> स्कदनाम पुराणं च एकाशीतिर्निगद्यते।
> सहस्राणि शतंचैकमिति मर्त्येषु गद्यते ॥
>
> —मत्स्यपुराण, अ० ५३

इस पुराण में स्वामी कार्तिकेय ने शैव-तत्त्वों का निरूपण किया है। इसी-

लिए इसका नाम स्कन्द पुराण है। पुराणों में सबसे बृहत्काय पुराण यही है। यह भागवत पुराण से आठ गुना है। स्कंद पुराण की श्लोक-संख्या ८१, १०० है जो लक्ष श्लोकात्मक महाभारत से केवल एक पञ्चमांश ही कम है। इस पुराण की सूत संहिता[1] के अनुसार इसमें छः संहिताएँ हैं जो अपने परिमाण के साथ इस प्रकार हैं—

संहिता	श्लोक संख्या
१—सनत्कुमार संहिता	३६,०००
२—सूत संहिता	६,०००
३—शंकर संहिता	३०,०००
४—वैष्णव संहिता	५,०००
५—ब्राह्म संहिता	३,०००
६—सौर संहिता	१,०००

सनत्कुमार संहिता २० अध्यायों की एक संहिता है। सूत संहिता शिवोपासना के विषय में एक महत्त्वपूर्ण खंड है। इस संहिता में वैदिक तथा तांत्रिक उभय प्रकार की पूजाओं का विस्तृत वर्णन हुआ है। इस संहिता के चार खंड हैं—(१) शिव माहात्म्य, (२) ज्ञानयोग खंड, (३) मुक्तिखंड, (४) यज्ञ वैभव-खंड।

सूत संहिता में शिव की ही महिमा का वर्णन है और उन्हीं के द्वारा सब कार्यों की सिद्धि प्रतिपादित है। शंकर संहिता अनेक खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड 'शिव रहस्य' कहलाता है। यह पूरी संहिता का आधा भाग है। इसकी श्लोक-संख्या १३,००० है। इसमें सात काण्ड हैं—संभव कांड, आसुर कांड, माहेन्द्र कांड, युद्ध कांड, दैव कांड, दक्ष कांड, और उपदेश कांड। सौर संहिता में शिव-पूजा सम्बन्धी अनेक बातों का वर्णन किया गया है। इन संहिताओं के अतिरिक्त शेष दो संहिताएँ उपलब्ध नहीं होतीं।

महाकाव्य स्कंद पुराण का यह संक्षिप्त परिचय है। इस पुराण में जगन्नाथ जी के मन्दिर का वर्णन होने से कुछ पाश्चात्य विद्वानों का विचार है कि यह पुराण तेरहवीं शताब्दी में लिखा गया। क्योंकि १२६४ ई० के आस-पास ही जगन्नाथ जी का मन्दिर बना था। लेकिन पाश्चात्य विद्वानों का यह मत ठीक

---

[1] स्कन्द पुराण—१।२०-२२

नहीं जँचता। क्योंकि कलकत्ते में १००८ ई० में लिखी गई इसकी हस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है। और इससे भी प्राचीन सातवीं शताब्दी में लिखी हस्त-लिखित प्रति नैपाल के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है जिसका उल्लेख डा० हरप्रसाद शास्त्री ने पुस्तकालय के सूचीपत्र में किया है। इन सब प्रमाणों से इस पुराण की प्राचीनता सिद्ध होती है।

(११) **मार्कण्डेय पुराण**—मत्स्य पुराण मार्कण्डेय पुराण का परिचय देते हुए कहता है—"जिस पुराण में कुछ जिज्ञासु मुनियों के प्रश्न करने पर धर्मनिष्ठ मुनियों ने कुछ पक्षियों के प्रसंग में धर्म-अधर्म का विवेचन और व्याख्यान किया है, वह मार्कण्डेय मुनि द्वारा विस्तारपूर्वक कहा गया नव सहस्र श्लोकोंवाला मार्कण्डेय नामक पुराण इस मर्त्यलोक में परम प्रसिद्ध है।"

यत्राधिकृत्यशकुनीन् धर्म्माधर्म्मविचारणान्।
व्यायेन कथितं तत्सर्व्वं विस्तरेण तु॥
पुराणं नवसाहस्रं मार्कख्यातं पदे मुनि।
प्रश्ने ऋषिभि धर्म्मचारिभिः-मार्कण्डेयमित्युच्यते॥

—मत्स्यपुराण अ० ५३

परिमाण में यह पुराण अपेक्षाकृत छोटा है। इसके अध्यायों की संख्या १३८ है और श्लोकों की संख्या ६,००० है।

इस पूरे पुराण का अनुवाद अंग्रेजी में पार्जिटर ने किया है[१] तथा इसके प्रारम्भिक कतिपय अध्यायों का अनुवाद जर्मन भाषा में भी हुआ है जिसमें मरणोत्तर जीवन की कथा कही गई है। प्राचीन काल की प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी महिषी मदालसा का जीवन-चरित्र इस पुराण में बहुत विस्तार से दिया गया है। 'दुर्गा सप्तशती' इस ग्रंथ का एक विशिष्ट अंग है। इसमें देवी-भक्तों के लिए सर्वस्वरूप दुर्गा का पवित्र चरित्र बहुत विस्तार के साथ दिया है। इसमें ज्ञानी पक्षियों की कथा का भी वर्णन है।

वृत्रासुर बध, हरिश्चन्द्र की कथा, बशिष्ठ और विश्वामित्र की कलह आदि की कथाओं के प्रसंग में जन्म-मृत्यु और वृद्धावस्था आदि का वर्णन पर्याप्त विस्तार से हुआ है। मन्वन्तरों का भी संक्षिप्त वर्णन है।

शंकराचार्य ने वेदान्तसूत्र भाष्य[२] में इस पुराण के दो श्लोक उद्धृत

---

[१] Biblothika Indian Series, Calcutta (1905)

[२] वेदान्त सूत्र भाष्य, १।२।२३ तथा ३।३।१६

किए हैं। इससे स्पष्ट है कि शंकराचार्य (८ वीं श०) के समय से भी यह पुराण प्राचीन है।

(१२) **अग्नि पुराण**—मत्स्यपुराण अग्नि पुराण के विषय में कहता है—"ईशान नामक कल्प वृत्तान्त के प्रसंग में अग्नि ने जिसे वशिष्ठ ऋषि के लिये कहा है, वह आग्नेय पुराण कहलाता है। उक्त आग्नेय पुराण का प्रमाण सोलह सहस्र श्लोकों में है।"

> यत्रईशानकंकल्प वृत्तान्तमधिकृत्य च।
> वशिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत् प्रचक्षते।
> तच्चषोडशसाहस्रं सर्वक्रतु-फलप्रदं॥
>
> —मत्स्यपुराण, अ० ५३

पुराणों का उद्देश्य जन-साधारण में ज्ञातव्य विद्याओं का प्रचार करना भी था। इसका ठीक-ठीक परिचय हमें अग्निपुराण के अनुशीलन से मिलता है। इस पुराण को यदि हम समस्त भारतीय विद्याओं का विश्वकोष कहें तो अत्युक्ति न होगी। इस पुराण के तीन-सौ-तिरासी अध्यायों में विभिन्न प्रकार के विषयों का सन्निवेश है।

प्रारम्भिक अध्यायों में अवतारों की कथाओं को संक्षेप में कहा गया है। राम और कृष्ण के प्रसंग में रामायण और महाभारत की कथाओं का भी वर्णन हुआ है। कई अध्यायों में धार्मिक कथाओं का विधान बताया गया है। मन्दिर-निर्माण की कला के साथ ही मूर्ति प्रतिष्ठा तथा प्रजन के विधान का विवेचन संक्षेप में सुचारु रूप से किया गया है। ज्योतिषशास्त्र, धर्मशास्त्र और व्रतों आदि का विस्तृत वर्णन हुआ है। आयुर्वेद शास्त्र का वर्णन भी पर्याप्त विस्तार से हुआ है।

इस पुराण में छन्दशास्त्र और अलंकार शास्त्र का विवेचन भी हुआ है। व्याकरण, छन्दशास्त्र और आयुर्वेद शास्त्र की दृष्टि से यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण पुराण है। इसमें योगशास्त्र के यम नियम आदि आठों अंगों का वर्णन संक्षेप में बहुत ही सुन्दर है। अंत में अद्वैत-वेदांत के सिद्धांतों का सार संकलित है। एक अध्याय में गीता का भी सारांश दिया गया है। यह पुराण काफी प्राचीन मालूम पड़ता है। इससे विविध विज्ञान का ज्ञान होता है। इसीलिए इसका यह कथन सर्वथा सत्य प्रतीत होता है कि—

"आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वा विद्याः प्रदर्शिताः[१]"

(१३) **लिंग पुराण**—मत्स्य पुराण लिंग पुराण का परिचय इस प्रकार देता है—"जिस अग्नि लिंग के मध्य में स्थित होकर भगवान शंकर ने कल्पान्तर में अग्नि को लक्ष्य कर, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष —इन चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिए धर्म का आदेश दिया है, उस पुराण का स्वयं ब्रह्मा ने लैंग नाम रखा है। उक्त ग्यारह सहस्र श्लोकों वाले पुराण को जो कोई मनुष्य फाल्गुन मास की पूर्णिमा तिथि को सवत्सा तिलधेनु के साथ दान देता है, वह शिव की समानता का पद प्राप्त करता है।"

यत्राग्निलिंगमध्यस्थः प्राह देवोमहेश्वरः।
धर्म्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च॥
कल्पान्तं लैंगमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयं।
तदेकादशसाहस्रमिति…………………॥

—मत्स्यपुराण अ० ५३

इस पुराण में भगवान् शंकर की लिंग रूप में उपासना की गई है और इसे ही अग्नि कल्प में अर्थ, काम और मोक्ष का दाता माना है। इसमें ग्यारह हजार श्लोक हैं। प्रारम्भ में संक्षेप रूप से सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन हुआ है। प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति का कारण शिव को ही बतलाया गया है। इस पुराण में विष्णु के स्थान पर शिव की प्रतिष्ठा की गई है। शिव के विभिन्न अवतारों के वर्णन जो विभिन्न कल्पों में हुए, काफी विस्तार से लिये गये हैं। लिंग पुराण में लिखा है कि "शिव के अग्नि लिंग ने ही विष्णु और ब्रह्मा में विभिन्नता उत्पन्न की और तभी उनमें आपस में अपने को ही सर्वश्रेष्ठ मानने के लिए झगड़ा भी हुआ। जब अचानक लिंग गिरा तो वह हजारों वर्षों तक ऊपर नीचे झूलता रहा और कोई भी उसका अन्त न पा सका। उसी अग्नि लिंग पर 'ॐ' लिखा था जिसे ब्रह्मा और विष्णु ने देखा और तब उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया। तभी वेदों की रचना हुई।"

इस पुराण में स्थान-स्थान पर शिव की महानता विष्णु से अधिक दिखाने का प्रयत्न हुआ है। भागवत में एक कथा आती है कि अम्बरीष को (जो कि

[१] अग्नि पु०—३८३।५२

शिव भक्त था) विष्णु ने अपने चक्र के द्वारा दुर्वासा के कोप से बचाया था। लिंग पुराण में यही कथा कुछ दूसरे ढंग से लिखी है—विष्णु ने अपना चक्र दधीचि पर चलाया, लेकिन वह बीच ही में पृथ्वी पर गिर गया और फिर युद्ध हुआ जिसमें विष्णु और उनके पक्षीय सब दधीचि मुनि द्वारा धराशायी हो गये।

लिंग पुराण के दो भाग हैं। (१) पूर्व भाग (२) उत्तर भाग। पूर्व भाग में सृष्टि की उत्पत्ति शिव द्वारा ही बतलाई गई है, इसके बाद वैवस्वत-मन्वन्तर से लेकर कृष्ण के समय तक की राजवंशावली दी गई है जो कई अध्यायों में वर्णित है। वंशावली अन्य पुराणों से बहुत मिलती-जुलती है। शिवपरक होने के कारण शैवव्रतों और शैव-तीर्थों का बहुत विस्तृत वर्णन है।

उत्तर भाग में पाशुपत और पशुपति की व्याख्या की गई है जो शैव तंत्रों के अनुकूल है। यह पुराण शिव तत्त्व की मीमांसा के लिए बहुत ही उपादेय है।

(ग) उप-पुराण

उपर्युक्त अठारह पुराणों के अतिरिक्त १८ उपपुराण भी हैं। इनमें से अधिक के नाम वही हैं, जो महापुराणों के हैं। इनमें से 'कालिका पुराण' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह काली का विभिन्न रूपों में वर्णन करता है, साथ ही काली को बलि दिये जाने वाले मनुष्यों और जीवों का भी वर्णन करता है। किन्तु यह हिंदी कृष्ण-भक्ति-काव्य को प्रभावित करने वाला नहीं है।

उपपुराणों के अंतर्गत एक 'हरिवंश पुराण' भी है। इसे बहुत से विद्वान् महापुराण मान लेते हैं। किन्तु इसके अध्ययन से पता चलता है कि यह उप-पुराण ही है, सभी उपपुराणों में कर्मकाण्ड की विधियाँ अधिक हैं, कथा आदि का अंश कम है।

इनके अतिरिक्त और भी ग्रंथ हैं जो पुराणों के रूप में हैं, परन्तु उनकी गणना पुराणों में नहीं है। उनमें से 'विष्णु धर्मोत्तर' काश्मीरी वैष्णव धर्म का वर्णन करता है। 'नीलमत पुराण' काश्मीरी नागों के धार्मिक नेता राजा नील के सैद्धांतिक उपदेशों का वर्णन करता है, इसमें काश्मीर के इतिहास का भी वर्णन है। बृहद्धर्मपुराण का मत है कि कपिल, बाल्मीकि, व्यास और बुद्ध—ये विष्णु के अवतार हैं।

अध्याय २

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य का संक्षिप्त परिचय

(क) भक्तिकाल से पूर्व का हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य और कवि (१५०० ई० से पूर्व)

हिन्दी कृष्ण-भक्तिकाव्य का प्रारम्भ सूरदास से माना जाता है; किंतु हिंदी कृष्ण-भक्ति काव्य पर विद्यापति का और विद्यापति पर जयदेव के काव्य का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। अतः उनके विषय में कुछ कहना असंगत न होगा।

जयदेव के जीवन के विषय में बहिस्साक्ष्य के आधार पर ही कुछ जाना गया है। इनका जन्म किंदुबिल्व (बीरभूमि बंगाल) में हुआ था। इनके पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम राधा देवी था। जयदेव ने बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन के दरबार में बहुत प्रसिद्धि पाई थी। इनका समय सन् ११७० है, अतः इनका समय भी यही माना गया है।[1]

जयदेव ने 'गीत गोविन्द' की रचना संस्कृत में करके अपने भाषाधिकार और भाव-प्रदर्शन का अच्छा परिचय दिया है। इसमें श्रीकृष्ण का चरित्र एक प्रेमी नायक के ही रूप में किया गया है। राधा के चरित्र को मधुर और प्रेममय बनाकर साहित्य में प्रथम बार प्रस्तुत करने का श्रेय जयदेव को ही है। यह ग्रंथ संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है। इसकी प्रशंसा पाश्चात्य-लेखक कीथ ने भी की है।[2] जयदेव ने हिंदी के अनेक कृष्ण-भक्त कवियों को प्रभावित किया, किंतु स्वयं हिंदी में श्रेष्ठ रचना न कर सके। एक-दो पद 'श्रीगुरु-ग्रंथ-साहब' में पाये जाते हैं पर वे भाव और भाषा की दृष्टि से बहुत साधारण कोटि के हैं।

विद्यापति 'गीतिगोविंद' से बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। कुछ समय पहले तक बंगाली विद्वान् विद्यापति को बंगाल का कवि समझते थे। किंतु जब से

---

[1] सिख रिलीजन, भाग ६ (एम० ए० मैकालिफ, १६०६)

[2] क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर (हरिटेज आव इंडिया सिरीज, पृष्ठ १२१) —ए० कीथ

बाबू राजकृष्ण मुकर्जी और डा० ग्रियर्सन ने उनके जीवन की घटनाओं का अध्ययन किया है तब से यह स्पष्ट हो गया है कि विद्यापति बंगाल के कवि नहीं थे। वास्तव में विद्यापति के पदों की भाषा हिन्दी के ही अधिक निकट है।

विद्यापति का वंश विद्वानों का वंश था। उनके पिता का नाम गणपति ठाकुर था। वे दरभंगा जिले में बिसपी के रहनेवाले थे। वे कई राजाओं के आश्रय में रहे। विद्यापति का जन्म १३६८ में और मृत्यु १४७५ में मानी जाती है।

विद्यापति के पद तीन प्रकार के हैं। (क) शिवभक्ति के पूर्ण पद, (ख) राधा-कृष्ण के प्रेमपूर्ण मिलन के शृंगारी पद, (ग) तत्कालीन परिस्थिति के चित्रण वाले पद। विद्यापति शैव थे, अतः उनके शिव सम्बन्धी पद भक्ति से पूर्ण हैं। राधा-कृष्ण सम्बन्धी पदों में भक्ति नहीं वरन् वासना ही है। उन्होंने वयःसंधि, नखशिख, मान, अभिसार, संयोग-वियोग आदि के वर्णन में अपनी पूर्ण प्रतिभा दिखाई है। जयदेव की शृंगार-भावना का प्रभाव विद्यापति पर बहुत पड़ा है। भाव, आलम्बन विभाव, उद्दीपन विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का दिग्दर्शन उनकी पदावली में सुन्दर रीति से समाया हुआ है। स्थायीभाव रति तो आदि से अन्त तक है। कृष्ण और राधा के समस्त चित्रों में वासना का रंग अधिक गहरा है। कृष्ण और राधा साधारण नायक-नायिका की भाँति हैं। विद्यापति के बहुत से पद तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण करते हैं। जैसे, कुछ में शिवसिंह के राज्याभिषेक का वर्णन है। इन पदों में सौन्दर्य अधिक नहीं है।

(ख) भक्तिकाल के कृष्ण-भक्त कवि और काव्य
(१५०० ई०—१७०० ई०)

उपलब्ध सामग्री के आधार पर सूरदास ही ब्रज-भाषा के प्रथम कृष्ण-भक्त कवि माने जाते हैं। हिन्दी कृष्ण-भक्ति काव्य की परम्परा में सबसे अधिक श्रेय सूरदास को है। सूरदास अष्टछाप के सर्वप्रथम और सबसे अधिक प्रसिद्ध कवि हैं। इनका काल निर्णय अभी तक निश्चित नहीं हो सका है। अनुमानतः इनका जन्म १४८३ के लगभग और मृत्यु १५८५ के लगभग हुई। सूर ने अपने जीवन के सम्बन्ध में स्वयं लगभग कुछ नहीं लिखा। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से सूर के सम्बन्ध में कुछ बातों का पता चलता है जो इस प्रकार है :—
"सूरदास अच्छे गायक थे, वे गऊघाट पर रहते थे और विनय के पद गाते थे।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उन्हें पुष्टिमार्ग में दीक्षित किया और कृष्ण-लीला गाने की प्रेरणा दी। सूर ने कृष्ण लीला के 'सहस्रावधि' पद लिखे जिनकी प्रसिद्धि सुनकर अकबर उनसे मिले। सूरदास अन्धे थे,[१] वे ईश्वर और गुरु में कोई भेद नहीं मानते थे। सूरदास ने पारसौली में प्राणत्याग किये।"

सूरदास के ग्रंथों में, 'सूर-सागर', 'सूर-सारावली' और 'साहित्य लहरी' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सूर-सारावली और साहित्य लहरी की प्रामाणिकता में सन्देह है। किन्तु सूरसागर प्रामाणिक ग्रंथ है। सूरसागर का आधार श्रीमद्-भागवत है और उसकी रचना १५३० के बाद मानी जाती है। इसमें १२ अध्याय हैं जिनमें क्रमशः विनय, भक्ति, विष्णु के अवतारों तथा अन्य पौराणिक कथाओं का निरूपण है। सूरसागर में दशमस्कन्ध प्रधान है। दशमस्कन्ध दो भागों में विभक्त है—पूर्वार्ध में गोकुल और ब्रज में बिहार करनेवाले श्रीकृष्ण का चरित्र है और उत्तरार्ध में द्वारिका गमन से अंत तक श्रीकृष्ण की जीवनी है। दशम स्कंध के पूर्वार्ध में कृष्ण के बाल-जीवन का बहुत ही विस्तृत वर्णन है। यद्यपि सूर ने श्रीमद्भागवत का आधार लिया है फिर भी मौलिकता की विशेष छाप है। जहाँ भागवत के कृष्ण शक्ति के प्रतीक हैं वहाँ सूरदास के कृष्ण शक्ति के प्रतीक होते हुए भी प्रेम और माधुर्य की मूर्ति हैं। सूर ने श्रीकृष्ण के शिशु और बाल जीवन का अत्यधिक मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। कृष्ण का खेलना, मणिमय आँगन में 'घुटरुवनि' चलना, रूठना, मचलना और गोप-गोपी को छकाना—इन सब के सूर ने सजीव चित्र अंकित किये हैं। सूरदास ने ग्राम्य-वातावरण के जन्मोत्सव, छठी, नामकरण, अन्नप्राशन आदि लौकिक आचारों का भी सुन्दर वर्णन किया है। साम्प्रदायिक आचारों जैसे कीर्तन, नित्यसेवा, गोचारण, वंशीलीला आदि का वर्णन भी मिलता है। नैमित्तिक कीर्तन के अन्तर्गत हिंडोला, चाँचर, फाग, वसन्त आदि के वर्णन हैं।

श्रीमद्भागवत में राधा का उल्लेख नहीं है, किन्तु सूर ने जयदेव और विद्यापति की कृष्ण-काव्य-परम्परा से प्रभावित होते हुए राधा का चित्रण किया है। राधा और गोपियों के माध्यम से सूर ने अपना भक्त-हृदय खोलकर रख दिया प्रतीत होता है। सूर की राधा का कृष्ण के प्रति प्रेम बाल्यकाल से उमड़ा हुआ

---

[१] यह अभी निश्चित नहीं हो सका कि सूर जन्मान्ध थे अथवा बाद में अन्धे हो गये। सूर के काव्य में जो वर्णनों की यथार्थता और स्वाभाविकता है, उसे देखकर उन्हें जन्मान्ध नहीं कहा जा सकता।

पूर्वानुराग वाला प्रेम है। जयदेव आदि ने राधिका का परकीया के रूप में वर्णन किया है किन्तु सूर ने स्वकीया के रूप में। यह प्रभाव ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का प्रतीत होता है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में राधा और कृष्ण का विवाह वर्णित है।

सूर के काव्य में धार्मिक भावना पूर्ण रूप से उभरकर आई है। आध्यात्मिकता सूर के काव्य में आदि से अन्त तक है। श्रीकृष्ण की मुरली योगमाया है। श्रीकृष्ण ने इसी मुरली की ध्वनि से रासलीला के लिए गोपिकाओं का आह्वान किया। सोलह-सहस्र-गोपिकाओं के बीच श्रीकृष्ण उसी प्रकार व्याप्त थे जैसे असंख्य आत्माओं के बीच परमात्मा। रास का यही रूपक है। आदि से अन्त तक लौकिक वर्णन के पीछे यही अलौकिक भावना है।

सूरदास का व्यक्तित्व साम्प्रदायिकता से बहुत ऊपर उठा हुआ था। सूर न तो धर्म प्रवर्तक थे और न धर्म प्रचारक। पुष्टिमार्गीय कर्मकाण्ड और दार्शनिक सिद्धांत उनकी साम्प्रदायिकता के द्योतक अवश्य हैं पर ऐसे अंश बहुत ही कम हैं। सूर केवल कृष्ण-भक्त थे। साम्प्रदायिकता की भावना से अछूते थे। भक्ति की दृष्टि से सूर के पदों में केवल उद्धव-गोपी-संवाद को छोड़कर सर्वत्र मंडनात्मक दृष्टिकोण ही अधिक है।

सूर ने विनय के अनेक पदों में योगादि क्रियाओं का वर्णन किया है। वे वैष्णव धर्म में दीक्षित होने से पूर्व अपनी प्रारम्भिक आयु में शैव थे। शैवों का हठयोग से घनिष्ठ सम्बन्ध है अतः हठयोग की कुछ बातें उनके उन पदों में मिलती हैं, जो वल्लभाचार्य से मिलने के पूर्व लिखे गये थे। निम्नलिखित पंक्तियों से पता चलता है कि सूर शैव सम्प्रदाय में रहे थे और उसके विधानों के अनुकूल उन्होंने तपश्चर्या भी की थी—

गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ वर्ष पवीन।
शिव विधान तप कर्‌यो बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन॥

सूरसागर के कुछ पदों में शिव पूजा का विधान वर्णित है[1] और दो पदों की टेक इस प्रकार हैं—

गौरीपति पूजति ब्रजनारि।[2] —सूरसागर, ना० प्र० सभा १३८४

[1] सूरसागर, दश मस्कन्ध, ना० प्र० सभा, पद सं० ८०५-८०८

[2] भागवत में गोपियाँ शिव की नहीं वरन् कात्यायनी देवी की पूजा करती हैं।

शिवसों विनय करति कुमारि।—सूरसागर, ना० प्र० सभा १३८५

इन पदों में गोपियाँ शिव पूजन श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए ही करती है। किंतु विशुद्ध रूप से भी वे शिवपूजन करती हैं—

नन्द सब गोपी ग्वाल समेत।
गये सरस्वती के तट एक दिन
शिव अम्बिका पूजा हेत॥

—सूरसागर, ना० प्र० सभा, पद ६२

शैव, शाक्त और कापालिक तीनों एक मत के ही सम्प्रदाय थे। ये हिंसा-परक थे और शिव शक्ति की पूजा करते थे। सूर हिंसा की प्रवृत्ति से असंतुष्ट हो उठे। निम्नलिखित पद में उन्होंने इनकी हिंसापरक प्रवृत्ति का इस प्रकार वर्णन किया है :—

अपनी भक्ति देहु भगवान्।
कोटि लालच जौ दिखावहु नाहिं ने रुचि आन॥
जरत ज्वाला, गिरत गिरिते, सुकर काटत सीस॥
देखि साहस, सकुच मानत राखि सकत न ईस॥
कामना करि कोपि कबहूँ करत कर पसु घात।
सिंह सावक जात गृह तजि, इन्द्र अधिक डरात॥
जा दिना तें जन्म पायो यहै मेरी रीति॥[1]

अतः सूर शैव पथ का परित्याग कर भागवत धर्म की ओर आकर्षित हो गये और बल्लभाचार्य से सम्बन्ध हो जाने पर उन्होंने वैष्णव-भक्ति के दास्य-भाव वाले पदों की ही रचना की।

भाषा और भाव की दृष्टि से सूर अत्यन्त उच्च कोटि के कवि हैं। ब्रज-भाषा को साहित्यिक रूप देने वाले ये प्रथम कवि हैं। इन्होंने ब्रजभाषा में मुक्तक काव्य और गीति तत्व के सहारे कृष्ण-काव्य की एक नवीन परम्परा चलाई। रसों में विशेषकर शांत और श्रृङ्गार रसों का वर्णन किया। शांत-रस का प्राचुर्य उनके विनय के पदों में है। श्रृङ्गार और शांत के अतिरिक्त हास्य और करुण रसों का भी समावेश है। श्रीकृष्ण-लीला-वर्णन में सूर ने श्रृङ्गार के

---

[1] सूरसागर, ना० प्र० सभा, पद सं० १०६

दोनों पक्षों—संयोग और वियोग पर दृष्टि डाली है। माता यशोदा की कृष्ण के प्रति वात्सल्य प्रेम की भावना सूर के पदों में सुन्दरता की पराकाष्ठा को पहुँच गई है। सूर ने मानव हृदय के सूक्ष्म भावों का सुन्दर चित्रण किया है। उनमें मानव-हृदय की समस्त परिस्थितियाँ निहित हैं। सूर का भ्रमरगीत वाग्वैदग्ध्य-पूर्ण अंश है। संवाद-शैली, गोपियों की वाचालता, उपालंभ और सगुणोपासना के निरूपण की दृष्टि से हिन्दी-काव्य में यह अलग ही स्थान रखता है।

साहित्यिक महत्त्व की दृष्टि से सूरदास के पश्चात् नन्ददास का ही स्थान है। गुसाईं विट्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछाप के कवियों में भी सूरदास के बाद नन्ददास का ही स्थान है। नन्ददास के जीवन-विवरण की प्रामाणिक सामग्री बहुत कम है। २५२ वैष्णवों की वार्ता के अनुसार यह कहा जा सकता है कि वे सूर के समकालीन और तुलसी के चचेरे भाई थे। रामपुर (एटा) के निवासी थे। ये ब्राह्मण जाति के थे, गुसाईं विट्ठलनाथ के शिष्य थे और भक्त थे।

नन्ददास के ग्रन्थों में 'रासपंचाध्यायी', 'सिद्धांत-पंचाध्यायी' और 'भँवरगीत' अधिक प्रसिद्ध है।' रासपंचाध्यायी' का मुख्य आधार 'भागवत पुराण' है। विष्णु पुराण का प्रभाव भी किन्हीं स्थलों पर दिखाई पड़ता है। इन आधारों के होते हुए भी 'रासपंचाध्यायी' एक स्वतन्त्र ग्रंथ है। 'रासपंचाध्यायी' की रचना १५५३ के लगभग हुई। कुछ लोग तो रासपंचाध्यायी को हिन्दी का गीतगोविन्द कहते हैं। इसमें वियोग-संयोग और प्रकृति के सुन्दर चित्र हैं, इसकी भाषा भी प्रवाहपूर्ण है। शब्दों का चयन बहुत सुन्दर है। वास्तव में 'नन्ददास जड़िया और सब गढ़िया' यह नन्ददास के लिए बहुत ही उपयुक्त है। शब्दों का चयन और प्रयोग, चित्रणकला, ईश्वरोन्मुख प्रेम और अनुप्रास की छटा के कारण 'रासपंचाध्यायी' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में से है।

नन्ददास का दूसरा ग्रंथ 'भँवरगीत' है। यह काव्य की दृष्टि से उतना अच्छा नहीं बन पड़ा जितना 'रासपंचाध्यायी' है। 'भँवरगीत' में कथा की उतनी प्रधानता नहीं है जितनी दार्शनिकता की। गोपियों और उद्धव के प्रश्न और उत्तर के माध्यम से सगुण और निर्गुण के सापेक्ष्य महत्त्व की तर्कपूर्ण घोषणा की गई है। अंत में गोपियों की विजय के द्वारा सगुण की महत्ता प्रतिपादित की गई है। 'भँवरगीत' में गोपियों के विरह-दशा के चित्र अंकित करते हुये ब्रह्म, माया और जीव की विवेचना भी की गई है।

अष्टछाप के कवियों में सूरदास, नन्ददास और परमानन्ददास के अतिरिक्त अन्य कवि भी हैं पर उनका साहित्यिक महत्त्व विशेष नहीं है, अतः कृष्ण भक्ति-

काव्य में अष्टछाप के कवियों के बाद हितहरिवंश का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म १५०२ में माना जाता है। रचनाकाल १५४३ से १५८३ तक माना जाता है। पहले वे मध्वानुयायी थे फिर इन्होंने राधावल्लभी नामक एक सम्प्रदाय की स्थापना की जिसे 'हित सम्प्रदाय' भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय में राधा की आराधना, सखी-भाव, महाप्रसाद की निष्ठा, विधिनिषेध का त्याग और अनन्य रूप से दास-भक्ति आदि बातें मुख्य हैं। स्वयं हितहरिवंशजी श्रीकृष्ण की वंशी के अवतार समझे जाते थे। इनकी स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त उनका 'हित चौरासी' ग्रंथ ब्रजभाषा में रचित सुन्दर ग्रंथ है। इसकी कई टीकाएँ भी लिखी गई हैं।

कृष्ण भक्ति-काव्य की परम्परा में राजस्थान की काव्य-कोकिला मीरा का भी एक विशिष्ट स्थान है। मीरा का भी जीवन वृत्त संदिग्धावस्था में है। अन्तस्साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे राजस्थान के राठौर-वंश में पैदा हुई थीं। मीराबाई राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह (मृ० सं० १५८४ वि० सन् १५२७ ई०) की इकलौती संतान थी। रत्नसिंह को राव दूदा जी ने राज्य की ओर से, उनके जीवन-निर्वाह के लिए जागीर में बाजोली, कुड़की आदि बारह गाँव प्रदान किये थे और मीराबाई का जन्म कुड़की[1] गाँव में ही सं० १५५५ वि० (सन् १४९८ ई०) के आसपास हुआ था। बाल्यावस्था में ही माता-पिता की छत्रछाया से वंचित मीरा का विवाह सिसौदिया वंश के राजा के साथ हुआ। बचपन से ही कृष्ण-भक्ति में लीन मीरा की भक्ति जीवन की कटुताओं से अधिक पुष्ट होती गई, फिर रैदास तथा साधुओं के सत्संग से और भी अधिक दृढ़ हुई। कृष्ण-भक्ति के कारण उन्हें अपनी ससुराल में अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ा। जनश्रुति के अनुसार एक बार उनके पास विष भेजा गया, किंतु वह अमृत बन गया और पिटारी में बन्द सांप उनके लिए पुष्पहार बन गया। मीरा ने लोक-लाज और वंश की मर्यादा को भी कृष्ण-भक्ति के आगे तिलांजलि दे दी। मीरा के पदों में उनके वैधव्य और जन्म-तिथि का उल्लेख नहीं है।

गीति-काव्य की दृष्टि से मीरा की रचनाएँ आदर्श हैं। काव्य के गुणों को लाने की चेष्टा मीरा ने नहीं की है वरन् वे स्वतः आ गये हैं। वास्तव में मीरा

---

[1] 'महिला' मृदुवाणी, पृ० ५९ में मु० देवीप्रसादजी ने इस गाँव का नाम चौकड़ी दिया है।

तो अपने गिरिधर गोपाल की प्रेमयोगिनी हैं, काव्य के बाह्यगुणों का पालन करनेवाली साधारण कवियित्री नहीं। मीरा की रचनाओं में दो प्रकार के दृष्टिकोण पाये जाते हैं। पहला वह जिसमें मीरा की उपासना माधुर्य-भाव की है। माधुर्य भाव की उपासना के कारण उन्हें महाप्रभु चैतन्य से प्रभावित कहा जाता है; किन्तु यह सम्भवतः ठीक नहीं। मीरा की व्यक्तिगत भावना अत्यन्त स्पष्ट है। वे किसी से प्रभावित प्रतीत नहीं होतीं। ऐसे पदों में उनकी भावना रहस्यवाद के बहुत निकट है। यहाँ कृष्ण का स्वरूप पुराणों के अनुरूप नहीं है। उनमें न तो विष्णु की ही भावना है और न शक्ति का ही स्वरूप है। भागवत आदि पुराणों के अनुसार कृष्ण की अलौकिक घटनाओं का भी वर्णन बहुत कम है। मीरा के पदों का दूसरा दृष्टिकोण वह है जिनमें मीरा पर संतों का प्रभाव प्रतीत होता है। जैसे—

"नैनन बनज बसाऊँरी, जो मैं साहेब पाऊँ"

लेकिन ऐसे पदों की संख्या कम ही है।

कुछ पदों में मीरा ने भक्ति के आदर्श की व्याख्या करते हुए पौराणिक-कथाओं का भी उल्लेख किया है, लेकिन अधिकांश पदों में मीरा ने 'गिरधर गोपाल' का अपने पति के रूप में ही वर्णन किया है—

"जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई"

मीरा ने शृंगार रस द्वारा ही अपने भावों का प्रकाशन किया है लेकिन उस शृंगार में वासना की गन्ध भी नहीं आने पाई। मीरा के काव्य में आत्मनिवेदन है, पीड़ा है, कसक है, विरह है, वेदना है, पर वह सब आध्यात्मिक है।

मीरा के पदों की भाषा बहुत अनिश्चित है, क्योंकि बहुत दिनों तक वे मौखिक रूप में रहे। उनकी राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा में गुजराती, पूर्वी और खड़ी बोली के रूप भी मिलते हैं। मीरा की भाषा वास्तव में मारवाड़ी थी। मीरा के पदों का सबसे अधिक प्रामाणिक संस्करण 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' से प्रकाशित हुआ है।[१]

रसखान गोसाईं बिट्ठलनाथ के शिष्य थे। उनके काव्य का रचनाकाल १६१४ माना जाता है। इनके काव्य में मधुर भाव की उपासना की प्रधानता है। रसखान वास्तव में रस की खान ही प्रतीत होते हैं। रसखान के प्रेम में

---

[१] 'मीराबाई की पदावली'—संपादक परशुराम चतुर्वेदी, (नवीन संस्करण)।

जितना रस है उतना बहुत कम कवियों में मिलता है। उनकी दो प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'प्रेम वाटिका' और 'सुजान रसखान'। रसखान ने सवैयों में काव्य रचना की है। उनका लौकिक प्रेम ही आध्यात्मिक हो गया था और वे कृष्ण-प्रेम में तन्मय हो उठे थे।

हिन्दी कृष्ण-भक्ति काव्य की परम्परा में चाचा हित वृन्दावन, ध्रुवदास, नरोत्तमदास, गंग, बलभद्र मित्र, सेनापति, रहीम आदि अनेक कवि हुए जिन्होंने कृष्ण-भक्ति से पूर्ण रचनाएँ कीं। किंतु इस समय शृंगारिकता की भावना फैलने लगी थी इसलिए इनके काव्य में शृंगारिकता अपेक्षाकृत अधिक है। साथ ही इस समय शृङ्गार के अतिरिक्त नीति की कविता भी होने लगी थी।

नरोत्तमदास का समय १५४५ के लगभग माना जाता है। वे सीतापुर में बाड़ी नामक स्थान के निवासी थे। नरोत्तमदास कृत 'सुदामाचरित' एक छोटी किंतु मार्मिकता और सरसता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रचना है। भाषा मजी हुई प्रवाहपूर्ण है। उदारणस्वरूप सुदामा की दीनदशा का वर्णन देखिए—

सीस पगा न झगा तन पै, प्रभु जाने को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी दुपटी, अरु पाँय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल कौ धाम बतावत आपनो नाम सुदामा॥

कवि रहीम अकबर के दरबारी कवि थे। उनका समय १५६७ से १६२५ माना जाता है। रहीम संस्कृत, अरबी और फारसी के पण्डित थे। उनके दोहों से प्रतीत होता है कि उन्हें संसार का गहरा अनुभव था। एक-एक दोहे में जीवन के अनुभव भरे पड़े हैं। रहीम तुलसी के स्नेह-भाजन थे। उनका ब्रज-भाषा और अवधी-भाषा पर समान अधिकार था। रहीम के 'रहीम दोहावली', 'बरवै नायिका भेद', 'मदनाष्टक शृङ्गार सोरठ' आदि ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

सेनापति का जन्म लगभग १५८६ में हुआ था। ये कान्यकुब्ज थे और अनूप शहर में रहते थे। इनके पूर्व ब्रजभाषा काव्य में प्रकृति-चित्रण उद्दीपन रूप में ही होता था, किंतु सेनापति ने स्वतन्त्र रूप से प्रकृति वर्णन किया है। 'कवित्त रत्नाकर' नामक ग्रंथ में भक्ति सम्बन्धी पद भी मिलते हैं, किंतु इनकी संख्या कम है। इनके इष्टदेव भी राम प्रतीत होते हैं।

(ग) रीतिकाल के कृष्ण-भक्त कवि और काव्य
(१७०० ई० से १६०० ई०)

हिन्दी कृष्ण-भक्ति काव्य की परम्परा यद्यपि ईसा की सत्रहवीं और अठारहवीं

शताब्दी में भी चलती रही तथापि उसमें भक्ति का वह आवेग न रह गया जो चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में था। हितहरिवंश की परम्परा में आगे चलकर सत्रहवीं शताब्दी में ध्रुवदास आते हैं। उनके लगभग चालीस ग्रंथों का पता चला है किंतु उनकी प्रामाणिकता में अभी सन्देह है। उनमें राधा और कृष्ण की प्रेम-लीलाएँ हैं।

घनानन्द या आनन्दघन भी सत्रहवीं शताब्दी में हुए थे। उनके ग्रन्थ 'रसकेलिवल्ली', 'सुजान सागर', 'बानी' आदि हैं। इन्होने शुद्ध ब्रजभाषा का प्रयोग किया है और राधा-कृष्ण के विहार पर लिखा है।

हितहरिवंश की परम्परा में कवि श्री हठी जी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने 'राधा सुधा-शतक' की रचना की है। इन्होंने राधा के सम्बन्ध में भक्ति-भावना से पूर्ण बहुत सुन्दर कवित्त लिखे हैं। यह ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है।

रीतिकालीन कृष्णकाव्य में भक्ति का उद्रेक रह ही नहीं गया था। प्रारम्भ में भी कृष्णभक्ति-काव्य में मधुर भाव, सौन्दर्य और आकर्षक बातों का अभाव न था, लेकिन उन बातों में भी आध्यात्मिकता का भाव सन्निहित था। किन्तु धीरे-धीरे अलौकिक प्रेम और श्रृंगार सांसारिक होता गया। इस काल में अनेक ऐसे कवि हुए जिन्होंने रीति सम्बन्धी रचनाओं के अतिरिक्त उन्मुक्त एकनिष्ठ प्रेम का वर्णन किया है। किन्तु उन्होंने केवल राधा-कृष्ण के नामों का ही आश्रय लिया है। इनका प्रेम लौकिक प्रेम है। ऐसे कवियों को केवल श्रृंगारी कवि ही कहा जा सकता है। उनका काव्य कृष्ण-भक्ति काव्य के अन्तर्गत नहीं आ सकता।

(घ) आधुनिक काल में कृष्णभक्ति-काव्य
(१६०० ई० के बाद का)

भारतेन्दु युग का भक्ति-काव्य अत्यन्त शिथिल और भक्ति काल का केवल अनुकरण मात्र है। एक ओर राधा-कृष्ण के नामों का आश्रय लेकर अब तक श्रृंगारपूर्ण रचनाएँ हो रही थीं, दूसरी ओर स्वदेश प्रेम के गीत भी गाये जाने लगे थे।

राधा कृष्ण के नाम पर बहुत ही भद्दा वर्णन होने लगा था। कवियों ने लीलाओं में नखशिख आदि का ऊबा देनेवाला वर्णन किया है। संस्कारों में नामकरण, छठी, बधावा, अन्नप्राशन आदि का वर्णन मिलता है। कृष्ण की लीलाओं ने कवियों को इतना मोहित कर रखा था कि लीलाओं के वर्णन में

जल विहार, वन विहार, दानलीला, फागलीला, मानलीला, चुड़िहारिन, पनिहारिन आदि के वर्णन बहुत अधिक हैं। इनमें भक्ति की अपेक्षा शृंगारिकता की ही प्रधानता है। राम के वर्णन की अपेक्षा कृष्ण का वर्णन अधिक है, क्योंकि राम के वर्णन में सम्भवतः कवियों को इतनी छूट न मिलती, अतः कृष्ण को ही 'कन्हैया' बनाकर अपने मन के शृंगारपरक उद्‌गार निकाले हैं।

रीवाँ के महाराज रघुराजसिंह द्वारा रचित 'रुक्मिणी-परिणय' एक महाकाव्य है। इसकी रचना का आधार भागवत-पुराण ही है। इसमें कृष्ण-जन्म से लेकर रुक्मिणी-विवाह तक का वर्णन है। इसमें कालनेमि के सभासदों का वर्णन मुसलमानों के अनुरूप किया हैं। कृष्ण-रुक्मिणी-विलास के प्रसंग में कमरे का वर्णन शाही महलों के शयनागार जैसा किया गया है। कृष्ण के प्रसंग में यह समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव बहुत ही भद्दा लगता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नवयुग के प्रवर्तक और देशभक्त कवि थे। इनकी स्वदेश सम्बन्धी रचनाओं के अतिरिक्त कुछ भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ भी हैं, जिनमें उनके कृष्ण की भक्ति के गीत हैं। 'सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के' कहने वाले इस परम भक्तकवि की भक्ति संकुचित और सीमित नहीं थी। उन्होंने राधाकृष्ण की भक्ति के अनेक सरस पद, कवित्त और सवैये लिखे हैं। 'ब्रज के लता पता मोहिं कीजै' से आरम्भ होनेवाले पद में रसखान की-सी भावनाएँ हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओं में हृदय की सच्ची अनुभूति और भावावेश मिलता है। उनके काव्य में एक सच्चा भक्त-हृदय प्रतिबिम्बित होता है। सम्भवतः उन्नीसवीं शताब्दी के ये ही ऐसे कवि हैं जिनके काव्य में वैष्णवता के साथ गीति तत्त्व सुन्दर स्वाभाविक रूप में उभरा है।

आधुनिक खड़ी बोली के युग में रत्नाकर ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। कृष्ण की बाँसुरी, गोपियों की विरह-वेदना और उद्धव के निर्गुण का असफल उपदेश जो पुस्तकों के पृष्ठों में था, एक बार पुनः रत्नाकर की काव्य-वीणा में मुखरित हुआ।

जगन्नाथदास रत्नाकर का काव्य पौराणिक आख्यानों पर आधारित है। ये कृष्ण-भक्त थे। रत्नाकर द्वारा रचित 'उद्धव-शतक' विरहवर्णन का अच्छा उदाहरण है। कृष्ण के सखा उद्धव ब्रज में गोपिकाओं को ज्ञान का उपदेश देने गये पर वे स्वयं गोपियों के ही रंग में रंग गये—उद्धवशतक इसी घटना से सम्बन्धित काव्य है। 'उद्धवशतक' की वर्णन-शैली में नवीनता है। कहीं-

कहीं तो उद्धव-शतक की सूक्तियाँ सूर को भी मात करती हैं। रत्नाकर जी ने भावों के चित्र बहुत सफल खींचे हैं। उद्धव-शतक में गीति तत्त्व का भी पूर्ण निर्वाह हुआ है।

द्विवेदी-युग के कृष्ण-भक्ति काव्य में मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्या सिंह उपाध्याय का नाम आदर से लिया जाता है। गुप्त जी यद्यपि रामभक्त हैं, फिर भी उन्होंने कृष्ण काव्य की परम्परा में अपनी 'द्वापर' की एक कड़ी जोड़ ही दी। इसमें 'भ्रमरगीत' सुन्दर है।

इस बीसवीं शताब्दी की काव्य-रचना में प्राचीन विषयों का नवीन ढंग से प्रतिपादन भी मिलता है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' इसके उदाहरण हैं। ये खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि थे। 'हरिऔध' जी ने कृष्ण-काव्य की रचना की। 'प्रिय-प्रवास' उनका एक युग-प्रवर्तक महाकाव्य है। इसका कथानक पौराणिक होते हुये भी इसमें विषयों को नवीनता मिली है। 'प्रिय प्रवास' के कृष्ण माखन चुरानेवाले, गोपियों को छकानेवाले सलोने श्याम नहीं हैं, बल्कि वे लोक-नायक के रूप में चित्रित हैं। और 'प्रिय-प्रवास' की राधा, कृष्ण के वियोग में अश्रु प्रवाहित करनेवाली एक साधारण नायिका नहीं वरन् जनहित में संलग्न एक आदर्श नारी है।

द्विवेदी-युग के पश्चात् छायावादी युग में कृष्णकाव्य की धारा बन्द-सी हो गई। इस नये युग में नई धाराओं का जन्म हो चुका था। किंतु द्वारका-प्रसाद मिश्र ने 'कृष्णायन' की अवधी में रचना करके हिंदी कृष्णभक्ति-काव्य की परम्परा में एक कड़ी जोड़ने का सफल प्रयत्न किया है।

——

अध्याय ३

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में दार्शनिकता और उस पर पुराणों का प्रभाव

(क) ब्रह्म

पुराणों में ब्रह्म सम्बन्धी दार्शनिक विवेचन पर्याप्त रूप में मिलता है। पुराणों से भी पहले, उपनिषदों और महाभारत आदि संस्कृत ग्रंथों में भी ब्रह्म सम्बन्धी दार्शनिक विचार मिलते हैं। गोपालोत्तर तापनी उपनिषद् के प्रथम उपनिषद् में लिखा है—"ॐ 'कृष' शब्द सत्ता का वाचक है और न' शब्द आनन्द का। इन दोनों की जहाँ एकता है, वहाँ सच्चिदानन्द-स्वरूप परब्रह्म ही 'कृष्ण' इस नाम से प्रतिपादित होता है। ॐ अनायास ही सब कुछ कर सकनेवाले सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण की, जो वेदान्त द्वारा जानने योग्य, सबकी बुद्धि के साक्षी तथा सम्पूर्ण जगत् के गुरु हैं, सादर नमस्कार है।[1]"

उपनिषदों की भाँति महाभारत ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि जगन्नियंता, देवाधिदेव, अखिल लोकपति भगवान् नारायण ही वासुदेव श्रीकृष्ण के रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे।[2] एक अन्य स्थान पर धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में बड़े-बड़े महर्षियों के साथ देवर्षि नारद भी यज्ञ की शोभा को देखने के लिए पधारते हैं। अन्य राजाओं के साथ भगवान् श्रीकृष्ण को सभा-मंडप में उपस्थित देखकर उन्हें भगवान् नारायण के भूमंडल पर अवतीर्ण होने की बात स्मरण हो आती है[3] और वे मन ही मन पुण्डरीकाक्ष श्रीहरि का चिंतन करने लगते हैं। इसके बाद जब सभा में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि

---

[1] ॐ कृषिर्भूवाचकः शब्दो न च निर्वृत्तिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥
ॐ सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे।
नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे॥
—गोपालपूर्वतापनी उपनिषद्—प्रथम उपनिषद् श्लो० १.

[2] महाभारत, आदिपर्व अ० ६४ [3] महाभारत, सभापर्व ३६।१२

आगन्तुक महानुभावों में सर्वप्रथम किसकी पूजा की जाय उस समय महात्मा भीष्म यह कहते हुए कि "मैं तो भूमंडल भर में श्रीकृष्ण को ही प्रथम पूजन के योग्य समझता हूँ"—भर सभा में उनकी महिमा का बखान करने लगते हैं। वे कहते हैं—"वासुदेव ही इस चराचर विश्व के उत्पत्ति, स्थान एवं विश्राम भूमि हैं और इस चराचर प्राणिजगत् का अस्तित्व उन्हीं के लिए है। वासुदेव ही अव्यक्त प्रकृति, सनातन कर्ता और समस्त प्राणियों के अधीश्वर हैं, अतएव पूजनीय हैं—

कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः।
कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम्॥
एष प्रकृतिरव्यक्ता कर्त्ता चैव सनातनः।
परश्च सर्वभूतेभ्यस्तस्मात् पूज्यतमो हरिः॥[1]"

देवर्षि नारद भी इस बात का समर्थन करते हैं।[2] यही नहीं, इस प्रस्ताव का अनुमोदन करनेवाले सहदेव पर देवता लोग आकाश से पुष्प वृष्टि करते हैं और आकाशवाणी भी साधु-साधु कहकर उनकी सराहना करती है—

ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिः सहदेवस्य मूर्धनि।
अदृश्यरूपा वाचश्चाप्यब्रुवन् साधु साध्विति॥[3]

महाभारत के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं। उनके पराक्रमों की सूची महाभारत में अनेक स्थानों पर उपलब्ध होती है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'भारत सावित्री' में एक स्थान पर लिखा है—"कृष्ण के पराक्रमों को सूची यहाँ (१३। १०-३६) और दो बार उद्योग-पर्व में आई है। वहाँ एक बार तो विदुर ने ही दुर्योधन से (उद्योग १२८।४१-५०) और दूसरी बार संजय ने अर्जुन के शब्दों को उद्धृत करते हुए उसका उल्लेख किया है (उद्योग ४७।६८-८०)। अर्जुन के कहे हुए दोनों वर्णन पंचरात्र भागवतों के प्रभाव के अन्तर्गत निर्मित हुए। इनमें नरनारायण का एक साथ उल्लेख है और स्पष्ट रूप से कृष्ण को विष्णु का अवतार और विराट् पुरुष कहा गया है।[4]"

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने महाभारत से उद्धरण देते हुए यह स्पष्ट किया है कि श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है। वे लिखते हैं—"हे कृष्ण, तुम अदिति

---

[1] महाभारत, सभापर्व ३८।२३-२४ [2] महाभारत, सभापर्व ३९।८
[3] महाभारत, सभापर्व ३९।६ [4] भारत सावित्री, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ० १८५

के पुत्र हो, इन्द्र के छोटे भाई हो, तुम विष्णु हो। बालपन में ही तुमने भुवर्लोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी को तीन पैरों से नाप लिया। युगान्त में सब भूतों का संहार करके आत्मा में जगत् को आत्मसात् करके तुम स्थित होते हो। तुम्हारे जैसे कर्म पूर्व या अपर काल में कोई नहीं कर सका। तुम ब्रह्म के साथ वैराज-लोक में निवास करते हो।"

अर्जुन के इस अतिमानवी वर्णन पर भागवत धर्म की दुहरी छाप लगाने के लिए स्वयं कृष्ण के मुँह से यहाँ कुछ विशिष्ट वाक्य कहलाए गये हैं—"हे पार्थ, तुम मेरे हो, मैं तुम्हारा हूँ। जो मेरे हैं वे ही तुम्हारे हैं। जो तुम्हारा द्वेषी है वही मेरा द्वेषी है। जो तुम्हारा अनुगत है वही मेरा अनुगत है। तुम नर हो, मैं नारायण हूँ। उस लोक से हम दोनों नर-नारायन ऋषियों के रूप में इस लोक में आये हैं। मैं तुमसे और तुम मुझसे अभिन्न हो। हम दोनों में कोई भेद नहीं जाना जा सकता।[१]"

उपनिषदों और महाभारत आदि की इस ब्रह्म सम्बन्धी दार्शनिक विचार-धारा का विकसित और परिष्कृत रूप पुराणों में दिखलाई पड़ता है, जिसका कि हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वैष्णवपुराणों में विष्णु को ही परब्रह्म माना गया है और श्रीकृष्ण उन्हीं परब्रह्म विष्णु के अवतार हैं। विष्णु पुराण में श्रीकृष्ण ही परब्रह्म रूप में चित्रित हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। वे ही अपने भक्तों को संसार-सागर से तारने वाले हैं।[२] एक अन्य स्थान पर विष्णु पुराण में जनार्दन देव को ही सृष्टि का रचयिता, पालन कर्त्ता और संहारक कहा गया है। और वे ही स्वयं जगत् रूप भी हैं।[३] वास्तव में श्रीकृष्ण ही परब्रह्म है। विष्णु पुराण के तृतीय अंश में लिखा है—"ॐ यह अविनाशी एकाक्षर ही ब्रह्म है। यह वृहत् और व्यापक है इसलिए 'ब्रह्म' कहलाता है। और जो परमात्मस्वरूप भगवान् वासुदेव का ही रूप है, उस ओंकार रूप परब्रह्म को बारम्बार नमस्कार है।[४]" एक अन्य स्थान पर विष्णु पुराण में ब्रह्माजी श्रीहरि

---

[१] भारत सावित्री, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० १८६, १८७।

[२] विष्णु पु०, १।२।१-२

[३] एवमेष जगत्स्रष्टा जगत्पाता तथा जगत्।
जगद्भक्षयिता देवः समस्तस्य जनार्दनः॥
विष्णु पु०, १।२२।४०

[४] विष्णु पु०, ३।२।२२, २८

की स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे देवताओं के अगोचर प्रभु! परा और अपरा ये दो विद्यायें आप ही हैं। हे नाथ! वे दोनों आप ही के मूर्त और अमूर्त रूप हैं। हे अत्यन्त सूक्ष्म! हे विराट स्वरूप! हे सर्व-हे सर्वज्ञ! शब्दब्रह्म और परब्रह्म—ये दोनों आप ब्रह्ममय के ही रूप हैं।[१]"

बृहन्नारदीय पुराण में वर्णित विष्णु भी परब्रह्म स्वरूप हैं। वे ही परमात्मा हैं। एक स्थान पर कहा गया है—"जो जगत् के कर्त्ता ब्रह्माजी हैं वे इनकी नाभि से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए ये विष्णुजी ही परमात्मा रूप हैं—इनसे परे अन्य कोई नहीं है।[२]" यह सब चर-अचर जगत् विष्णु की शक्ति से ही उत्पन्न हुआ है। जो भी जड़ और चेतन वस्तु मात्र है वे विष्णु की शक्ति से ही उत्पन्न हैं—कुछ भी विष्णु से भिन्न नही है।[३] वे ही परब्रह्म हैं और वे ही परम शुद्ध सत्वगुण आदि भेद से तीन मूर्ति अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश होकर संसार की रचना, पालन और संहार करते हैं।[४] बृहन्नारदीय पुराण के छत्तीसवें अध्याय में लिखा है—"जो सर्वात्मा सब के कारण और सब कर्म के दाता हैं, जो श्रेष्ठ वरयोग्य अजर है, ऐसे परमेश्वर विष्णु भगवान् को प्रणाम करता हूँ।[५]"

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में भी राधा के स्वामी श्रीकृष्ण ही परब्रह्म रूप में वर्णित हैं। कृष्ण जन्म खंड में ब्रह्मा श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं "कि आप ही जगत् के स्वामी हैं, सुख-दुख और संसार के कारण हैं। शंकर भी आपसे पार नहीं पा सकते। जो कुछ भी संसार में है, सब आप का ही अंश है—आपसे परे कुछ भी नहीं है।[६]" ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में एक अन्य स्थान पर कहा गया है—'आप ही ब्रह्म हैं, आप ही धाम हैं, आप ही निर्गुण और निराकार

---

[१] द्वे विधे त्वमनाम्नाय परा चैवापरा तथा।
त एव भक्तो रूपे मूर्तामूर्तात्मिके प्रभो ॥३४॥
द्वे ब्रह्मणो त्वणीयोऽतिस्थूलात्मन्सर्व सर्ववित्।
शब्द ब्रह्म परं चैव ब्रह्मं बह्ममयस्य मत् ॥३५॥
—विष्णु पुराण ५।१।३४, ३५

[२] बृहन्नारदीय पु०, ३।२५ [३] बृहन्नारदीय पु०, ३।१० [४] बृहन्नारदीय पु०, ३।२२, २३ [५] बृहन्नारदीय पु०, ३६।२६ [६] ब्रह्मवैवर्त्त पु०, (कृष्णजन्म खंड) २०।४०-५१

हैं और आप ही सगुण हैं। आप ही साक्षी रूप हैं, निर्लिप्त हैं और परमात्मा हैं। प्रकृति और पुरुष के भी आप ही कारण हैं।[1]"

श्रीमद्भागवत में भी श्रीकृष्ण ही परब्रह्म परमात्मा हैं। वे ही सत्य की आत्मा हैं। दशम स्कंध में स्वयं भगवान् उद्धव से कहते हैं—"मैं सबका उपादान कारण होने से सबका आत्मा हूँ, सब में अनुगत हूँ, इसलिए मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नहीं हो सकता। जैसे संसार के सभी भौतिक पदार्थों में आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, इन्हीं से सब वस्तुएँ बनी हैं और यही उन वस्तुओं के रूप में है, वैसे ही मैं मन, प्राण, पञ्चभूत, इन्द्रिय और उनके विषयों का आश्रय हूँ। वे मुझमें हैं, मैं उनमें हूँ और सच पूछो तो मैं ही उनके रूप में प्रकट हो रहा हूँ।[2]"

श्रीकृष्ण से एक अन्य स्थान पर कहलाया गया है—"जगत् का परम कारण मैं ही ब्रह्मा और महादेव हूँ। मैं सबका आत्मा, ईश्वर और साक्षी हूँ तथा स्वयं प्रकाश और उपाधिशून्य हूँ। अपनी त्रिगुणात्मिका माया को स्वीकार करके मैं ही जगत् की रचना, पालन और संहार करता रहता हूँ। और मैंने ही उन कर्मों के अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु और शंकर ये नाम धारण किये हैं। ऐसा ही भेद-रहित विशुद्ध परब्रह्म स्वरूप मैं हूँ। इसमें अज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य समस्त जीवों को विभिन्न रूप से देखता है।[3]"

भागवत पुराण में एक स्थान पर ब्रह्माजी श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं—"आपके नाभि कमलरूप भवन से मेरा जन्म हुआ है। यह सम्पूर्ण विश्व आपके उदर में समाया हुआ है। आपकी कृपा से ही मैं त्रिलोकी की रचना रूप उपकार में प्रवृत्त हुआ हूँ।[4]"

---

[1] ब्रह्मवैवर्त्त पु०, (कृष्णजन्म खंड) १।३६, ३७

[2] भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित्।
यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही॥
तथाहं च मनः प्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः॥२६॥

—भागवत १०।४७।२९

[3] भागवत, ४।७।५०, ५१, ५२।

[4] यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण।
तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योग निद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय॥२१॥
—भागवत ३।९।२१

पद्मपुराण में भी विष्णु को ही परब्रह्म माना गया है। एक स्थान पर लिखा है—"ये साक्षात् परमात्मा विष्णु भगवान् हैं व जगत् के लिए ब्रह्मा की प्रार्थना से प्रकट होते हैं, यद्यपि ये अजन्मा, वेद, यही स्वर्ग भी हैं, इसमें संशय नहीं।[1]" पद्मपुराण में एक अन्य स्थान पर लिखा है—"श्री हरि के अंश से कोटि ब्रह्मा, विष्णु, शंकर होते हैं व सृष्टि पालन, नाश करते हुए उसमें ठहरे रहते हैं, परन्तु यह सब उन्हीं हरि से उत्पन्न हैं।[2]"

इस प्रकार लगभग सभी वैष्णव पुराणों में श्रीकृष्ण परब्रह्म के रूप में ही वर्णित हैं, और इसका पूर्ण प्रभाव हिंदी कृष्णभक्ति-काव्य पर पड़ा है। अनेक हिंदी कृष्णभक्त कवियों ने श्रीकृष्ण को परब्रह्म के रूप में चित्रित किया है।

सूरदास के इष्टदेव पूर्ण पुरुषोतम श्रीकृष्ण हैं। उनके सगुण और निर्गुण दोनों रूप में परब्रह्म श्रीकृष्ण ही इस सम्पूर्ण विश्व के कारण हैं। वे आदि, अनादि, अनूप और सर्वान्तर्यामी हैं। श्रीकृष्ण ही अंश और कला रूप में असंख्य रूप धारण करते हैं। जीवरूप में, जगत्रूप में तथा सम्पूर्ण देवता रूप में, जो कुछ भी इस जगत् में है वह सब उन्हीं का अंश है। वे ही अक्षर—ब्रह्म-रूप हैं और वे ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। ये सम्पूर्ण रूप उन्हीं से अंश रूप बनकर प्रसूत हैं। उनके निर्गुण रूप तक हमारा मन और हमारी वाणी नहीं पहुँच सकती, इसलिए सूरदास ने उनके सगुण रूप की लीला का गुणगान ही आध्यात्मिक सिद्धि का साधन माना है। उक्त भाव को प्रकट करनेवाले अनेक पद हैं—एक पद में निर्गुण भक्ति में होने वाली कठिनाइयों को दिखलाते हुए कहते हैं "अविगत गति कछु कहत न आवै।" इस पद में सूर ने निर्गुणोपासना में होने वाली कठिनाइयों का वर्णन किया है।

भागवत पुराण में भी ऐसा ही भाव एक श्लोक में है—'जो लोग मन और इन्द्रिय रूप नगरों में भरे हुए इस संसार सागर को योग आदि दुष्कर साधनों से पार करना चाहते हैं, उनका उस पार पहुँचना कठिन ही है, क्योंकि उन्हें कर्णधार रूप श्रीहरि का आश्रय प्राप्त नहीं है। अतः तुम तो भगवान् के आराधनीय चरण कमलों को नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर समुद्र को पार कर लो।[3]"

---

[1] पद्मपुराण, (स्वर्ग खंड) १।८२, ८३ [2] पद्मपुराण, (पाताल खंड) ६९।११३

[3] कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीर्षन्ति।
तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्॥
—भाग० ४।२२।४०

एक पद में प्रकृति पुरुष नारायण आदि को गोपाल का अंश माना है—

सदा एक रस एक अखंडित आदि अनादि अनूप।
कोटिकल्प बीतत नहिं जानत विहरत युगल सरूप॥
सकल तत्त्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधिकाल।
प्रकृति पुरुष श्री पति नारायण सब हैं अंश गुपाल॥

इस पद में सूर ने ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष आदि की अद्वैतता स्वीकार करते हुए कृष्ण और परब्रह्म का भी एकीकरण किया है। सूर के कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म ही हैं। वे सदा से एक हैं, रस रूप हैं, अखंडित हैं और अनादि अनूप हैं। सृष्टि के आदि में भी वही था। सृष्टि के सम्पूर्ण तत्त्व, ब्रह्माण्ड, देवता, माया, प्रकृति और आदि पुरुष श्रीपति, ये सब श्रीकृष्ण के ही अंश हैं। सूर ने श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म माना है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा चौबीस लीला अवतार एक कृष्ण के ही रूप अक्षर ब्रह्म से प्रसूत माने हैं।

आत्माराम ब्रह्म ने ही अपनी इच्छा से अपनी अंश-रूप सृष्टि का प्रसार किया। सूरदास कहते हैं—

अविगत, आदि अनन्त अनूपम अलख पुरुष अविनाशी।
पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निजलोक विलासी॥
जहँ वृन्दावन आदि अजिर जहाँ कुंज-लता विस्तार।
तहँ विहरत प्रिय-प्रीतम दोऊ निगम भृङ्ग गुंजार॥
जहँ गोवर्धन पर्वत मनिमय, सघन कंदरा सार।
गोपिन मंडल मध्य विराजत निसि दिन करत विहार॥
खेलत-खेलत चित में आई सृष्टि करन विस्तार।
अपने आप करि प्रकट कियो है हरी पुरुष अवतार॥[1]

जिस ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूप हैं वही इस जगत् में अवतार भी धारण करता है। यह भाव सूर के अनेक पदों में व्यक्त हुआ है—

वेद उपनिषद् यश कहें निगुनहिं बतावै।
सोइ सगुन होइ नन्द की दावरी बँधावै॥
गोविन्द तेरोइ स्वरूप निगम नेति-नेति गावै।
भक्तन के वश स्याम सुन्दर देह धरै आवै॥

[1] सूरसारावली, १

ब्रह्म अगोचर मन बानी ते अगम अनन्त अभाव।
भक्तन हित अवतार धारि जो करि लीला संसार ॥

सूरदास ने परब्रह्म श्रीकृष्ण के अन्तर्यामी स्वरूप और विराट् रूप का वर्णन दशम स्कंध सूरसागर में अनेक स्थानों पर विस्तार से किया है। उन्होंने स्थान-स्थान पर श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए रस रूप श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म कहा है और उन्हीं को अपनी उपासना का इष्ट बताया है—

परमहंस तुम सबके ईस, बचन तुम्हारे स्तुति जगदीश।
तुम अच्युत अविगत अविनासी, परमानंद सदा सुख रासी।
तुम तनु धारि हर्यो भुवभार, नमो नमो तुम्हें बारम्बार।

परब्रह्म युक्ति से अगोचर तथा समस्त विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं। वे अणु से भी सूक्ष्म और महान् से भी महान् हैं। वे सर्वव्यापक अचल और कूटस्थ होते हुए भी चल, अंदर होते हुए भी बाहर, निकट होते हुए भी दूर, फल प्रदाता होते हुए भी एक रस और सर्व समर्थ हैं। ऐसी ही धारणा श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में सूर रखते हैं, यह उनकी नीचे लिखी पंक्तियों से स्पष्ट है—

अक्षर, अच्युत, निराकार, अविगत है जोई।
आदि अन्त नहिं जाहि, आदि अन्तहिं प्रभु सोई ॥[1]

और,

कोटि ब्रह्मांड करत छिन भीतर, हरत विलम्ब न लावै।
ताको लिये नन्द की रानी, नाना रूप खिलावै ॥[2]

सूरदास के समान ही नन्ददास भी अद्वैत ब्रह्म को मानते थे—

नाम रूप गुन भेद जे, सोइ प्रकट सब ठौर।
ता बिन तत्त्व जु आन कछु, कहै सो अति बड़ और ॥[3]

'सिद्धांत पंचाध्यायी' में कृष्ण की स्तुति करते हुए वे कहते हैं कि कृष्ण के अपार रूप, गुण और कर्म हैं—

जै जै जै श्री कृष्ण रूप गुण करम अपारा।
परम धाम जग धाम परम अभिराम उदारा ॥

---

[1] सूरसागर, ना० प्र० सभा, पद सं० १७६३ [2] सूरसागर, ना० प्र० सभा, पद सं० ७४४ [3] मान मंजरी, पंचम मंजरी

दस इन्द्रिय अरु अहंकार महतत्त्व त्रिगुन मन।
यह सब माया कर विकार कहै परम हंस गन॥
सो माया जिनके अधीन नित रहत मृगी जस।
विश्व प्रभव प्रबिशाल प्रलय कारक आयुत बस॥
षटगुन जो अवतार धरन नारायन जोई।
सबको आश्रय अवधि भूत नंदनंदन सोई॥[१]

जिस माया शक्ति ने इस सृष्टि की रचना की है वह उन्हीं श्रीकृष्ण की है। परब्रह्म श्रीकृष्ण षट्गुण (ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य) से पूर्ण हैं और समय-समय पर वे ही अवतार धारण करते हैं। नन्ददास के अनुसार ईश्वर अजन्मा है —'अज कहिए जगदीश'[२]। और वह अनन्त रूप होते हुए एक है—'हरि अनन्त अरु एक'[३]। यह जगत् का निमित्त और उपादान दोनों कारण है—

जो प्रभु ज्योति जगतमय, कारण करण अभेव।
विधन हरण सब दुख करन, नमो नमो तिहि देव॥[४]

नंददास ने 'दशम स्कंधभाषा' में अपने ईश्वर विषयक भाव श्रीकृष्ण की अनेक स्तुतियों में भी प्रकट किये हैं। नंददास कहते हैं—"हे प्रभु, आप परम पुरुष हैं, सबजड़-चेतन के आप ही कारण हैं; आप ही पालनकर्त्ता हैं, आप ही तारनेवाले हैं और आप ही संहार करने वाले हैं। जो विश्व व्यक्त अव्यक्त है वह आपका ही रूप है। काल का विस्तार भी आपकी लीला का विस्तार है। सब प्राणी भी आप ही के विस्तार स्वरूप हैं—अर्थात् प्राणी मात्र आपके ही स्वरूप हैं। आप सर्वव्यापी, अंतर्यामी हैं, सबके ईश और अच्युत हैं। सम्पूर्ण प्रकृति और सम्पूर्ण शक्ति, तीनों गुण, जीवन, सब आप ही हैं। सर्वत्र आपके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। हे करुणानिधि, आप मुझे अपनी भाव भक्ति दीजिए।[५]"

परमानंददास ने अपने काव्य में ब्रह्म के विषय में वैसा स्पष्ट विवेचन नहीं किया जैसा सूरदास और नंददास के काव्य में मिलता है। फिर भी कुछ पदों में संकेत अवश्य है। परमानंद रस-रूप ब्रह्म के उपासक थे, वे मानते

---

[१] नन्ददास ग्रन्थावली, सिद्धांत पंचाध्यायी, ना० प्र० सभा काशी
[२] अनेकार्थ मंजरी, [३] नन्ददास ग्रन्थावली, अनेकार्थ मंजरी ना० प्र० स०, काशी
[४] नन्ददास ग्रन्थावली, अनेकार्थ मंजरी, पृ० ४६, ना० प्र० सभा काशी
[५] नन्ददास ग्रन्थावली, दशमस्कन्ध भाषा, ना० प्र० सभा काशी।

थे कि श्रीकृष्ण ही साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं, कृष्ण ही एक से अनेक रूप धारण करते हैं और उन्हीं को वेद नेति-नेति कहते हैं।[1] परब्रह्म गुण रहित तथा सगुण दोनों है। निर्गुण ब्रह्म ही सगुण रूप धारण करता है।[2]

परमानन्द ने ब्रह्म के सब रूपों से परे रस-रूप पूर्ण पुरुषोत्तम को ही माना है। वे कहते हैं—"कृष्ण सुख के सागर हैं और संतों के सर्वस्व हैं। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि देव उनका मनन करते हैं। पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही सबके स्वामी हैं, वे ही इस जगत् में लीला अवतार रूप में आते हैं।[3]" परमानन्ददास यह भी कहते हैं कि "वे मुख्य तीन देवता—ब्रह्मा, विष्णु, महेश कृष्ण के ही गुणावतार हैं और ये अनेक प्रकार के वर देने में समर्थ हैं। परन्तु मेरे तो उपास्य देव राधिका बल्लभ श्रीकृष्ण ही है।[4]"

---

[1] परमानन्द दास, पद संग्रह, पद सं० ३ —दीनदयाल गुप्त

[2] हँसत गोपाल नंद के आगे नन्द स्वरूप न जाने
निर्गुण ब्रह्म सगुन धरि लीला ताहिब सुत करि माने।
परमानन्द स्वामी मन मोहन खेल रच्यो ब्रजनाथ।
—परमानन्द दास, पद संग्रह, पद सं० १७

[3] नाचत हम गोपाल भरोसे
गावत बाल विनोद कान्ह के नारद के उपदेस।
संतन को सर्वसु सुख सागर नागर नंद कुमार॥
परम कृपालु यशोदा नंदन जीवन प्रान अधार।
ब्रह्म रुद्र इन्द्रादिक देवता ताको करत विचार॥
पुरुषोत्तम सब ही को ठाकुर इह लीला अवतार।
सरग नरक को अब डरु नाहीं विधि निखेद की आस॥
चरन कमल मन राखि स्याम में बलि परमानंद दास।
—परमानन्द दास, पद संग्रह, पद सं० ३०७, दीनदयाल गुप्त

[4] मोहि भावै देवाधि देवा
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन गोकुल नाथ एक मेवा।
तीन देवता मुख्य देवता ब्रह्मा, विष्णु अरु महादेवा॥
जे जनिये सकल वरदायक गुन विचित्र कीजिये सेवा।
संख चक्र सारंग गदाधर रूप चतुर्भुज आनंदकंदा।
गोपी नाथ राधिका वल्लभ ताहि उपासत परमानंदा।
—परमानन्द दास, पद संग्रह, पद सं० ३०२

मीरा के काव्य में ब्रह्म आदि का दार्शनिक विवेचन अधिक नहीं है। प्रेमवियोगिनी मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की थी। उसके एकनिष्ठ प्रेम में ब्रह्म, जीव आदि की विवेचना के लिए अधिक स्थान न था। फिर भी मीरा के प्रिय गिरिधर गोपाल वही अविनाशी ब्रह्म हैं—

प्रभु तुम पूरण ब्रह्म हो, पूरन पद दीजै हो।
मीरा व्याकुल विरहनी, अपनी करि लीजै हो॥[१]

रसखान के कृष्ण भी विष्णु के अवतार, ब्रह्मा और शंकर से श्रेष्ठ तथा पूर्ण ब्रह्म हैं। उन्होंने अपने काव्य में अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण को परब्रह्म के रूप में चित्रित किया है। उनके आराध्य श्रीकृष्ण सर्वोपरि हैं। कई स्थानों पर उन्होंने 'शङ्कर से सुर जाहि भजैं' आदि कहा है। एक स्थान पर वे कृष्ण का ब्रह्मत्व दिखाते हुए कहते हैं—

गावै गुनी गनिका गंधर्व और सारद सेस सबै गुन गावत,
नाम अनंत गनंत गनेस कौं. ब्रह्म त्रिलोचन पार न पावत।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरंतर जाहि समाधि लगावत,
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावत।[२]

नरोत्तमदास ने भी श्रीकृष्ण को परम दयालु और अन्तर्यामी ब्रह्म के रूप में चित्रित किया है—

अन्तरयामी आप हरि, जानि भक्ति की पीर।
सोवत लै ठाढ़ो कियो, नदी गोमती तीर॥[3]

और ये वही ब्रह्म हैं जिनके चरण से समस्त जगत् का संतार नष्ट होता है—

जिनके चरणन को सलिल, हरत जगत संताप।
पाँय सुदामा विप्र के, धोवत हैं हरि आप॥[४]

रहीम के काव्य में ब्रह्म-सम्बन्धी दार्शनिक विचार अधिक नहीं मिलते। फिर भी एक ही दोहे से वे अपने आराध्य कृष्ण का ब्रह्मत्व स्वीकार कर लेते हैं—

---

[१] मीरा बाई की पदावली, पद सं० १२६, परशुराम चतुर्वेदी
[२] रसखान और उनका काव्य, चन्द्रशेखर पाण्डेय, पृ० ८५
— हिन्दी साहित्यसम्मेलन, प्रयाग
[3] सुदामाचरित्र, नरोत्तमदास, वें० प्रे०, दोहा सं० १२
[४] सुदामाचरित्र, नरोत्तमदास, वे० प्रे०, दोहा सं० २३

बिन्दु में सिन्धु समान, को कासो अचरज कहैं।
हेरनहार हिरान, 'रहिमन' आपुहि आप में ॥

सेनापति ने अपने काव्य में अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण का महत्व स्वीकार किया है—

तुही एक ईस, तोहि तजि और कासौं कहौं,
कीजै आस जाकों अमरण ताकौं मानिये।
जीवन हमारौ, जग जीवन तिहारे हाथ,
सेनापति नाथं न रुखाई मन आनिये॥

महाराज रघुराजसिंह ने भी ब्रह्म के सम्बन्ध में अधिक दार्शनिक विवेचन नहीं किया है। किंतु फिर भी उनके कृष्ण परब्रह्म ही हैं। एक स्थान पर अनेक देवता श्रीकृष्ण की पद-वन्दना करते हुए कहते हैं—

अज शक्र महेशा शारद शेषा सकल सुरेशा पद बन्दै।[2]

एक अन्य स्थान पर कृष्ण को अधिकारी और अधम उधारी मानकर वन्दना की गई है—

तेहि तें तजि आशै सहित हुलासै राम निवासै तुमहि भजौ।
तुम ही अधिकारी अधम उधारी यही विचारी अब न तजौ॥[3]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कृष्ण भी परब्रह्म ही हैं। जिन पदों में कृष्ण की वन्दना की गई है और उनसे अपने विरद की लाज रखने को कहा गया है, उनमें उन्हें पूर्ण ब्रह्म के ही रूप में देखा गया है।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं। उद्धव ने ब्रह्म को विश्व-व्यापी और अनन्त कहकर योग के द्वारा त्रिपुटी में रखकर आंतरिक चक्षुओं से देखने का उपाय बताया है—

---

[1] कवित्त रत्नाकर, उमाशंकर शुक्ल, कवित्त सं० २०, दूसरी तरंग

[2] रुक्मिनी परिणय, महाराज रघुराज सिंह, वे० प्रे०, सर्ग, छंद १, पृ० १८

[3] रुक्मिनीपरिणय, महाराज रघुराजसिंह, वे० प्रे०, सर्ग २, छन्द ७, पृ० १८

पंचतत्व में जो सच्चिदानंद की सत्ता सो तौ,
हम तुम उनमें समान ही समोई है।
कहै रतनाकर विभूति पञ्चभूत हू की,
एक ही सी सकल प्रभूतनि में पोई है।
माया के प्रपञ्च ही सौं भासत प्रभेद सबै,
कांच-फलकानि ज्यों अनेक एक सोई है।
देखौ भ्रम पटल उघारि ज्ञान-आँखिनि सौं,
कान्ह सबही में कान्ह ही में सब कोई है।[1]

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के काव्य में अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण का ब्रह्मत्व स्वीकार किया गया है। एक स्थान पर राधा कहती हैं—

मैंने की है कथन जितनी शास्त्र विज्ञात बातें,
वे बातें हैं प्रकट करती ब्रह्म है विश्व रूपी॥
व्यापी है विश्व प्रियतम में विश्व में प्राण प्यारा।
यों ही मैंने जगतपति को श्याम में है विलोका॥[2]

'कृष्णायन' में श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने भी कृष्ण का पूर्ण ब्रह्म रूप में ही चित्रण किया है। स्थान-स्थान पर मिश्र जी यह बताते जाते हैं कि ये श्रीकृष्ण परब्रह्म ही हैं। वे ग्रन्थारम्भ में ही कहते हैं—

तजि भव भोग धरत हरि ध्याना,
पावत पर ब्रह्म भगवाना।[3]

एक अन्य दोहे में मिश्र जी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म ही हैं और वे सोलहों कला सहित अवतीर्ण हुए हैं—

भयेउ कला षोडश सहित, कृष्ण चन्द्र अवतार,
पूर्ण ब्रह्म हरि यश विमल, वरनहुँ मति अनुसार।[4]

एक स्थान पर गर्गाचार्य कृष्ण के नामकरण संस्कार के अवसर पर कहते हैं—

जन्मे पर ब्रह्म साक्षाता
असुर-विनाशन, जन हितकारी, नाम कृष्ण, विष्णुहि अवतारी।

---

[1] उद्धवशतक, 'रत्नाकर' पद सं० ३८ [2] प्रियप्रवास, हरिऔध, सर्ग १६
[3] कृष्णायन, अवतरण कांड, पृ० २ [4] कृष्णायन, अवतरण कांड, दोहा सं ३

कंस विनाश जासु कर होई,
शिशु स्वरूप प्रकटेउ ब्रज सोई।[1]

और श्रीकृष्ण के अलौकिक कार्यों के कारण सम्पूर्ण ब्रज में यह बात फैल गई कि श्याम ब्रह्म के अवतार ही हैं।

फैलेउँ पलमहँ वृत्त ब्रज, श्याम ब्रह्म अवतार,
कहत नारि नर—धन्य हम, निरखत जगदाधार।[2]

इस प्रकार पुराणों के प्रभाव के फलस्वरूप अनेक हिन्दी कृष्ण भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण को ब्रह्म के रूप में ही चित्रित किया है। यह प्रभाव विशेषतः वैष्णव पुराणों का ही है।

(ख) जीव

पुराणों में जीव का दार्शनिक विवेचन पर्याप्त रूप में हुआ है। पुराणों से भी पहले उपनिषदों में भी जीव और ईश्वर की अद्वैतता प्रतिपादित की गई है। गोपालोत्तर तापनी उपनिषद् के अनुसार (सदा साथ रहनेवाले—दो पक्षियों की भाँति जीवात्मा और परमात्मा एक दूसरे के नित्य सहचर हैं)[3] और नृसिंहोत्तर-तापनी उपनिषद् में आत्मा की अद्वैतता बतलाते हुए लिखा है—"आत्मा अज, अमर, अजर, अमृतस्वरूप, अभय, अशोक, अमोह, अनशनाय, अपिपास तथा अद्वैत है।"[4] उपनिषदों की इस विचारधारा का और भी विकसित रूप पुराणों में है, जिसका हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर पर्याप्त प्रभाव है। जीव और ईश्वर की अद्वैतता लगभग सभी पुराणों में मान्य है जिसका हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर सीधा प्रभाव पड़ा है।

विष्णु पुराण में एक स्थान पर लिखा है—"जिस प्रकार अभिन्न भाव से व्याप्त एक ही वायु के, बाँसुरी के छिद्र के भेद से षड्ज आदि भेद होते हैं उसी प्रकार (शरीर आदि उपाधियों के कारण) एक ही परमात्मा के (देवता, मनुष्य आदि) अनेक भेद प्रतीत होते हैं। एक रूप आत्मा के जो विभिन्न भेद हैं वे वाह्य देह आदि की कर्म प्रवृत्ति के कारण ही हुए हैं। देव आदि शरीरों के

---

[1] कृष्णायन, अवतरण कांड—पृ० ३५। [2] कृष्णायन, अवतरण काण्ड—दोहा सं० १३६। [3] गोपालोत्तरतापनी उपनिषद्, श्लो० २०। [4] नृसिंहोत्तर-तापनी उपनिषद्, सप्तम खंड, श्लो० १।

भेद का निराकरण हो जाने पर वह नहीं रहता। उसकी स्थिति तो अविद्या के आवरण तक ही है।"[1]

जीव और ईश्वर की अभिन्नता दिखलाते हुए एक स्थान पर और लिखा है—"जिस प्रकार एक ही आकाश श्वेत-नील आदि अनेक भेदोंवाला दिखाई देता है, उसी प्रकार भ्रान्त दृष्टियों को एक ही आत्मा पृथक्-पृथक् दिखाई पड़ती है। इस संसार में जो कुछ है वह सब एक आत्मा ही है और वह अविनाशी है, उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मैं, तू और ये सब आत्मस्वरूप ही हैं। अतः भेद-ज्ञान रूप मोह को छोड़।"[2] इस प्रकार जीव और ईश्वर की अद्वैतता ही इस पुराण का मूल दर्शन है।

वृहन्नारदीय पुराण का मूल दर्शन भी अद्वैत ही है। जीव परमात्मा का ही अंश है। अविद्या जीव और परमात्मा में भेद-बुद्धि डाल देती है। वृहन्नारदीय पुराण में एक स्थान पर लिखा है—"जो अन्तःकरण के संयोग से जीव कहलाते हैं और जो अविद्या के कार्य से रहित हैं वे ही परमात्मा कहलाते हैं।"[3]

श्रीमद्भागवत में अनेक स्थान पर जीव और ईश्वर की अद्वैतता स्वीकार की गई है। भागवत के दर्शन का मूल भी अद्वैत ही है। श्रीमद्भागवत में आत्मा के सम्बन्ध में लिखा है—"जीव नित्य और अहंकार रहित है। वह गर्भ में आकर जब तक इस शरीर में रहता है, तभी तक उस शरीर को अपना समझता है। यह जीव नित्य, अविनाशी, सूक्ष्म, सबका आश्रय और स्वयं प्रकाश है। इसमें स्वरूपतः जन्म मृत्यु आदि कुछ भी नहीं है। फिर भी यह ईश्वर रूप होने

---

[1] वेणुरन्ध्रप्रभेदेन भेदः षड्जादिसंज्ञितः।
अभेदव्यापिनो वायोस्तथास्य परमात्मनः॥
एकस्वरूपभेदश्च वाह्यकर्म-प्रवृत्तिजः।
देवादिभेदेऽपध्वस्ते नास्त्येवावरणे हि सः॥
—विष्णु पु० २।१४।३२,३३

[2] सितनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः।
भ्रान्तिदृष्टिभिरात्मापि तथैकः सन्पृथक्पृथक् ॥२२॥
एकः समस्तं यदिहास्ति किंचित्तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत्।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेतदात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम् ॥२३॥
—विष्णु पु० २।१६।२२-२३

[3] वृहन्नारदीय पु०, ३६।२५

के कारण अपनी माया के गुणों से ही अपने आपको विश्व के रूप में प्रकट कर देता है। इसका न तो कोई अत्यन्त प्रिय है और न अप्रिय, न अपना और न पराया। क्योंकि गुण-दोष (हित-अहित) करनेवाले शत्रु-मित्र आदि की भिन्न-भिन्न बुद्धि वृत्तियों का यह अकेला ही साक्षी है, वास्तव में यह अद्वितीय है। यह आत्मा कारण का साक्षी और स्वतंत्र है। इसलिये यह शरीर आदि के गुण दोष अथवा कर्म फल को ग्रहण नहीं करता, सदा उदासीन भाव से रहता है।[1]"

एक अन्य स्थान पर आत्मा के सम्बन्ध में लिखा है—"वास्तव में आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, सर्वगत, सर्वज्ञ और देह इन्द्रिय आदि से पृथक् है। वह अपनी अविद्या से ही देह आदि की सृष्टि करके भोगों के साधन सूक्ष्म शरीर को स्वीकार करता है।[2]"

शरीर को ही आत्मा समझ लेना अज्ञान है। भागवत में लिखा है—"सब प्रकार से शरीर रहित आत्मा को शरीर समझ लेना यही तो अज्ञान है। इसी से प्रिय अथवा अप्रिय वस्तुओं का मिलना और बिछुड़ना होता है। इसी से कर्मों के साथ सम्बन्ध हो जाने के कारण संसार में भटकना पड़ता है।[3]"

जीव और ईश्वर की अभिन्नता दिखाते हुए भागवत में स्वयं भगवान् कहते हैं—"मित्र जो मैं (ईश्वर) हूँ, वही तुम (जीव) हो। तुम मुझसे भिन्न नहीं हो और तुम विचारपूर्वक देखो, मैं भी वही हूँ जो तुम हो। ज्ञानी पुरुष हम दोनों में कभी थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं देखते।[4]"

पुराणों की जीव-सम्बन्धी इस विचारधारा का प्रभाव हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर बहुत पड़ा है। हिन्दी के अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने जीव के सम्बन्ध में दार्शनिक विचार प्रकट किये हैं जो पुराणों से ही प्रभावित हैं।

---

[1] भाग, ६।१६।८, ६, १०, ११

[2] नित्य आत्मा व्ययः शुद्धः सर्वगः सर्वविस्परः।
धत्तेऽसावात्मनो लिङ्गमायया विसृजन्गुणान् ॥ —भाग० ७।२।२२

[3] एष आत्मविपर्यासो ह्यलिङ्गे लिङ्गभावना।
एष प्रियाप्रियैर्योगो वियोगः कर्मसंसृतिः ॥ —भाग० ७।२।२५

[4] भाग०, ४।२८।६२

सूरदास के जीव-सम्बन्धी दार्शनिक विचार पुराणों के जीव सम्बन्धी दार्शनिक विचारों से अत्यधिक प्रभावित हैं। सूरदास का भी यही विचार है कि ब्रह्म ही अपने चित्त अंश से अनेक जीव रूप में स्थित है। जीव और ईश्वर की अद्वैतता का भाव सूर ने कई स्थानों पर व्यक्त किया है।[1] सूरदास ने जीव को भगवान् की चेतन शक्ति का ही स्वरूप माना है। एक भगवान् की ही चेतन ज्योति घट-घट में व्याप्त है—

सकल तत्त्व ब्रह्मांड देव पुनि माया सब विधिकाल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण, सब हैं अंश गुपाल॥[2]

इन पंक्तियों में सूरदास ने इस बात को स्पष्ट किया है कि सृष्टि का सम्पूर्ण प्रसार, सम्पूर्ण तत्त्व, प्रकृति, पुरुष लक्ष्मी नारायण, देवता तथा सम्पूर्ण जीव, सब गोपाल कृष्ण के अंश हैं। उन्होंने इस कथन से ईश्वर और जीव के अंशी-अंश सम्बन्ध का समर्थन किया है। श्रीकृष्ण का अंश रूप जीव इस संसार की माया में पड़कर अपने सत्य स्वरूप को भूल जाता है। माया में फँसा जीव जब माया के आवरण को हटाकर अपने सत्य स्वरूप को जान लेता है तब वह ब्रह्म हो जाता है। एक अन्य पद में सूरदास कहते हैं—

नैननि निरखि स्याम स्वरूप,
रह्यो घट-घट व्यापि सोई, ज्योति रूप अनूप।

इस पद में सूर ने घट-घट में व्याप्त ईश्वर के अन्तर्यामी रूप की ओर संकेत किया है, जिसे संसारी जीव भूल गया है। जीव और जगत् में ईश्वर के चिद् और सत् अंश की सत्ता सार रूप से विद्यमान है। केवल नाम और रूप का भेद है। जीव स्वयं भ्रम या अविद्या वश अपने ईश्वरीय अंश-रूप, सत्य रूप को विस्मृत कर देता है और इन्द्रिय धर्म, आदि को अपनी आत्मा का धर्म समझने लगता है। यही भ्रम उसके दुःख तथा राग-द्वेष का कारण है। ठीक यही भाव भागवत के एक श्लोक में है। शरीर को ही आत्मा समझ लेना अज्ञान है।[3]

जैसे ब्रह्म सत्य और नित्य है उसी प्रकार ब्रह्म का अंश जीव भी नित्य और सत्य है। शरीर भंगुर है। जगत् के नाम और रूपों के साथ इस शरीर का

---

[1] 'सहस रूप बहुरूप पुनि एक रूप पुनि दोय।' —सूरसारावली, सूरसागर पृ० ३४। [2] सूरसारावली, सूरसागर, पृ० ३८। [3] भाग० ७।२।२५

सम्बन्ध है। ब्रह्म की सत् और चित् शक्तियाँ अनेक नाम और अनेक रूपों में दिखाई पड़ रही हैं। नाम और रूप परिवर्तनशील हैं, नाशवान् हैं, परन्तु जगत् और जीव की सार सत्ता (सत् और चित्) नाशवान् नहीं है। यह भावना सूर के कई पदों में मिलती है।

नन्ददास ने भी जीव और ईश्वर की अद्वैतता स्वीकार की है। 'दशमस्कंध भाषा' में कहा है—"ईश्वर ही जड़ चेतन का कारण है। सम्पूर्ण प्राण उसी ईश्वर के विस्तार रूप हैं। ईश्वर ही जीव रूपों में है और ईश्वर ही इस संपूर्ण सृष्टि रूप में है।[1]" इस पर भागवत के एक प्रसिद्ध श्लोक का पूर्ण प्रभाव प्रतीत होता है।[2]

परमानन्ददास भी ईश्वर जीव की अद्वैतता तथा उनका अंशी-अंश सम्बन्ध मानते थे। एक पद में वे कहते हैं—"लोगों ने अपने अंशी गोपाल की स्मृति भुला दी और उन्होंने संसार को ही सत्य मान लिया है। जो योगी हैं वे योगाभ्यास करें, ज्ञानी ज्ञान करें, कर्ममार्गी कर्म में लगें, किन्तु हमारा व्रत तो अपने गोपाल का गुणगान करने का है।"[3] इससे ईश्वर-जीव की अद्वैतता तथा उनके अंशी-अंश सम्बन्ध का भाव प्रकट होता है।

---

[1] व्यक्त अव्यक्त जु विश्व अनूप, वेद वदत प्रभु तुम्हरो रूप।
तुम सब भूतनि कौ विस्तार, देह प्रान इन्द्री अहङ्कार॥
—दशमस्कंध भाषा, नन्ददास ग्रन्थावली, दशम अध्याय, पृ० २५३

[2] नित्य आत्मा व्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित्परः।
धत्तेऽसावात्मनो लिङ्गमायया विसृजन्गुणान्॥ भाग० ७।२।२२

[3] माई हौं अपने गोपालहिं गाऊँ।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन देखि-देखि सुख पाऊँ।
जो ग्यानी ते ग्यान विचारों, जे जोगी ते जोग।
कर्म होय ते कर्म विचारो जे भोगी ते भोग।

× × ×

अपने अंस की सुति जती है, मांगि लियो संसार।
परमानन्द गोकुल मथुरा में, उपज्यो यही विचार।
—परमानन्ददास पद सं० ११०

मीरा ने आत्मसमर्पण और आत्मविस्मृति के द्वारा अपने इष्ट की सहानुभूति को आमन्त्रित करते हुए उस अज्ञात तक पहुँचने का प्रयत्न किया। मीरा के अनेक पदों में जीव की परमात्मा से मिलने की तीव्र आकांक्षा प्रकट होती है :—

प्रभु जी थे कहाँ गया नेहड़ी लगाय।

× × ×

मीरा के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम बिन रह्योई न जाय।[१]

एक स्थान पर मीरा जीव और ईश्वर की अद्वैतता स्वीकार करती हुई कहती हैं—

तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं जैसे सूरज घामा।[२]

महाराज रघुराज सिंह ने भी जीव और ईश्वर की अद्वैतता का वर्णन किया है। महाराज रघुराजसिंह के अनुसार सब देहों में एक ही परमात्मा का अंश (जीव) है।

एकहि है परमात्मा, सब देहिन में जानु।
रुक्मिणी जिमि बहु घटन में, दरश एक सित भानु ॥[३]

और एक स्थान पर कहते हैं कि जन्म और मरण तो इस शरीर का होता है. जीव का नहीं—

जनम मरन एहि देह को, नहिं देहिन को सोय।
नाश होत शशि की कला, नहिं शशि को क्षय होय ॥[४]

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने भी जीव और ईश्वर की अद्वैतता दार्शनिक तर्कों द्वारा दर्शायी है—

---

[१] मीराबाई की पदावली, पद सं० ६६, परशुराम चुर्वेदी। [२] मीराबाई की पदावली, पद सं० ११५। [३] रुक्मिणी परिणय, वे० प्र० सर्ग १५, महाराज रघुराजसिंह। [४] रुक्मिणी परिणय, वे० प्र० सर्ग १५, महाराज रघुराजसिंह।

पाँचों तत्त्व माँहि एक सत्व ही की सत्ता सत्य,
याही तत्त्व ज्ञान को महत्त्व स्त्रुति गायौ है।
तुम तो विवेक रत्नाकर कही क्यों पुनि,
भेद पंच भौतिक के रूप में रचायौ है॥
गोपिनि में, आप में वियोग और संजोग हूँ में,
एकै भाव चाहिए सचोय ठहरायौ है।
आपही सौं आपु को मिलाप औ बिछोह कहा,
वोह यह मिथ्या सुख-दुःख सब ठायौ है॥[1]

ऐसा ही भाव एक अन्य स्थान पर देखिए—

सोई कान्ह सोई तुम सोई सब ही है लखौ,
घट-घट अंतर अनंतर स्यामघन कौ।
कहै रतनाकर न भेद-भावना सौं भरौ,
बारिधि औ बूँद के विचारि बिछुरन कौ।
अविचल चाहत मिलाप तौ बिलाप त्यागि,
जोग-जुगती करि जुगावै ज्ञान-धन कौ।
जीव आत्मा कौ परमात्मा मैं लीन करौ,
छीन करौ तन कौ न दीन करौ मन कौ।[2]

मैथिलीशरण गुप्त भी जीव और ईश्वर की अद्वैतता मानते हुए कहते हैं कि यह माया का ही प्रपंच है जो जीव और परमात्मा में अभिन्नता प्रतीत होती है। अन्यथा यह सम्पूर्ण संसार परमात्मा के अंश से ही पूर्ण है—

प्राप्य अन्ततः वह परमात्मा
आत्मा ही के द्वारा,
मिथ्या माया का प्रपंच है
दृश्यमान यह सारा।[3]

---

[1] उद्धव शतक, पद सं० १५, जगन्नाथदास रत्नाकर। [2] उद्धव शतक, पद सं० ३६ जगन्नाथदास रत्नाकर। [3] द्वापर, पृ० १६३, मैथिलीशरण गुप्त।

कृष्णायन में श्रीकृष्ण भगवान स्वयं कहते हैं कि मैं ही तुम सबों में हूँ और एक ही तत्त्व सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है—

मैं तुम माहिं, तुमहूँ मोहि माहीं,
स्वल्पहु विस्मय कारण नाहीं।
एकहि तत्त्व व्याप्त जग सारा।
नहिं कहुँ मैं, तुम, मोर, तुम्हारा।[१]

कृष्णायन में एक अन्य स्थान पर लिखा है कि एक ही तत्त्व विश्व भर में व्याप्त है और भेद दृष्टि से पुरुष और नारी भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ते हैं।

धर्म सत्-क्रिया सदृश हम, बोध बुद्धि अनुहारि।
व्याप्त विश्व भरि तत्त्व इक, दिखत पुरुष अरु नारि।[२]

इस प्रकार हिन्दी के कृष्णभक्ति-काव्य पर पुराणों के अद्वैत तत्त्व का पूर्ण प्रभाव है। हिन्दी के कृष्ण-भक्ति-काव्य में जीव ईश्वर की अद्वैतता की भावना पुराणों से ही आई है।

(ग) माया

संस्कृत साहित्य में माया का वर्णन

माया का वर्णन अति प्राचीन काल से ही भारतीय साहित्य में होता चला आया है। अंग्रेज विद्वान् हेस्टिंग्ज ने अपनी 'इन्साइक्लोपीडिया आव् रिलीजन एण्ड एथिक्स" में माया के प्रकरण में लिखा है कि माया का वर्णन ऋग्वेद में भी है। ऋग्वेद में 'माया' का दैवीशक्ति, प्रबल इच्छाशक्ति आदि के अर्थ में प्रयोग हुआ है।[3] उपनिषद् साहित्य के अन्तर्गत माया का वर्णन सर्वप्रथम श्वेताश्वतर उपनिषद् में मिलता है (४।१०) और वह सांसारिक भ्रम के अर्थ में प्रयुक्त

---

[१] कृष्णायन, अवतरणकांड, पृ० २४, द्वारकाप्रसाद मिश्र। [२] कृष्णायन, अवतरण कांड, पृ० ६६, द्वारकाप्रसाद मिश्र।

[3] "The word Maya in not uncommon even in the Rigvedà, where it has the meanings 'Supreme Power' 'Cunning,' 'Mysterious will Powor."

(Encyclopaedia of Religion and Ethics). —Hastings.

हुआ है। किन्तु यह भ्रम किसी मनुष्य, जादूगर द्वारा फैलाया हुआ नहीं, वरन् ईश्वर द्वारा ही उत्पन्न है।[१]

शंकर ने जो वेदान्त सूत्रों पर आलोचना लिखी है उसमें माया को 'भ्रम' (illusion) कहा गया है।[२]

उपनिषदों के उपदेशों का सार यह है कि "ब्रह्म सत्य है, ससार झूठा है, आत्मा ब्रह्म ही है और कुछ नहीं।" यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि केवल आत्मा ही सत्य है, संसार एक भ्रम है।[३] छान्दोग्य उपनिषद् में एक स्थान पर लिखा है—"आत्मा ऊपर भी है, नीचे भी है, पीछे भी है और आगे भी है। आत्मा ही सारा संसार है।[४]"

जैसे-जैसे समय बीतता गया, माया का वर्णन प्रकृति के साथ किया जाने लगा। इसका कोई दार्शनिक अर्थ नहीं रह गया। उपनिषद् के बाद के साहित्य में माया के दो रूप, माया और अमाया दिखाई पड़ते हैं। 'माया' छल और कपट के अर्थ में तथा 'अमाया' सच्चाई के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[५]

---

१. "In Upnishadic Literature Maya is first found in the Svetasvatara Upnishada (IV. 10) with the meaning 'Cosmic illusion'; it is no longer applied simply to the Juggler's art, but now connotes the illusion created by him."

२. "Shankara in his commentaries on the Vedanta 'Sutras' alwaya used the word with the meaning 'illusion' and the technical term employed by him bec ıme more or less stereotyped by his successors."

३. " The substance of the teaching of the Upnishadas is 'Brahma is real, the Universe is false, the Atma is Brahma and nothing else,'......... it is frequently insisted the Atma is the only reality, which means the same thing—i. e., all that is not the self (world etc.) is not real, it is mere appearance or illusion."

४. "The Atma is above and below, behind and infront. The Atma is all the world. (Chandogya Upnishada—VII. XXV. 2)

५. "As time went on, Maya gained an ever-increasing independence as the substance Prakriti, which was at first subordinate to the Atma. In post upnishadic literature the term appears frequently in a non-philosophic sence, a mrigmaya is an 'illusion gazelle', man who craftily seeks to gain money does it through Maya, amaya, lit. (means honestly)."

महाभारत में जहाँ दार्शनिक तत्वों का विवेचन किया गया है वहाँ माया का वर्णन दार्शनिक रूप में किया गया है। विष्णु कहते हैं "मैं माया द्वारा प्रकृति के रूप में आता हूँ।" शिव के सहस्रों नामों में से 'मायाविन्' भी एक नाम है।[१] गौडपद (८ वी० शती०) शंकर के गुरु का भी गुरु था। उसने संसार का खंडन करते हुए कारिका में लिखा है कि "रज्जु में सर्प के भ्रम से जैसा भान होता है उसी प्रकार माया (अविद्या) सत्य का आच्छादन कर देती है। जब रस्सी पहचान ली जाती है तब सर्प का भ्रम समाप्त तो जाता है। और जब आत्मा का ज्ञान प्राप्त हो जाता हैं तब भ्रम नष्ट हो जाता है। संसार केवल रस्सी में सर्प के भ्रम के समान है।[२]"

श्री वल्लभाचार्य ने भगवान् की शक्ति-स्वरूपा माया के दो रूप बताये हैं,—एक विद्या माया और दूसरी, अविद्या माया।

विद्याविद्ये हरेः शक्ती माययैव विनिर्मिते।
ते जीवस्यैव नान्यस्य दुःखित्वं चाप्यनीशता ॥३४॥

—तत्त्व-दीप-निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, ज्ञानसागर उम्बई, पृ० ६६-१००

---

१. In the philosophical section of the Mahabharat the term is used in its philosophical sence. Thus Vishnu, speaking as the supreme God says: 'Entering into my own nature (प्रकृति), I arise through Maya *(VI. XXVIII. 6F.)* 'Mayavin' in one of the thousand names of Shiva *(XIII. XVII. 1214)*.

२. One of the most important of early works on Vedanta is the Karika of Gaudapada *(8th Cent. A. D.)* one of whose pupil was a teacher of Shankara. He is an uncompromising advocate of the doctrine of Maya, and strongly denies the existence of the Universe. As a rope in the dim night is mistaken for snake so the Atma (आत्मा) is mistaken for variety of experience (जीव), When the rope is recognised, the illusion of the snake at once disappears; when true knowledge of the Atma is attained, the illusion which makes us think of it as a mutiplicity of experiences vanishes." *(*Encyclopaedia of Religion and Ethics)

—Hastings,

भगवान् की उपर्युक्त दो रूपधारिणी माया ही इस सृष्टि (जगत्) और संसार का प्रसार करती है। इस माया के अधीन जीव हैं, भगवान् माया के अधीन नहीं है।

अविद्या रूपिणी माया दो प्रकार से अन्यथा प्रतीति करती है[1] और दूसरे सत्य में असत्य का भान कराती है। रज्जु में सर्प के भ्रम से जैसा भान होता है उसी प्रकार से अविद्या माया सत्य का आच्छादन कर देती है। अविद्या माया ही जीव को लौकिक विषयों में फँसाकर उसको अज्ञानता में डालती है।

पुराणों में माया और उसका हिन्दी कृष्णभक्तिकाव्य पर प्रभाव

पुराणों में माया सम्बन्धी दार्शनिक विवेचन पर्याप्त रूप से हुआ है जिसका प्रभाव हिन्दी के कुछ कृष्णभक्त कवियों पर भी दिखाई पड़ता है।

श्रीमद्भागवत में परब्रह्म की दो प्रकार की माया के कृत्यों का वर्णन हुआ है। एक ब्रह्म की आदिशक्तिस्वरूपा माया का, जो सृष्टि का सृजन, पालन और लय करती है। और दूसरी उस माया का जो मनुष्य से अहंता ममतात्मक संसार की सृष्टि कराकर उसके ईश्वरीय गुणों का आच्छादन करती है।

भागवत में अविद्या माया के विषय में लिखा है—"जगत् में जितनी विभिन्नताएँ दिखाई पड़ती हैं वे सब माया की ही हैं। माया का निषेध कर देने पर केवल परम सुख के साक्षात्कार स्वरूप आप ही अवशेष रहते हैं। परन्तु जब विचार करने लगते हैं तब आपके स्वरूप में माया की उपलब्धि निर्वचन नहीं हो सकता अर्थात् माया भी आप ही हैं। अतः सारे नाम और सारे रूप आप ही के हैं।[2]"

---

[1] आनन्दांशतिरोधानात्तत्तद्वत्तेन भासते।
मायायवनिकाच्छन्नं नान्यथा प्रतिबिम्बते ॥६१॥
—तत्त्व-दीप-निबंध, शास्त्रार्थ प्रकरण, ज्ञानसागर बम्बई, पृ० १८६

[2] स वै ममाशेषविशेष माया
निषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः।
स सर्वनामा स च विश्वरूपः
प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥ भाग० ६।४।२८

माया क्या है और, माया किसे कहते हैं, इसे भागवत पुराण में स्पष्ट करते हुए लिखा है—"आदिपुरुष परमात्मा जिस शक्ति से सम्पूर्ण भूतों के कारण बनते हैं और उनके विषय भोग तथा मोक्ष की सिद्धि के लिए अथवा अपने उपासकों की उत्कृष्ट सिद्धि के लिए स्वनिर्मित पंचभूतों के द्वारा विभिन्न प्रकार के देव, मनुष्य आदि शरीरों की सृष्टि करते हैं, उसी को 'माया' कहते हैं। यह ब्रह्म की आदि शक्ति स्वरूपा माया है।[१]"

अविद्या माया के विषय में भागवत पुराण में लिखा है कि माया द्वारा जब तक मनुष्य जीव को ईश्वर से भिन्न देखता है तब तक वह इस संसार से छुटकारा नहीं पाता—"जब तक मनुष्य इन्द्रिय और विषय रूपी माया के प्रभाव से आप (ईश्वर) से अपने को भिन्न देखता है, तब तक उसके लिए इस संसार-चक्र की निवृत्ति नहीं होती। यद्यपि यह मिथ्या है, तथापि कर्मफल-भोग का क्षेत्र होने के कारण उसे विभिन्न प्रकार के दुखों में डालता रहता है।"[२] भागवत में आगे लिखा है कि "यह माया उनकी (वासुदेव की) आँखों के सामने ठहरती ही नहीं, झेंपकर दूर से ही भाग जाती है। परन्तु संसार के अज्ञानी जन उसी से मोहित होकर 'यह मैं हूँ,' 'यह मेरा है'—इस प्रकार बकते रहते हैं।"[३]

विष्णु पुराण में भी अविद्या माया को मोह में डालनेवाली कहा गया है। एक स्थान पर लिखा है—"आपकी (वासुदेव की) माया ही परमार्थतत्त्व के न जानने वाले पुरुषों को मोहित करनेवाली है जिससे मूढ पुरुष अनात्मा में आत्मबुद्धि करके बन्धन में पड़ जाते हैं।[४]"

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में भगवान् की अविद्या माया का वर्णन करते हुए ब्रह्मा जी श्रीकृष्ण से कहते हैं कि "आपकी माया के वशीभूत होकर ही मैंने आपसे छल किया।[५]"

---

[१] भाग०, २।६।६, [२] भाग० २।६।६

[३] विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया।
विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः॥ भाग० २।५।१३

[४] माया तवेयमज्ञातपरमार्थातिमोहिनी।
अनात्मन्यात्मविज्ञानं यया मूढो निरुद्धते॥ विष्णु पु० ५।३०।१४

[५] ब्रह्मवैवर्त्त पु०, कृष्णजन्म खंड २०।४०

हिन्दी के कुछ कृष्णभक्त कवियों ने भी माया का इसी प्रकार वर्णन किया। स्पष्टतः हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य पर यह प्रभाव पुराणों से ही आया है।

सूरदास ने अविद्या माया का वर्णन अधिक किया है। सूर ने इस माया को सत्य को भुलानेवाली और मिथ्या में मोह उत्पन्न करनेवाली कहा है। इस माया के अनेक रूप हैं जैसे मन की मूढ़ता, तृष्णा, ममता, मोह, अहंकार, काम क्रोध, लोभ तथा अनेक मानसिक विकार। माया संसार में भ्रमित जीव को दुःख भँवर में डालनेवाली है। इसका वर्णन सूर ने अनेक प्रकार से रूपक और दृष्टांत देकर किया है। सूर कहते हैं—"हे प्रभु! यह नटिनी माया मुझे अनेक नाच नचाती है। मुझे लोभ में डालकर द्वार-द्वार मुझसे स्वाँग कराती है। इसने बुद्धि को भ्रम में डाल दिया है। स्वप्न के से सुखों में यह मन को लुभाकर अनेक पाप कर्म करा रही है, आपके सत्य सम्बन्ध और सत्य ज्ञान से अलग कर लोक के असत्य बन्धनों में बहका रही है, जैसे कोई कुलटी पर-वधू को अपने सतीत्व से हटा कर पर पुरुष को दिखाती हो।[1]"

एक स्थान पर सूर मन को प्रबोधन देते हुए कहते हैं "हे मूर्ख मन, अब भी सावधान क्यों नहीं होता ? तुझे माया रूपी सांपिन ने काट लिया है, उसका विष तुम पर चढ़ गया है। इस विष की मूर्च्छा ज्ञान की औषधि खाने से जायगी, तथा जब गुरु विष उतारने वाला गारूड़ी बनकर कृष्ण नाम का मन्त्र तेरे कान में फूँकेगा तथा कृष्ण लीला यश का गान सुनावेगा तभी तेरा विष उतरेगा।[2]"

सूरदास ने अविद्या माया और इस माया जन्य संसार को अनेक पदों में भ्रमात्मक और मिथ्या कहा है। एक पद देखिए—

> मिथ्या यह संसार और मिथ्या यह माया,
> मिथ्या है यह देह कहो क्यों हरि बिसराया।

संसारी जीव को माया भ्रम में डाल देती है। एक पद में सूरदास जी कहते हैं—"संसारी जीव को झूठी माया सच्ची प्रतीत होती है, यदि मनुष्य अहं की व्यष्टि दृष्टि को छोड़कर समष्टि दृष्टि से जगत को देखे तो माया का सत्य रूप उसे दीखने लगेगा।[3]"

नन्ददास ने दोनों प्रकार की माया का वर्णन किया है। 'दशम स्कंध भाषा' के अट्ठाईसवें अध्याय में नन्ददास कहते हैं—

---

[1] सूरसागर—ना० प्र० सभा, प्रथम स्कंध, पद सं० ४२, पृ० १५।
[2] सूरसागर ना० प्र० सभा,—द्वितीय स्कंध, पद ३७५। [3] सूरसागर, द्वितीय स्कंध, ना० प्र० सभा।

माया लोक (संसार) और सृष्टि (जगत्) का सृजन करती है।

लोक सृष्टि सिरजित यह माया। तुम तें दूर मलमयी काया॥
हे सरवज्ञ, अग्यजन मेरे। जाने नहिंन धर्म प्रभु केरे॥[1]

इस कथन में दोनों प्रकार की माया का उल्लेख है। भँवरगीत के गोपी-उद्धव संवाद में नन्ददास ने गोपियों के वाक्यों द्वारा शुद्ध स्वरूपा माया तथा मलमयी अविद्या माया, दोनों का वर्णन किया है। उस संवाद का भाव इस प्रकार है—

"हे उद्धव! तुम कहते हो कि ईश्वर निर्गुण है, तो हमें बताओ, यदि उसके गुण नहीं हैं तो इस सृष्टि में दिखाई पड़ने वाले गुण कहाँ से आये? वस्तुतः ईश्वर सगुण है और उसके गुणों की परछाईं ही उसकी माया (प्रकृति) के दर्पण में पड़ रही है। ईश्वरीय गुणों से प्राकृत गुण क्यों भिन्न दिखाई पड़ते हैं? अविद्या माया के संसर्ग से। स्वच्छ जल के समान ईश्वरीय शुद्ध गुणों को जो प्रकृति माया के माध्यम में परिणाम रूप में व्यक्त हो रही है, अविद्या माया की कीच ने सान दिया है और उन्हीं सने हुए गुणों को संसारी जन अपनाते हैं।[2]"

नन्ददास ने अविद्या माया द्वारा उपस्थित किये भ्रम को स्वीकार किया है। अन्यथा प्रतीति और भेद का कारण अविद्या है, इस भाव को एक उदाहरण द्वारा रूपमंजरी ग्रंथ में कवि इस प्रकार कहता है—

पुनि जस पवन एक रस आही,
वस्तु के मिलत भेद भयो ताही।

नन्ददास ने इसे कई स्थानों पर कहा है कि दोनों प्रकार की माया मूल में 'मोहन लाल' की है। विद्या माया से अविद्या माया के भ्रम को हटाकर भगवान् की सृष्टिकारिणी सत्, चित् और आनन्दशक्तिरूपिणी माया का दर्शन होता है।

परमानन्ददास ने शुद्ध स्वरूपा माया का वर्णन नहीं किया है। वे अविद्या माया को बुरा बताते हुए कहते हैं कि जब तक चित्त से संसार के राग-द्वेष नहीं निकलेंगे, तब तक भगवान् का दास कहलाना कठिन है :—

राग विहाग

कमल नयन कमला पति त्रिभुवन के नाथ,
एक प्रेम ते सब बनें जो मन होई हाथ।

---

[1] नन्ददास ग्रंथावली, दशमस्कंध माला, अ० २८, ना० प्र० सभा।
[2] नंददास ग्रंथावली—भ्रमरगीत, ना० प्र० सभा।

सकल लोक की सम्पदा लै आगे धरिये,
भक्ति बिना माने नहिं, जो कोटिक करिए।
दास कहावन कठिन है जौ लौं चित राग,
परमानन्द प्रभु सांवरो पैयत बड़ भाग।[1]

(घ) मोक्ष

मोक्ष का सुख दो प्रकार से प्राप्त हो सकता है—देह रहते—अर्थात् जीवन मुक्त अवस्था के सुख और देहत्याग के पश्चात् ईश्वर कृपा के बल पर प्राप्त मोक्ष अवस्था के सुख। उपनिषदों में मोक्ष का इस प्रकार का कोई वर्णन नहीं मिलता। किन्तु श्रीमद्भागवत में दोनों प्रकार के मोक्ष का वर्णन हुआ है। जीवनमुक्त अवस्था का सुख, देह त्याग के पश्चात् के मोक्ष सुख की अपेक्षा अधिक उत्तम है। यही बात भागवत में स्वयं भगवान् इस प्रकार कहते हैं—"निष्काम भक्त दिये जाने पर भी मेरी सेवाओं को छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक नहीं लेते।[2]"

ठीक ऐसा ही भाव सूरदास के एक पद में है। मानसिक प्रबोधन, संसार की अनित्यता तथा माया मोह की निन्दा में जितने पद सूरदास ने लिखे हैं, उन सब में जीवन मुक्त अवस्था प्राप्त करने के उपायों को उन्होंने बताया है। इस अवस्था के अपूर्व आनन्द के सामने उन्होंने जीवन मुक्ति अवस्था के बाद के मोक्ष सुख की उपेक्षा कर दी है। दशम स्कंध पूर्वार्ध में गोपी कहती है—

जोगी होई सो जोग बखाने, नवधा भक्ति दास रति मानै।
भजनानन्द अली हम प्यारौ, ब्रह्मानन्द सुख कौ न बिचारौ।

एक और पद में सूरदास जीवन-मुक्त सुख के आगे बैकुण्ठ के सुख को हीन बताते हैं—"जो सुख गोपाल के गुणगान में है वह जप, तप, धर्म आदि के करने में नहीं हैं। ब्रज निवास के सामने बैकुण्ठ का सुख भी त्याज्य है। हरि के सुमिरन से संसार-दुःख छूट जाता है और जीवन-मुक्त का परमानन्द मिलता है।[3]"

---

[1] परमानन्ददास पदसंग्रह, पद सं० ४८२, दीनदयाल गुप्त।

[2] सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति बिना मत्सेवनं जनाः॥ भाग० ३।२९।१३

सालोक्य—भगवान् के नित्य धाम में निवास; सार्ष्टि—भगवान् के समान ऐश्वर्य भोग; सामीप्य—भगवान् की नित्य समीपता; सारूप्य—भगवान् का सा रूप तथा सायुज्य—भगवान् के विग्रह में समा जाना।

[3] सूरसागर, द्वितीय स्कंध, ना० प्र० सभा, पृ० १६२१

नन्ददास ने भी जीवनमुक्ति सुख का वर्णन किया है। संसार की माया के दुःख से छूटकर प्रेम भक्ति की संयोग तथा वियोग दोनों अवस्थाओं की आनन्द अवस्था में भक्त ईश्वर के सतत ध्यान में जिस सानिध्य (मोक्ष सुख) का अनुभव करता है उसका वर्णन कवि की रासपंचाध्यायी की निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होता है—

पुनि रंचक धीर ध्यान पीय परिरम्भ दियो जब।
कोटि सरग सुख भोग, छिनक मंगल भुगते तब।[१]

परमानन्द दास के लिए भी सबसे बड़ा मोक्ष सुख यही है कि कृष्ण के चरणों में दास्य, सख्य, कान्ता और वात्सल्य भाव से निरन्तर प्रेम रहे।

यह मागौ संकरषन बीर।
चरन कमल अनुराग निरंतर भावत है भगतनि की भीर।
संग देहु तो हरि भगतन को वास देहु तो जमुना तीर।
भक्ति देहु तो श्रवण कथा रुचि ध्यान देहु तो स्याम शरीर।
यह वासना घटो जिनि निसदिन मज्जन पावन सुरसरि नीर।
परमानन्द को ठाकुर गोकुल मण्डन सब विधि धीर।[२]

साथ ही सन्तों का संग भी रहे—

सब सुख सोही लहै जाहि कान्ह प्यारो।
करि सत्संग विमल जस गावै रहै जगत ते न्यारो।[3]

इन सुखों के सामने उन्हें मोक्ष सुख की अपेक्षा नहीं है।

विष्णु पुराण में मोक्ष का कारण केवल मन बताया गया है—"मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण केवल मन ही है, विषय संग करने से यह बन्धन कारी और विषय शून्य होने से मोक्ष कारक होता है।"[४]

श्रीमद्भागवत में भी स्वयं भगवान् मैत्रेय जी से कहते हैं कि मोक्ष का कारण अन्तःकरण ही है—"मैं स्वयं प्रकाश और सम्पूर्ण जीवों के अन्तःकरण में रहनेवाला परमात्मा ही हूँ। अतः जब तुम विशुद्ध बुद्धि के द्वारा अपने अन्तः-

---

[१] नन्ददास ग्रंथावली, रासपंचाध्यायी, अ० १, ना० प्र० सभा,
[२] परमानंद दास पद संग्रह, पद सं० २८३, दीनदयाल गुप्त [3] वही, २८५

[४] मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।
बंधाय विषयासङ्गि मुक्तयै निर्विषयं मनः॥ विष्णु पु० ६।७।२८

करण में मेरा साक्षात्कार कर लोगे, तब सब प्रकार के शोकों से छूटकर निर्भय पद (मोक्ष) प्राप्त कर लोगे।"[1]

विष्णु पुराण और भागवत का यह भाव हिन्दी के कृष्णभक्त कवियों पर स्पष्ट रूप में आया है। सूर की गोपियाँ कृष्ण की सतत सेवा द्वारा इसी जीवन में चारों प्रकार की मुक्तियों का सुख अनुभव करती हैं। दशम स्कंध के एक पद में गोपियाँ कहती हैं—"हे उद्धव, तुम्हारा निर्गुण ईश्वर और योग का उपदेश अब हमारे काम का नहीं है, हमको तो सगुण कृष्ण की सेवा से ही चारों प्रकार की मुक्तियाँ मिल गई हैं। हम तो सदैव सालोक्य और सामीप्य अवस्था में रहती हैं। इन सुख अवस्थाओं को छुटाने के लिए तुम अब क्या और की और कह रहे हो। हमें तो सदैव उन्हीं का ध्यान रहता है और जहाँ हमारी आँख जाती है हम सर्वत्र उन्हीं को देखती हैं।[2]"

मीरा का भी इस संसार में ही उनके गिरधर गोपाल से साक्षात्कार हो जाता है और आनन्द ही आनन्द हो जाता है—

म्हारा औलगिया घर आया जी।

तन की ताप मिटी सुख पाया, हिलहिल मंगल गाया जी।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आनन्द आया जी।
मगन भई मिलि प्रभु अपणासूं, भौ का दरघ मिटाया जी।

× × ×

रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया जी।
सब भगतन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया जी।
मीरा विरहिण सीतल होई, दुख दुन्द दूरि नसाया, जी।[3]

रसखान को भी जीवन-मुक्ति अधिक प्रिय है। ये चारों प्रकार की मुक्ति में से किसी के भी इच्छुक प्रतीत नहीं होते। 'मानुष हौं तो वही रसखान' आदि प्रसिद्ध सवैये से उनकी मुक्ति के प्रति अनिच्छा तथा प्रत्येक दशा में श्रीकृष्ण के सम्पर्क में रहने की इच्छा प्रकट होती है।

---

[1] मामात्मानं स्वयं ज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम्।
आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभय मृच्छसि। भाग० ३।२४।३९

[2] "ऊधौ सूधे नेकु निहारो"—सूरसागर, दशम स्कंध, ना० प्र० सभा, पद सं० ४५१८, पृ० १५६२ [3] मीराबाई की पदावली, पद सं० १४९, परशुराम चतुर्वेदी।

घनानन्द भी जीवन मुक्ति को ही सच्ची मुक्ति मानते हैं। उसी जीवन मुक्ति के आनन्द की प्राप्ति के लिए उनके प्राण शरीर में अटके हैं, अन्यथा जाने कब के उड़ गये होते—

"एक बिसांस की टेक गहे लगि आस रहे बसि प्रान बहोटी।"

देह त्याग के पश्चात् की मुक्ति की इच्छा कहीं भी प्रकट नहीं होती।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी जीवन मुक्ति की ही कामना करते हैं। देह त्याग के पश्चात् की मुक्ति की इच्छा कहीं भी दृष्टिगत नहीं होती। श्रीकृष्ण में निरंतर मग्न रहने का सुख ही सर्वोपरि है—

हमहूँ कबहूँ सुख सो रहते।
छांड़ि जाल सब निसिदिन मुख सों केवल कृष्णहिं कहते॥
सदा मगन लीला अनुभव में दृग दोउ अविचल रहते।
'हरीचंद' 'घनश्याम बिरह इक जग-दुख तृन सम दहते॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' भी उस मुक्ति की कामना कहीं भी नहीं करते जो मृत्यु के उपरांत प्राप्त होती है। उनके लिए तो श्रीकृष्ण की सतत सेवा और भक्ति ही सर्वोत्तम है—

रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा।
भावोपेता परम प्रभु की भक्ति सर्वोत्तमा है।[1]

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के 'उद्धवशतक' में भी गोपियों को मोक्ष की कामना नहीं है। वे तो श्रीकृष्ण की एक मुस्कान में ही लोक और परलोक (मुक्ति) का आनन्द प्राप्त कर लेती है—

सरग न चाहे अपबरग न चाहे सुनो,
भुक्ति मुक्ति दोऊ सौं विरक्ति उर आनैं हम।
❀ ❀ ❀
एक ब्रजचंद कृपा मंद-मुसकानि ही मैं,
लोक परलोक कौ अनंद जिय जानै हम।[2]

(ङ) जगत्

वैष्णव पुराणों में जगत् की प्रत्येक वस्तु को विष्णु से उत्पन्न माना गया

---

[1] प्रियप्रवास, सर्ग १६, छंद ११७ हरिऔध [2] उद्धवशतक, पद ५८ रत्नाकर।

है। उपनिषदों में जगत् को ब्रह्म से उत्पन्न माना गया है। छांदोग्योपनिषद् में एक स्थान पर लिखा है—

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जलानिति शांत उपासीत।"[1]

अर्थात् यह सार जगत् निश्चय ब्रह्म ही है, यह उसी से उत्पन्न होनेवाला, उसी में लीन होने वाला और उसी में चेष्टा करनेवाला है। इस प्रकार शांत होकर उपासना करे।

उपनिषदों की यह जगत् सम्बन्धी दार्शनिक विचारधारा पुराणों में और भी स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ती है और पुराणों की इस विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य पर पड़ा है। विष्णु पुराण में लिखा है—"तारा-गण, त्रिभुवन, वन, पर्वत, दिशाएँ, नदियाँ और सभी भगवान् विष्णु ही हैं तथा और भी जो कुछ है अथवा नहीं, वह सब भी एकमात्र वे ही हैं।"

ज्योतिषि विष्णुर्भुवनानि विष्णु
वनानि विष्णुर्गिरयो दिशाश्च
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं
यदस्ति यन्नास्ति च विश्ववर्य।[2]

आगे ऋभु एक ब्राह्मण को उपदेश देते हुए कहते हैं कि "तू इस सम्पूर्ण जगत् को एक वासुदेव परमात्मा ही का स्वरूप जान, इसमें भेद भाव बिल्कुल नहीं है।[3]" एक स्थान पर ध्रुव भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं—"आप (भगवान्) ही इस पृथ्वी के नीचे ऊपर और इधर-उधर सब ओर बढ़े हुए हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आप ही से उत्पन्न हुआ है तथा आप ही से भूत और भविष्य हुए हैं;"[4] आगे लिखा है—"जिस प्रकार नन्हे से बीज में विशालकाय वट-वृक्ष रहता है उसी प्रकार प्रलय काल में यह संपूर्ण जगत् बीज स्वरूप आप ही में लीन रहता है। हे ईश्वर, जिस प्रकार केले का पौधा छिलके और पत्तों से

---

[1] छांदोग्य उपनिषद् ३।१४।१

[2] विष्णु पु० २।१२।३८

[3] एवमेकमिदं विद्धि न भेदि सकलं जगत्।
वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः॥ —विष्णु पु० २।१५।३५

[4] विष्णु पु०, १।१२।५८

अलग नहीं दिखाई देता उसी प्रकार जगत् से आप पृथक् नहीं हैं, वह आप ही में स्थित देखा जाता है।[१]"

वास्तव में विष्णु स्वयं ही समस्त जगत् हैं। विष्णुपुराण में एक अन्य स्थान पर लिखा है—"सर्वशक्तिमय विष्णु ही ब्रह्म के पर-स्वरूप तथा मूर्त्त रूप हैं जिनका योगीजन योगारम्भ के पूर्व चिन्तन करते हैं। हे मुने! उनमें ही यह सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत है, उन्हीं से उत्पन्न हुआ है, उन्हीं में स्थित है और स्वयं वे ही समस्त जगत् हैं।[२]"

श्रीमद्भगावत में भी ब्रह्म और जगत् में अद्वैतता दिखाई गई है। एक स्थान पर लिखा है—"यद्यपि व्यवहार में पुरुष और प्रकृति—द्रष्टा और दृश्य के भेद से दो प्रकार का जगत् जान पड़ता है, तथापि परमार्थ दृष्टि से देखने पर यह एक अधिष्ठान स्वरूप ही है। इसीलिए किसी को शांत घोर और मूढ स्वभाव तथा उनके अनुसार कर्मों की न स्तुति करनी चाहिए और न निन्दा। सर्वदा अद्वैत दृष्टि रखनी चाहिए।[३]"

बृहन्नारदीय पुराण में भी जगत् को परब्रह्म विष्णु से ही उत्पन्न बताया गया है। एक स्थान पर लिखा है—"ये सब चर अचर जगत् विष्णु जी की शक्ति से उत्पन्न हैं। जो भी जड़ चेतन वस्तु मात्र हैं वे विष्णु की शक्ति और विष्णु जी से भिन्न नहीं हैं।[४]"

---

[१] न्यग्रोधः सुमहानल्पे यथा बीजे व्यवस्थितः।
संयमे विश्वमखिलं बीजभूते तथा त्वयि ॥६६॥
यथा हि कदली नान्या त्वक्पत्रादपि दृश्यते।
एवं विश्वस्य नान्यस्त्वं त्वत्स्थायीश्वर दृश्यते ॥६८॥
—विष्णु पु० १।१२।६६,६८

[२] स परः परशक्तीनां ब्रह्मणः समनन्तरम्।
मूर्तं ब्रह्म महाभाग सर्वब्रह्ममयो हरिः ॥६०॥
तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत्।
ततो जगज्जगत्तस्मिन्स जगच्चाखिलं मुने ॥६४॥
—विष्णु पु०, १।२२।६३, ६४

[३] परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत्।
विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च ॥१॥ —भाग० ११।२८।१

[४] बृहन्नारदीय पु०, ३।१०

समस्त जगत् विष्णु जी में ही समाहित है। एक स्थान पर और लिखा है "जिन विष्णु जी में यह जगत् समाया रहता है, जो सबसे अधिक नित्य विभु अविनाशी हैं, उन्हें नमस्कार है'।"[1]

विष्णु भगवान् जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार किस प्रकार करते हैं इसका वर्णन वृहन्नारदीय पुराण में इस प्रकार दिया गया है—"वे नारायण, अविनाशी, अनन्त, विष्णु सर्वव्यापक हैं, उन्हीं से यह चर अचर सब संसार व्याप्त है। वे ही स्वयं प्रकाश, जगन्मय विष्णु जी, आदि सृष्टि अर्थात् प्रथम रचना में गुण भेद के आश्रय होकर तीन मूर्ति धारण करते हैं। वे ही जगत् रचना के लिए दाहिने अंग से ब्रह्मा, बीच के अंग से महेश्वर और जगत् के पालन के लिए बाएँ अंग से स्वयं प्रकट हुए। इन्हीं आदि देव जी को कोई अजर और रुद्र कहते हैं और कोई विष्णु। इसलिए उन विष्णु जी की महा-शक्ति ही जगत् की मुख्य कारण है।[2]"

इस प्रकार जगत् के सम्बन्ध में पुराणों में पर्याप्त रूप से दार्शनिक विचार मिलते हैं। इसका प्रभाव हिन्दी के कृष्ण भक्ति काव्य पर भी पड़ा है। जगत् के सम्बन्ध में दार्शनिक विचार हिन्दी के कुछ ही कवियों ने व्यक्त किये हैं और उन पर पुराणों की विचारधारा की छाप स्पष्ट है।

सूर ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि यह जगत्, जीव, सम्पूर्ण देव आदि सब परब्रह्म गोपाल के अंश हैं।[3] एक पद में वे कृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं कि "प्रभु, आप ही इस जगत् का सृजन, इसका पालन और संहार करते हैं। यह जगत् आपसे इस प्रकार निकला है और इस प्रकार आप ही में लय हो जायगा जैसे पानी का बुलबुला पानी से ही बनता है फिर पानी में ही विलीन हो जाता है।[4]" सूरदास जगत् को सत्य मानते थे। गोपी उद्धव-संवाद में जगत् के मिथ्या तत्त्व और विवर्तवाद के भाव को अस्वीकार किया गया है।[5]

नन्ददास ने भी ब्रह्म और जगत् की अद्वैतता बताते हुए ब्रह्म को ही जगत् का निमित्त और उपादान कारण माना है। वे कहते हैं—"जो ब्रह्म ज्योतिर्मय

---

[1] वृहन्नारदीय पु०, ३६।२७ [2] वृहन्नारदीय पु०, ३।१-५ [3] सूरसागर, 'प्रभु तुम मर्म समुझि नहिं पायो'—ना० प्र० स०, पद स० ४६२० [4] सूरसागर, दशमस्कंध, ना० प्र० सभा, पद सं० ४६२०, पृ० १७१३ [5] सूरसागर, दशम स्कंध ना० प्र० सभा, पद सं० ४३०३, पृ० १४९६ तथा सूरसागर, दशम स्कंध, ना० प्र० सभा, पद सं० ४३०८, पृ० १४६८।

और जगत्मय है वही अभेद रूप से जगत् का उपादान कारण है और वही उसका करनेवाला निमित्त है।"[1] 'दशम स्कंध भाषा' में नन्ददास कहते हैं—"इस जगत् का आधार ब्रह्म की सत्ता अथवा सत्‌रूप है, जब यह जगत् ब्रह्म की माया में लीन हो जायगा उस समय केवल एक ब्रह्म ही रह जायगा।[2]"

(च) व्रज वृन्दावन आदि का वर्णन

हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य में व्रज वृन्दावन आदि का दो प्रकार का वर्णन मिलता है। पहले प्रकार में वृन्दावन की सुन्दरता और आनन्दों का वर्णन है और दूसरे प्रकार में कवियों ने परब्रह्म, पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के अक्षर-धाम की ओर संकेत किया है। यह प्रभाव विशेषतया श्रीमद्‌भागवत, ब्रह्मवैवर्त्त और पद्‌म पुराण का प्रतीत होता है।

भागवत में नारद जी ध्रुव को बतलाते हैं कि वृन्दावन ही श्री हरि का नित्य निवास है। वे कहते हैं—"बेटा! तेरा कल्याण होगा। अब तू श्री यमुना जी के तटवर्ती परम पवित्र मधुवन को जा। वहाँ श्री हरि का नित्य निवास है। वहाँ श्री कालिंदी के निर्मल जल में तीनों समय स्नान करके नित्य कर्म से निवृत्त हो यथाविधि आसन बिछाकर स्थिर भाव से बैठना।[3]"

ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी जब बैकुण्ठ में श्रीदामा राधा को शाप देते हैं उस समय कृष्ण-राधा को सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि "पृथ्वी पर जो हमारा नित्य वृन्दावन धाम है, वहाँ चलकर हम अपनी इच्छा पूरी करेंगे।[4]" इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान पर वृन्दावन के महत्त्व का वर्णन किया है। एक स्थान पर श्रीकृष्ण कहते हैं—"राधा के सोलह नामों में से एक नाम वृन्दा भी है। राधा के साथ क्रीड़ा करने के लिए मैंने गोलोक में वृन्दावन रचा और पृथ्वी पर भी उसकी प्रीति के कारण वृन्दावन रचा।"[5]

---

[1] अनेकार्थ, मंजरी पञ्चममञ्जरी, बलदेवदास करतनदास पृ० ६९ [2] नंददास ग्रंथावली, 'दशम स्कंध भाषा' ना० प्र० सभा।

[3] तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि।
पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥४२॥
स्नात्वा नुण्वनं तस्मिन् कालिंद्याः सलिले शिवे।
कृत्योचितानि निवसंतात्मनः कल्पितासनः ॥४३॥
—भाग० ४।८।४२, ४३

[4] ब्रह्मवैवर्त्त पु०, कृष्णजन्मखंड [5] ब्रह्मवै० पु०, कृष्णजन्मखंड—१७।११४

पद्मपुराण में भी वृन्दाबन की महिमा का विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है। इस वर्णन में परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के अक्षर धाम की ओर ही संकेत है। शंकरजी पार्वती जी को श्रीकृष्ण के निवास स्थान वृन्दावन का महत्त्व बतलाते हुए कहते हैं—"सब गुप्त स्थानों से परम गुप्ततम व परम आनन्द करनेवाला अति अद्भुत व सब रहस्यों का रहस्य, परम श्रेष्ठ व दुर्लभों में परम दुर्लभ, परम मोहन, सर्वशक्तिमय व सब स्थानों में गुप्त रखने योग्य, व सत्वगुणी स्थानों के सिरों के ऊपर रहनेवाला विष्णु भगवान् का अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्माण्ड के ऊपर स्थित नित्य रहनेवाला वृन्दावन नामक स्थान है। वह पूर्ण ब्रह्म के सुख व ऐश्वर्य से युक्त नित्य आनन्ददायक नाशरहित है व बैकुण्ठ आदि स्थान उसके अंश के अंश हैं और वही अपने अंश से भूतल पर भी वृन्दावन ही के नाम से प्रसिद्ध है। गोलोक का जो ऐश्वर्य है उससे भूतल पर का सब गोकुल प्रतिष्ठित है। बैकुण्ठ आदि लोकों का जो वैभव है उससे द्वारकापुरी प्रकाशित है। जो ब्रह्म का परम ऐश्वर्य है वह वृन्दावन के नित्य आश्रय रहता है। वह श्रीकृष्ण चन्द्र का विशेष धाम वनों के मध्य में है।[1]" पद्मपुराण के पाताल खंड में ही एक स्थान पर लिखा है—"नित्य वृन्दावन ब्रह्मांड के ऊपर स्थित है। यह अत्यन्त दुर्लभ और स्थानों में शिरोमणि है। यहाँ पूर्ण ब्रह्म सुख और ऐश्वर्य है और नित्य, अक्षय आनन्द है। बैकुण्ठादि इसी के अंश हैं।"

पुराणों के अनुसार ही हिन्दी के कृष्णभक्त कवियों ने भी ब्रज-वृन्दावन की महिमा गाई है। सूरदास ने कृष्ण के लीलाधाम वृन्दावन का वर्णन पर्याप्त रूप में किया है। उन्होंने वृन्दावन की शोभा और आनन्दों के वर्णन के साथ ही साथ परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के अक्षर धाम की ओर ही संकेत किया है—

> धनि गोपी धनि ग्वाल धन्य ये ब्रज के वासी,
> धन्य यशोदा नन्द भक्ति वश किए अविनाशी,
> धनि गोसुत धनि गाइ ये कृष्ण चराए आपु,
> धनि कालिंदी मधुपुरी जा दरशन नाशे पापु।
>
> ❀ ❀ ❀
>
> वृन्दावन ब्रज को महतु कापे बरन्यो जाइ।
> चतुरानन पग परसि के लोक गयो सुख पाइ॥[2]

---

[1] पद्म पु०—पातालखण्ड अ० ६६, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ [2] सूरसागर दशम स्कंध, ना० प्र० सभा।

इस लोक के वृन्दावन की प्रशंसा में सूरदास जी कहते हैं—"ब्रज के निवासी गोपी, ग्वाल, गाय, गोवत्स, यमुना और मथुरा को धन्य है, इनके दर्शन से पाप नष्ट होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का इनके साथ संसर्ग है। ब्रज वृन्दावन का महत्त्व कौन वर्णन कर सकता है?" तथा इस वृन्दावन की रज भी प्रशंसनीय है जहाँ कृष्ण ने गायों को चराया। हे मन, इस स्थान का क्या कहना। यहाँ पुरातन पूर्ण पुरुष श्रीकृष्ण नित्य निवास करते हैं। इस ब्रज धाम में कुछ लेना-देना नहीं है, यहाँ तो मदनमोहन के ध्यान में रहकर सर्व आनन्द है। इसलिये तू यहीं रह। यहाँ की बराबरी कल्पवृक्ष और कामधेनु तक नहीं कर सकते।"[1]

उक्त कथन में भी सूरदास ने पूर्ण पुरुषोत्तम के लीला-धाम की ओर संकेत किया है। मधुर भाव की क्रीड़ास्थली, वृन्दावन के प्रति सूर का मन अत्यधिक आकर्षित है—

'वृन्दावन मोको अति भावत'

नन्ददास ने भी ब्रज और कृष्ण की रासस्थली वृन्दावन की शोभा का वर्णन करते हुए उसकी बहुत महिमा गाई है और उसमें बसने की कामना प्रकट की है। नन्ददास कहते हैं—"मुझे नन्द-ग्राम अच्छा लगता है। वहाँ के गोपी-ग्वाल धन्य हैं, जिनके हृदय से कृष्ण लगे हुए हैं। वहाँ देवता तथा बड़े-बड़े मुनीश्वर रहते हैं और एक पल के लिए भी वह स्थान नहीं छोड़ते। प्रभु कृपा से गिरिधर को देख देखकर नन्ददास का मन भी सजग हो रहा है[2]"

कृष्ण के अक्षर लीलाधाम वृन्दावन का वर्णन कवि ने 'रूपमंजरी,' 'रासपंचाध्यायी' तथा 'सिद्धांत पंचाध्यायी' ग्रन्थों में विस्तार से किया है। कवि कहता है—"इस स्थान पर सदैव वसन्त रहता है। यहाँ जरा का प्रभाव नहीं है,

---

[1] धनि यह वृन्दावन की रेनु।
नंदकिशोर चराई गैया, सुखहि बजाई बेनु॥
मदन मोहन को ध्यान धरत जो, अति सुख पावत चैनु।
चलत कहा मन, बसत पुरातन जहाँ कुछु लेन नहिं देनु॥
इहाँ रहौ जहाँ जूठन पावै ब्रजवासी कै ऐनु।
सूरदास यहाँ की सरवरि जहिं कल्पवृक्ष सुधेनु॥
सूरसागर—दशमस्कंध, ना० प्र० सभा

[2] नंददास ग्रंथावली—ना० प्र० सभा, पदावली पद सं० २१

यह स्थान प्रेममय है। इसका वर्णन अनन्त मुखों से नहीं हो सकता। इस बन में आना बड़ा कठिन है। ब्रह्म आदि देव भी यहाँ आने के लिए प्रयत्न-शील हैं। जो रज ब्रज बृन्दावन की है वह बैकुण्ठ आदि लोकों में भी नहीं है। इस स्थान को अधिकारी जन ही पाते हैं।[1]"

परमानन्ददास ने तो ब्रज प्रेम और वृन्दावन के सुख के सामने वैकुण्ठ सुख की उपेक्षा ही कर दी है। वे कहते हैं—"बैकुण्ठ में जाकर मैं क्या करूँ, वहाँ न तो नन्द हैं, न गोपी और न ग्वाल-बाल। निर्मल जमुना का जल और कदम्ब की छाँह भी नहीं है।[2]"

मीरा ने भी अपने गिरिधर गोपाल की निवास भूमि बृन्दावन की महिमा का वर्णन किया है।

आली म्हाने लागे वृन्दावन नीको।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविंद जी को।
निरमल नीर बहत यमुना में, भोजन दूध दही को।
रतन सिंघासण आप विराजे, मुकट धर्यो तुलसी को।
कुंजन-कुंजन फिरत राधिका, सबद सुणत मुरली को।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको।[3]

और 'क्यों न भई गुल्मलता वृन्दावने रहेनो' में बृन्दावन में रहने की कितनी तीव्र आकांक्षा प्रतीत होती है। हिन्दी के कृष्णभक्त कवियों में लगभग सभी ने ब्रज वृन्दावन में रहने की तीव्र आकांक्षा प्रकट की है।

रसखान ने भी श्रीकृष्ण की लीला भूमि गोकुल, यमुनातट, वन, पर्वत तथा कुंजों का वर्णन किया है। "मानुष हौं तो वहै रसखान" वाले सवैये से उनकी ब्रज बृन्दावन में रहने की तीव्र आकांक्षा प्रकट होती है। निम्नांकित पंक्तियों में भी धाम का वर्णन हुआ है—

रसखानि कबौं इन आँखिनि सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हूँ कलधौत के धाम करील के कुंजनि ऊपर वारौं॥

घनानन्द ने भी बृन्दावन का वर्णन किया है जो इन पंक्तियों में प्रकट हो रहा है—

---

[1] रूपमंजरी, पंचममंजरी—बलदेवदास, करसनदास पृ० २३६-२४०
[2] परमानंददास पद संग्रह, पद सं ३३८, दीनदयाल गुप्त [3] मीराबाई की पदावली, पद सं १६३, परशुराम चतुर्वेदी

गुरनि बतायो, राधा मोहन हूँ गायो,
　　सदा सुखद सुहायो वृन्दावन गाढे गहिरे।
अद्भुत अभूत महि मंडन परे ते परे,
　　जीवन की लाहु हाहा क्यों न ताहि लहि रे॥
आनंद को घन छायो रहत निरंतर ही,
　　सरस सुदेय सो, पपीहा पन बहिरे।
जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी,
　　पावन पुलिन पै परि रहि री॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ब्रज के प्रति प्रेम में विभोर होकर वहाँ की लता-पता ही बन जाने की कितनी उत्कट इच्छा राधा से प्रकट की है—

ब्रज के लता पता मोहिं कीजै।
गोपी-पद-पंकज पावन की रज जामै सिर भीजै॥
आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै।
श्री राधे राधे मुख यह पद 'हरीचन्द्र' को दीजै॥

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने प्रियप्रवास में एक स्थान पर वृन्दावन का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। नवें सर्ग में एक स्थान पर कहते हैं—

हरीतिमा का सुविशाल सिंधु सा।
मनोज्ञता की रमणीय भूमि सा॥
विचित्रता का शुभ सिद्ध पीठ सा।
प्रशांत वृन्दावन दर्शनीय था॥

जगन्नाथदास रत्नाकर ने भी अपने उद्धवशतक में ब्रज-वृन्दावन का सुन्दर वर्णन किया है। वृन्दावन की सुधि मथुरा में श्रीकृष्ण को विकल बना देती है—

जमुना कछारनि की रंज-रस रारनि की,
　　विपिन-विहारनि की हौंस हमसावती।
सुधि ब्रजवासिनि दिवैया सुख-रासिनि की,
　　ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती॥[१]

---

[१] उद्धव शतक, कवित्त सं० ५ रत्नाकर।

और

गोकुल की गैल-गैल गैल-गैल ग्वालिन की,
गोरस के काज लाज-बस कै बहाइबौ।

❀ ❀ ❀

ऊधौ सुख सम्पत्ति समाज ब्रज मंडल के,
भूलै हूँ भूलैं भूलैं हमकों भुलाइलौ ॥[1]

और गोकुल की रज के सामने त्रिलोचन की सम्पत्ति भी तुच्छ है—

गोकुल की रज के कनूका और तिनूका सम,
संपति त्रिलोक की बिलोकन में आवै ना।[2]

❀ ❀ ❀

मैथिलीशरण गुप्त ने द्वापर में अनेक स्थानों पर ब्रज-वृन्दावन का वर्णन किया है। यशोदा कहती हैं—

बना रहे वृन्दावन मेरा,
क्या है नगर नगर में।
मेरा सुरपुर बसा हुआ है,
ब्रज की डगर डगर में॥
प्रकट सभी कुछ नटनागर को,
जगती जगर मगर में।
कालिन्दी की लहर बसी है,
क्या अब अगर-तगर में॥[3]

एक अन्य स्थान पर अक्रूर वृन्दावन का वर्णन करते हैं—

आ पहुँचा वृन्दावन यह मैं,
क्या ही पुण्य प्रभा है।
धाम यही यमुना रानी का,
मथुरा राज सभा है॥

---

[1] उद्धव शतक, कवित्त सं० ८, रत्नाकर [2] उद्धव शतक, कवित्त सं० १०, रत्नाकर [3] द्वापर, पृ० १६, मैथिलीशरण गुप्त।

श्याम समाया कालिन्दी में,
या उसमें कालिन्दी ?
बेला ने जिसके माथे पर,
दी सेंदुर की बिन्दी ॥[1]

द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने कृष्णायन में ब्रज की महिमा का सुन्दर वर्णन किया है। वृन्दावन का वर्णन देखिये—

जहँ रम्य वृन्दावन, मधुवन, महि अवतीर्ण मनहुँ वन नंदन।
ताल फलन जहं वन श्री श्यामा, दाडिम फूलन फलन ललामा।

हरि जहँ अनिल बकुल आमोदा,
श्रान्त पान्थ मन भरत प्रमोदा।

विपिन-विपिन जहँ नयन रसायन, पुलिन-पुलिन मंजुल कामायन।
जहँ तरु-तरु अलिख वाचाला, कुंज कुंज पिक गायन शाला।

शोभित दिशि-दिशि ब्रज जहाँ रम्य गोप जन ग्राम
ताते ब्रज, ब्रजमंडलहु, अन्य पुण्य महिनाम ॥[2]

एक स्थान पर नन्द कहते हैं—

वृन्दावन शोभन सुखकारी,
प्रचुर वारि तृण, गौ हितकारी।[3]

बृन्दावन के समान अन्य कोई भी बन नहीं है—

बैठहिं सब कदंब तरु छाहीं,
बृन्दावन सम वन कहुँ नाहीं।[4]

ब्रज की महिमा वर्णन के साथ ही मिश्रजी ने पृथ्वी पर गोलोक के अवतीर्ण होने का वर्णन भी किया है—

भोगत जहं द्वापर युगहु, कृत युग गोप अशोक।
सुकृतिन हित महि अवतरित, ब्रज मिस जनु गोलोक ॥[5]

---

[1] द्वापर, पृ० ११२, मैथिलीशरण गुप्त [2] कृष्णायन, अवतरण काण्ड, पृ० ५ [3] वही, पृ० ४७ [4] वही, पृ० ४८ [5] वही, पृ० ६

राधा

पुराणों में केवल ब्रह्मवैवर्त्त, पद्म और वराह पुराण में ही राधा का वर्णन मिलता है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में राधा का व्यापक वर्णन है। इस पुराण के ब्रह्म-खंड, प्रकृति-खंड और कृष्णजन्म-खंड में राधा का वर्णन इतने विस्तार से हुआ है कि राधा की कथा ही मुख्य प्रतीत होने लगती है।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में एक स्थल पर लिखा है कि राधा कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय है—

> प्राणाधिके राधिके त्वं श्रूयतां प्राणवल्लभे।
> प्राणाधिदेवि प्राणेश प्राणाधारे मनोहरे॥[1]

एक अन्य स्थान पर राधा को कृष्ण से अभिन्न बताया गया है। श्रीकृष्ण राधा से कहते हैं—"तुममें और मुझमें कोई अंतर नहीं है। जैसे दूध में सफेदी रहती है, अग्नि में गर्मी रहती है और पृथ्वी में सुगन्ध रहती है वैसे ही मैं सदैव तुममें ही रहता हूँ। जैसे कुम्हार या सुनार एक बर्तन या कर्णफूल मिट्टी या सोने के बिना नहीं बना सकता वैसे ही मैं भी तुम्हारे बिना कुछ नहीं बना सकता। तुम संसार की आधार और मैं कारण हूँ।[2]"

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ही में आगे श्रीकृष्ण राधा से कहते हैं कि "जब मैं तुमसे अलग रहता हूँ तो लोग मुझे केवल कृष्ण कहते हैं। लेकिन जब तुम्हारे साथ रहता हूँ तो श्रीकृष्ण कहलाता हूँ।"[3]

पद्मपुराण में भी राधा कृष्ण की शक्ति के रूप में वर्णित हैं। पाताल खंड में लिखा है—"जो सृष्टि स्थिति व अन्तरूपा है व विद्या, अविद्या, वेदत्रयी रूपिनी है व स्वरूपा, शक्तिरूपा, मायारूपा चैतन्यमयी है वह ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के देहों के कारणों की भी कारण है व जिनकी माया से यह चराचर जगत् सदा परिरम्भित रहता है, उनका वृन्दावनेश्वरी राधिका नाम है जो ब्रह्म की भी कारण रूपा हैं। उन्हीं राधा को आलिंगन किये हुए वृन्दावन के ईश्वर वृन्दावन में बसते हैं।"[4]

ब्रह्मवैवर्त पुराण और पद्मपुराण में राधा को कृष्ण की परिणीता माना है

---

[1] ब्रह्मवैवर्त्त पु०, कृष्ण जन्मखंड, ४०।११ [2] वही, पृ० १५ [3] वही, पृ० १५।५६-६४ [4] पद्म पु०, पाताल खंड ७६।१५।१७

और उसी रूप में उनका चित्रण किया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि राधा कृष्ण की विवाहिता पत्नी हैं, वे कृष्ण के वामांग में शोभा पाती हैं। रास की प्राणधात्री हैं—

> राधा रासेश्वरी रास वासिनी रासिकेश्वरी।
> कृष्ण प्राणाधिका कृष्ण प्रिया कृष्ण रूपिणी॥
> कृष्ण वामांग संभूता परमानन्द रूपिणी।
> कृष्ण वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावन विनोदिनी॥[१]

पद्मपुराण में भी राधा कृष्ण की पत्नी के रूप में ही वर्णित हैं। राधा और रुक्मिणी एक ही हैं। पाताल खंड में राधा के अनेक नामों को बताते हुए लिखा है—"शिवकुंड में शिवानन्दा नाम है, देहिका नदी के तट पर नन्दिनी नाम है, द्वारावती में रुक्मिणी नाम है और वृन्दावन में राधा नाम है।[२]" इस प्रकार पद्मपुराण में राधा और रुक्मिणी में कोई अन्तर नहीं माना है। अतः राधा भी कृष्ण की परिणीता ही हैं।

हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों में लगभग सभी ने राधा का वर्णन किया है और उन्हें कृष्ण की शक्ति माना है।

सूरदास ने रास के प्रारम्भ में ही राधा और कृष्ण का विवाह रचा दिया है। यह ब्रह्मवैवर्त का ही प्रभाव है। पद्मपुराण और ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार सूर भी राधा को प्रकृति और कृष्ण को पुरुष कहते हैं। सूर इसी पद में आगे कहते हैं कि "दोनों, राधा और कृष्ण एक हैं, उनमें कुछ भी अन्तर नहीं है, वे अभिन्न हैं।[३]"

---

[१] ब्रह्मवैवर्त्त पु०, कृष्णजन्मखंड १७।२०, २१

[२] पद्म पु०, पाताल खंड ७७।३७

[३] ब्रजहि बसे आपहु बिसरायो।
प्रकृति पुरुष एकै करि जानो बातनि भेद करायो।
जल थल जहाँ रहो तुम बिन्न नहिं भेद उपनिषद् गायो।
द्वै तनु जीव एक हम तुम दोउ सुख कारन उपजायो।
ब्रह्मरूप द्वितीया नहिं कोई तब मन त्रिया जनायो।
सूर श्याम मुख देखि अलय आनन्द पुंज बढ़ायो।
—पद सं० २३०५, पृ० ८४१ सूरसागर, दशम स्कंध, ना० प्र० सभा

एक अन्य पद में उन्होंने राधा को भगवान् की जगत् उत्पादिका शक्ति कहा है और उन्होंने इस शक्ति स्वरूपा राधा की कई पदों में कृष्णभक्ति पाने के लिये बन्दना की है।[1]

परमानन्द राधा के चरणों की बन्दना करते हुए कहते हैं—राधा के चरण कृष्ण-वियोग-रूप सागर के तारने के लिए नौका है।

> धनि ये राधिका के चरण।
> हैं सुभग सीतल अति सुकोमल कमल कैसे बरन।
> रसिक लाल मन मोद कारी बिरह सागर तरन।
> विवश परमानन्द छिन-छिन श्याम जी के चरन।
>
> —परमानन्ददास पद संग्रह, पद सं १३४

मीरा के काव्य में राधा का नाम आया अवश्य है पर उसमें कोई दार्शनिक संकेत नहीं है। मीरा की मधुर भक्ति गोपी की प्रेम भक्ति के ही समान है अतः वे स्वयं को ही कहीं कृष्ण की प्रेयसी और कहीं परिणीता मानती हैं। एक पद में मीरा स्वयं को राधा के ही रूप में देखती हैं। इस पद में मीरा और राधा में एकीकरण-सा हो गया है कहीं स्वयं को मीरा कहा है और कहीं राधा—

> आवत मोरी गलियन में गिरधारी
> मैं तो छुप गई लाज की मारी।
>
> ❀ ❀ ❀
>
> आवत देखी कृष्ण मुरारी, छिप गई राधा प्यारी।
>
> ❀ ❀ ❀

---

[1] नीलाम्बर पहिरे तनु भामिन, अजु घन में दमकत हैं दामिनि।
जग नायक जगदीश पियारी जगत जननि जगरानी,
नित बिहार गोपाल लाल संग वृन्दावन रजधानी।
अगतिनि को गति भक्तन को पति श्रीराधापति मंगल दानी,
अशरण शरणी, भव-भय हरनी वेद पुरान बखानी।
रसना एक, नाहि शत कोटिक शोभा अमित अपारी,
कृष्ण भक्ति दीजै श्री राधे सूरदास बलिहारी।

—सूरसागर, दशमस्कंध, ना० प्र० सभा

राधा प्यारी अरज करत है सुन वै कृष्ण मुरारी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर वारी।[१]

रसखान के उपास्यदेव राधा-कृष्ण न होकर केवल कृष्ण थे। राधा की कुछ भी चर्चा न करना तो कृष्ण भक्त के लिये असंभव सा है, अतः रसखान ने भी दो चार स्थलों पर कृष्ण के साथ राधा का नाम लिया है, किन्तु न तो राधा-कृष्ण की विशेष लीलाओं का वर्णन किया है और न उनके प्रेम की पूर्ण प्रतिष्ठा ही की है। राधा में कोई दार्शनिकता की भावना भी नहीं आने पाई है। फिर भी एक स्थान पर रसखान ने राधा कृष्ण को दूल्हा-दुल्हन के रूप में चित्रित किया है—

मोर के पंखन मौर बन्यो दिन दूलह है अलि नन्द को नन्दन।
श्री बृषभानु सुती दुलही दिन जोरी बनी बिधना सुख कंदन॥

घनानन्द के काव्य में राधा-कृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन है—कहीं झूला-झूलते, कहीं विहार करते, कहीं विनोद और काव्य की-सी क्रीड़ा में रत; लेकिन उसमें दार्शनिक संकेत नहीं है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र युगल मूर्ति के उपासक थे। राधा की भक्ति में अनेक पद लिखे हैं। एक पद देखिये—

हम चाकर राधारानी के।
ठाकुर श्री नंदनंदन के बृषभानु लली ठकुरानी के।
निरभय रहत बदत नहिं काहू डर नहिं डरत भवानी के।
'हरीचंद' नित रहत दिवाने सूरत अजब निवानी के।

एक पद में राधा की बंदना करते हुए कहते हैं—

ब्रज के लता पता मोहिं कीजे।
गोपी पद पंकज पावन की रज जामें सिर भीजै॥
आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै।
श्री राधे राधे मुख यह बर 'हरीचन्द' को दीजै॥

---

[१] मीराबाई की पदावली, पद सं० १७२

इन वर्णनों में दार्शनिकता का पुट नहीं है केवल कवि राधा की भक्ति में विभोर है।

जगन्नाथ दास रत्नाकर ने अपने उद्धव-शतक में राधा का पर्याप्त वर्णन किया है। कवि ने राधा को स्पष्ट शब्दों में कृष्ण की शक्ति आदि नहीं कहा, फिर भी इसका संकेत मिल जाता है। राधा कृष्ण को अत्यधिक प्रिय थीं तभी तो—

> राधा मुख मंजुल सुधाकर के ध्यान ही सौं,
> प्रेम रतनाकर हियैं यौं उमगत है।[1]

"हरिऔध" के प्रिय-प्रवास में राधा का चित्रण दार्शनिक दृष्टि से न्यून होते हुए भी लोक नायिका की दृष्टि से श्रेष्ठ है। वे अपने प्रियतम को विश्व में और विश्व को प्रियतम में व्याप्त देखती हैं—

> मैंने की है कथन जितनी शास्त्र विज्ञात बातें।
> वे बातें हैं प्रकट करतीं ब्रह्म है विश्व व्यापी॥
> व्यापी है विश्व प्रियतम में, विश्व में प्राण प्यारा।
> यों ही मैंने जगत पति को है श्याम में विलोका॥[2]

"द्वापर" में मैथिलीशरण गुप्त ने राधा को कृष्ण की प्रिया और परिणीता के रूप में चित्रित किया है—

> हर ले कोई राधा का धन
> पर वह भाग उसी का,
> कृष्ण उसी का केश पक्ष है
> सेंदुर राग उसी का।[3]

वास्तव में कृष्ण और राधा अभिन्न हैं—

> एक मूर्ति, आधे में राधा,
> आधे में हरि पूरे।[4]

द्वापर की राधा भी लोकनायिका की भाँति कहती है—

---

[1] उद्धव शतक, कवि सं० ११

[2] प्रिय प्रवास, सर्ग १६—हरिऔध

[3] द्वापर, पृ० १८९—मैथिलीशरण गुप्त

[4] द्वापर, पृ० १६३—मैथिलीशरण गुप्त

राधा स्वयं यही कहती है—

"उसे जगत् की पीड़ा"
छूट गई जिसमें पड़कर हा !
ब्रज की-सी वह क्रीड़ा !
सुख की ही संगिनी रही मैं
अपने उस प्रियतम की,
व्यथा विश्व विषयक न तनिक भी
बाँट सकी निर्मम की।
उल्टा अपना दुःख लोक को
मैंने दिया सदा को,
उस भावुक का रस जितना था,
जूठा किया सदा को।[1]

'कृष्णायन' में राधा का स्वरूप बहुत निखर कर आया है। राधा को द्वारकाप्रसाद मिश्र ने कृष्ण की भक्ति में रत दिखाया है। गोवर्धन-धारण के प्रसंग में जब कृष्णा की सखी कृष्ण को छली बताती हुई कहती है—

श्यामहिं सकल स्वांग रचि राखा।
सुरपति अरचन श्याम मिटावा,
देव व्याज आपुहिं पुजवावा।
आपु खात पुनि आप खवावत,
धरि दुइ रूप हमहिं भरमावत।
आपु देव पुनि आपु पुजारी,
बंचेउ निश्चय हमहिं मुरारी।
अबहिं जो कपट देहुँ प्रकटायी,
फिरि न हरिहिं कोउ ब्रज पतियायी।

विशाखा के ऐसा कहने पर राधा उस पर क्रोध करती हैं और कृष्ण की भक्ति में रत हो जाती हैं—

बरजेउ राधा नयन तरेरी,
भक्ति समेत रही सुर हेरी।

---

[1] द्वापर, पृ० १९२—मैथिलीशरण गुप्त

कबहुँ विलोकत विष्णु तन, कबहुँ श्याम छवि धाम,
रोम रोम पुलकित कुंवरि, पुनि पुनि करति प्रणाम ।[1]

'कृष्णायन' की राधा भी कृष्ण से अभिन्न हैं। कृष्ण राधा से कहते हैं—

हम दोउ एक, नाहिं कछु भेदा,
कहत सकल निगमागम वेदा ।[2]

रास

पुराणों से पूर्व, उपनिषदों में रास का वैसा विस्तृत और सुन्दर वर्णन नहीं मिलता, जैसा पुराणों में है। श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की रासलीला का बहुत ही विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है। भागवत में वर्णित रास अलौकिक है। इसका प्रभाव हिन्दी के कृष्ण भक्ति-काव्य पर पर्याप्त रूप से पड़ा है। भागवत में रास के प्रकरण में स्थान-स्थान पर उसकी अलौकिकता की ओर संकेत है। भगवान् का शरीर जीव-शरीर की भाँति जड़ नहीं होता। भगवान् का चिदानन्द घन शरीर दिव्य है, वह अज और अविनाशी है। भगवान् के समान ही गोपियाँ भी परम् रसमयी और सच्चिदानन्दमयी ही हैं। गोपियाँ दिव्य जगत् को भगवान् की स्वरूप-भूता अन्तरंग शक्तियाँ हैं। इन दोनों का सम्बन्ध भी दिव्य ही है। आवरण भंग के अनन्तर, अर्थात् चीरहरण करके जब भगवान् स्वीकृति देते हैं, तब इसमें प्रवेश होता है। भगवान् ने चीरहरण के समय गोपियों से उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिए शरद् की रात्रियों की ओर संकेत किया। इस संकेत में गूढ़ता थी। जैसे सृष्टि के प्रारम्भ में "स ऐक्षत एकोऽहं बहु स्याम"—भगवान् के इस ईक्षण से जगत् की उत्पत्ति होती है, वैसे ही रास के प्रारम्भ में भगवान् ने अपने प्रेम वीक्षण से शरत्काल की दिव्य रात्रियों की सृष्टि की। समस्त प्रकृति और उद्दीपन सामग्री अलौकिक थी। इस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने बाँसुरी बजाई और इस ध्वनि को सुनकर कार्यों में रत गोपियाँ सब काम छोड़कर श्रीकृष्ण के पास आ गईं। तब भगवान् और व्रजसुन्दरियों ने क्रीड़ा की अर्थात् लीला रसमय परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी ह्लादिनी शक्ति रूपा, अपनी ही प्रतिमूर्ति से उत्पन्न अपनी प्रतिबिम्ब स्वरूपा गोपियों से आत्मक्रीड़ा की।

---

[1] कृष्णायन, अवतरण काण्ड, पृ० ७६

[2] कृष्णायन, अवतरण काण्ड, पृ० ६८

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में सूरदास और नन्ददास ने रासलीला का चित्रण विस्तार के साथ किया है। सूरदास ने इस रास रस को लोकानुभूत रसों से तथा ब्रह्मानन्द से भी इतर अद्भुत रस कहा है।

> आजु हरि अद्भुत रास उपायो।
> एकहि सुर सब मोहित कीन्हें मुरली नाद सुनायो।[1]

नन्ददास के अनुसार भी रास नित्य है, कृष्ण और रास का रस नित्य तथा अद्भुत है—

> नित्य रास रस नित्य-नित्य गोपी जन वल्लभ।
> नित्य निगम जो कहत नित्य नव तन अति दुल्लभ॥
> वह अद्भुत रस रास कहत कछु कहि नहिं आवै।
> सेस सहस मुख गावै अजहूँ पार न पावै॥[2]

रास की गोपियों में कुछ तो पति भाव को लेकर और कुछ 'परकीया' भाव के साथ कृष्ण के पास उनकी मुरली के नाद से प्रेरित होकर गई थीं। इस वर्णन में 'परकीया' के मधुर भाव में लोक-मर्यादा का उल्लंघन भी हो गया है।

भागवत में रास की निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए रास प्रकरण के अन्त में शुकदेव जी ने कहा है—"रसात्मक विष्णु भगवान् ने ब्रज बंधुओं के साथ जो क्रीड़ा और रास किया उसको श्रद्धापूर्वक सुनने और वर्णन करने से काम-रोग रूपी हृदय रोग का नाश होता है।[3]"

एक अन्य स्थान पर भागवत में लिखा है—"काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य और सुहृद्भाव, इनमें से कोई भी भाव भगवान हरि के साथ लगाया जाय तो ये भाव लौकिक रूप को छोड़ ईश्वरमय हो जाते हैं।"[4] इसी अध्याय में आगे कहा है—"जिन्होंने परमात्मा का जार बुद्धि से ध्यान किया उनके भी बन्धनों का क्षय हो गया और गुणमय शरीर से मुक्ति मिल गई।"[5]

---

[1] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० १७५८, पृ० ६५२, ना० प्र० सभा, काशी।

[2] नंददास ग्रंथावली, रास पंचाध्यायी, पंचम अध्याय।

[3] भाग० १०।३३।४०

[4] भाग० १०।२९।१५

[5] भाग० १०।२९।११

सूरदास ने भी कई पदों में इस बात को स्वीकार किया है कि रास में कृष्ण-गोपी-मिलन लोक की दृष्टि से कुल मर्यादा के विरुद्ध है।[1] लेकिन साथ ही रास की निर्दोषिता दिखाते हुए कहते हैं—"इसको समझने के लिए भ्रम से मुक्त बुद्धि चाहिए। जिन लोगों में भक्ति का भाव है, वे ही इस रूप का आस्वादन कर सकते हैं। वेद और शास्त्रों में दिया हुआ ज्ञान भी बिना ईश्वर की कृपा के इस रास रस के रहस्य को नहीं जान सकता।"

रास रस रीति नहिं बरनि आवै।
कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन लहौं कहाँ इह चित्त जिय भ्रम भुलावै॥
जो कहौ कौन मानै, निगम अगम - कृपा बिन नहीं या रसहि पावै॥
भाव सों भजै, बिन भाव मैं नहीं, भावही माहिं ध्यानहिं बसावै॥
यहै निज मन्त्र, यह ज्ञान यह ध्यान है, दरस-दम्पति भजन सार गाऊँ॥
यह माँगो बार-बार सूर के, नैन दोऊ रहैं नर देह पाऊँ॥[2]

रास की निर्दोषिता नन्ददास ने भी दिखाई है। 'सिद्धांत पंचाध्यायी' ग्रन्थ तो रास की निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए ही लिखा गया है। 'सिद्धांत पंचाध्यायी' और 'रास पंचाध्यायी', दोनों ग्रन्थों में नन्ददास ने रास वर्णन से पहले कृष्ण के स्वरूप को बताया है कि कृष्ण नर नहीं हैं, नारायण हैं। ग्रंथ के आदि में ही इस भाव को स्पष्ट कर देने का ध्येय यही है कि लोग कृष्ण-लीला में नर-चरित्र का भाव न देखने लगें। 'सिद्धांत पंचाध्यायी' में कवि कृष्ण की स्तुति करते हुए कहता है—"कृष्ण नित्य आत्मानन्द सदा एक रस, अखंड और घट-घट में निवास करनेवाले अन्तर्यामी हैं। वे मनुष्य नहीं हैं, न वे काम के वश में हैं और न कामिनी के। वे नित्य रस-रूप में रहनेवाले परब्रह्म उनका नैकट्य केवल प्रेम से मिल सकता है अन्य प्रकार से नहीं, जैसे उनका स्वरूप उज्ज्वल है उसी प्रकार से उनका रस-परिवार (रास मंडल) भी उज्ज्वल है।"[3]

---

[1] 'यह युवतिन को धर्म न होई'—पद सं० १६३३ और 'संग ब्रज नारि हरि रास कीन्हो'—पद सं० १७५३, सूरसागर दशमस्कंध।

[2] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० १६२४ ना० प्र० सभा, काशी।

[3] नहिं कछु इन्द्रिय गामी कामी कामिन के बस,
सब घट अन्तर्जामी स्वामी परम एक रस।

रास की घटनास्थली वृन्दावन को भी कवि दिव्य-रूप में ही देखता है। कवि 'सिद्धांत पंचाध्यायी' में लिखता है—

श्री वृन्दावन चिद्घन, छुन छुन घन छवि पावै,
नन्द सुवन करै नित्य सदन श्रुति गन जिहि गावै।[1]

श्रीकृष्ण के साथ रास करनेवाली गोपियाँ कैसी आत्माएँ थीं, इसकी व्याख्या भी कवि ने 'रास पंचाध्यायी' और 'सिद्धांत पंचाध्यायी' दोनों ग्रन्थों में की है। 'रास पंचाध्यायी' में कवि गोपियों का परिचय इस प्रकार देता है—

सुद्ध प्रेम मय रूप पंच भूतन तें न्यारी,
तिनहि कहा कोउ कहै ज्योति सी जग उजियारी।[2]

हिन्दी के अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने भी रास का वर्णन किया है; परन्तु रास में आध्यात्मिकता बहुत कम ने दिखाई है। रास के रस और उसकी निर्दोषिता के बारे में भी कुछ नहीं कहा है, उन्होंने केवल कृष्ण रास की विविध क्रीडाओं का ही चित्रण किया है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने प्रियप्रवास के रास वर्णन में कुछ अलौकिकता की ओर संकेत किया है। चौदहवें अध्याय में गोपियाँ उद्धव को रास का विवरण सुनाती हुई बताती हैं कि उस समय सर्वत्र ही अलौकिकता का वातावरण था—

भू व्योम - व्यापित कलाधर की सुधा में।
न्यारी-सुधा मिलित ही मुरली स्वरों की।
धारा अपूर्व-रस की महि में बहा के।
सर्वत्र थी अति अलौकिकता लखाती।

नित्य आत्मानंद अखंड सरूप उदारा,
केवल प्रेम सुगम्य अवर परकारा।

× × ×

जैसेई कृष्ण अखंड रूप चिद्रूप उदारा,
तैसोई उज्वल रस अखंड तिनकर परिवारा।

नन्ददास ग्रंथावली—सिद्धांत पंचाध्यायी

[1] नन्ददास ग्रंथावली, सिद्धांत पंचाध्यायी, पृ० २९, दोहा सं० २०

[2] नंददास ग्रंथावली, रास पंचाध्यायी पृ० ६,

—ब्रज बालाओं की विरह दशा

अध्याय ४

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में भक्ति और उस पर पुराणों का प्रभाव

(क) सगुण-निर्गुण

अधिकांश पुराणों में सगुण भक्ति को अधिक सुगम और शीघ्र फल देनेवाली माना गया है। पुराणों से भी पहले उपनिषदों के अन्तर्गत त्रिपाद्विभूतिमहा-नारायण उपनिषद् में भी साकार और निराकार ब्रह्म का वर्णन मिलता है। वास्तव में ब्रह्म निराकार और साकार दोनों है। एक स्थान पर लिखा है—"जैसे पृथ्वी आदि के अधिष्ठाता देवता अपने पृथ्वी रूपी भौतिक शरीर एवम् देव शरीर दोनों से युक्त हैं, वैसे ही सर्वात्मक परब्रह्म में साकार एवम् निराकार का भेद होने पर भी विरोध नहीं है। विविध प्रकार की अनन्त विचित्र शक्तियों से सम्पन्न परब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर विरोध नहीं रह जाता अर्थात् जब जान लिया जाता है कि परब्रह्म में विविध प्रकार की अनन्त विचित्र शक्तियाँ हैं, तब विरोधी धर्मों का विरोध असंगत नहीं लगता। इस ज्ञान के अभाव में ही अनन्त विरोध प्रतीत होते हैं।"[1] पुराणों में सगुण और निर्गुण भक्ति का विवेचन मिलता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सगुण भक्ति को अधिकांश पुराणों में सुगम और शीघ्र फल देनेवाली कहा गया है। विशेषतया वैष्णव पुराणों में सगुण भक्ति की ही श्रेष्ठता अधिक दिखलाई गई है। विष्णु पुराण में निर्गुण भक्ति को अगम और सगुण भक्ति को सुगम बताते हुए सगुण भक्ति करने का ही विधान बताया गया है। एक स्थान पर लिखा है—"भगवान् के स्थूल तथा सूक्ष्म दो रूप हैं। लेकिन योगाभ्यासी जन पहले-पहल उस रूप का (अमूर्त) चिन्तन नहीं कर सकते, अतः उन्हें श्री हरि के विश्वमय स्थूल रूप का ही चिन्तन करना चाहिए[2]।"

---

[1] त्रिपाद्विभूतिमहानारायण उपनिषद् २।११-१२

[2] न तद्योगयुजा शक्यं नृप चिन्तयितुं यतः।
ततः स्थूलं हरे रूपं चिंतयेद्विश्वगोचरम्॥ विष्णु पु० ६।७।५५

श्रीमद्भागवत के अनुसार भी सगुणोपासना सरल है। एक स्थान पर लिखा है—"जो लोग मन और इन्द्रिय रूप मगरों से भरे हुए इस संसार सागर को योग आदि दुष्कर साधनों से पार करना चाहते हैं, उनका उस पार पहुँचना कठिन ही है, क्योंकि उन्हें कर्णधार रूप श्री हरि का आश्रय प्राप्त नहीं है। अतः तुम तो भगवान् के आराधनीय चरण कमलों को नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर समुद्र को पार कर लो।[1]"

एक अन्य स्थल पर नारद जी ध्रुव से भगवान् के सगुण रूप का वर्णन कर कहते हैं कि—"भगवान् की मंगलमयी मूर्ति का इस प्रकार निरंतर ध्यान करने से मन शीघ्र ही परमानन्द में डूबकर तल्लीन हो जाता है और फिर वहाँ से लौटता नहीं।[2]"

पद्मपुराण में भी सगुण भगवान् की भक्ति करने का विधान बताया गया है। एक स्थान पर लिखा है—"वृन्दावन के ईश्वर निरन्तर ऐश्वर्य से युक्त व व्रज के बालकों के एक वल्लभ हैं जो कि श्रुतियों के ढूँढ़ने के योग्य और गोप-गोपियों के मन को हरने वाले परमधाम परमरूप द्विभुज गोकुल के ईश्वर हैं। ऐसे गोपीनन्दन का ध्यान करना चाहिए जो कि निर्गुण के एक मुख्य कारण हैं व नवीन स्वच्छ श्याम तेज से युक्त मनोहर रूप हैं।[3]"

पुराणों की सगुण भक्ति का प्रभाव हिन्दी के कृष्ण भक्ति काव्य पर भी पड़ा है। हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने भी सगुण ईश्वर की ही उपासना का भाव अपनी रचनाओं में प्रकट किया है। अनेक स्थान पर उन्होंने अपना यह निश्चित मत तथा अनुभूति प्रकट की है कि सगुण भक्ति व्यावहारिक रूप में सरल और सीधा मार्ग है तथा वह मार्ग परमार्थ का सीधा फल देने वाला है।

सूरदास तथा नन्ददास के भँवरगीतों का गोपी-उद्धव-संवाद इसी सगुण-निर्गुण तथा भक्ति और ज्ञान के विलाप को प्रकट करता है। इन कवियों ने

---

[1] कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां,
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीर्षन्ति।
तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं,
कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णवम्॥ भाग० ४।२२।४०

[2] एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः।
निर्वृत्या परया तूर्णं सम्पन्नं न निवर्तते॥ भाग० ४।८।५२

[3] पद्मपुराण, पाताल खंड ६९।८४।८७

इस विवाद के अन्त में सगुण ईश्वर की भक्ति को ही अधिक प्रभावमयी सिद्ध किया है।

सूरसागर के आरम्भ में ही 'अविगत गति कछु कहत न आवैं' वाले पद में सूर ने निर्गुणोपासना में होने वाली कठिनाई का उल्लेख किया है। वे कहते हैं—"निर्गुण ईश्वर की गति न तो कहने में आती है और न उस अव्यक्त पर मेरे मन की भावमयी वृत्ति ही ठहरती है। इसलिए सब प्रकार से अव्यक्त ब्रह्म तक पहुँचने में अपने को असमर्थ पाकर मैं सगुण ईश्वर की भक्ति करता हूँ और उसकी लीला के पद गाता हूँ।"

सूर ने एक पद में स्वयं कृष्ण से कहलाया है—"योग, कर्म और ज्ञान के मार्ग से लोग मुझे नहीं पा सकते, और जो गद्‌गद् कंठ से मग्न होकर मेरा गान करते हैं उनके हृदय में मेरा निवास है।[1]"

गोपी उद्धव संवाद में सूर की गोपी कहती हैं—"हे उद्धव! जरा सही बुद्धि से विचारो, तुम हम अबलाओं को ज्ञान और योग तथा निर्गुण ईश्वर का वाद सिखाने आये हो। तुम्हारा निर्गुण ईश्वर बहुत भारी है जो हमसे नहीं सँभल सकता। हमको तो सगुण की भक्ति में ही चारों प्रकार की मुक्तियों का (सालोक्य, सानिध्य, सारूप्य और सायुज्य) लाभ मिल गया। हम योगाभ्यास करने योग्य नहीं, और न ज्ञान के सार को जानने की हममें बुद्धि है।[2]" और

---

[1] कहत नन्द लाड़िलो।
जटा भस्म तनु दहै वृथा ,करि कर्म बँधावै।
पुहुमि दाहिनी देहि गुफा बसि मोह न पावै॥
तजि अभिमान जो गावही गद्‌गद् सुही प्रकाश।
तासु मगन हो ग्वालिनी ता घट मेरो बास॥
—सूरसागर, दशम स्कंध, ना० प्र० सभा

[2] ऊधो सुध नेकु बिसारी,
× × ×
निर्गुण कहो कहा कहियत है, तुम निर्गुण अति भारी।
सेवत सगुण श्याम सुन्दर को मुक्ति लही हम चारी॥
हम सालोक्य स्वरूप सरो ज्यों रहत समीप सहाई।
सो तजि कहत और की औरै तुम अलि बड़े अदाई॥
अहो ज्ञान कत ही उपदेशत ज्ञान रूप हमही।
निस दिन ध्यान सूर प्रभु को अलि देखत जित नितही॥
—सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० ४५१८ ना० प्र० सभा

'गोकुल सबै गोपाल उपासी' वाले पद में गोपियाँ कहती हैं कि "इस ज्ञान के उपदेश को तो काशी की ओर ले जाओ, वहाँ लोग इसे अपना लेंगे, यहाँ पर तो सब गोपाल कृष्ण के उपासक हैं।"

इस प्रकार सूर ने अनेक पदों में ज्ञान, योगमार्ग तथा निर्गुण ईश्वर के प्रति अपनी उपेक्षा के भाव को व्यक्त किया है और सगुण ब्रह्म कृष्ण के रूप, नाम और लीला के प्रेम भक्ति की ही महिमा गाई है।

नन्ददास ने भी निर्गुण ईश्वर की दुर्लभता तथा उसको छोड़ सगुण ईश्वर की भक्ति को अपनाने का भाव प्रकट किया है। 'दशमस्कंध भाषा' के चौदहवें अध्याय में कवि निर्गुण ज्ञान को बड़ा ही दुर्घट बतलाता है—

अब विधि कहत कि निर्गुण ज्ञान, तिहिं समान दुर्घट नहिं आन।

× × ×

जाके रूप न रेख न क्रिया, तिहि लालच अवलंबै हिया।
सहजहि सून्य समाधि लगाई, लेत हैं तामैं तुमको पाई॥
पै यह सगुण सरूप तुम्हारो, हमो मन खोयो जात हमारो।
ये अद्भुत अवतार जु लेत, विस्वहि प्रतिपालन के हेत॥
नाम रूप गुन कर्म अनन्त, गनत गनत कोऊ लहे न अन्त।

× × ×

तातें तव भगतिहिं अनुसरै, तुम्हरी कृपा मनाओ करै।
कब मोपै नन्दनन्दन ढरिहैं, मधु कटाच्छ चितै रस भरिहैं॥[1]

परमानन्ददास ने भी भँवरगीत के पदों में निर्गुण ईश्वर का निराकरण करके सगुण भक्ति को ही अपनाया है। एक पद में उन्होंने भी सूर की भाँति निर्गुण उपासना के योग साधन का काशी में प्रचार करने के लिए कहा है। कवि कहता है—"भस्म लगाकर उदासी वेश धारण करनेवाले संन्यासी तो काशी

[1] नन्ददास ग्रंथावली, सं० १४ पृ० २६६ दशमस्कंध भाषा, ना० प्र० सभा।

में हैं, यहाँ ब्रज में हम तो सुन्दर श्याम के उपासक हैं। तुम यदि पारस का मर्म नहीं जानते तो काशी में जाओ।"[1]

मीरा ने यद्यपि निर्गुण ईश्वर और भक्ति के विषय में कोई कथन नहीं किया, किन्तु उन्होंने भगवान् के सगुण रूप को ही स्वीकार किया है। मीरा ने अपने सांवले गिरधर गोपाल को परम ऐश्वर्यशाली एवं लीलामय रूप में ही अंकित किया है। मीरा के कृष्ण वही मोहनी मुरली वाले नन्द के कुमार हैं—

तू नागर नन्द कुमार, तो सों लाग्यो नेहरा।
मुरली तेरी मन हर्यों, बिसर्यौ ग्रह ब्यौहारा॥[2]

और—

मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई॥[3]

कुछ विद्वान् मीरा पर संत मत का प्रभाव बतलाते हैं और मीरा के इष्टदेव को निर्गुण कहते हैं। क्योंकि मीरा के कतिपय पदों में 'त्रिकुटी महल' के झरोखे से झाँकने और 'सून्नि महल' आदि का वर्णन है; यद्यपि इसके लिए वास्तव में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होते कि ऐसे पद मीरा के ही हैं। इनकी प्रामाणिकता में संदेह है। वास्तव में उनकी भक्ति सगुण ही है और इनके इष्टदेव वही वंशीवाले गिरिधर गोपाल हैं।

रसखान ने भी यद्यपि निर्गुण ईश्वर और भक्ति के विषय में कोई कथन नहीं किया, परन्तु उन्होंने जितना भी काव्य लिखा है उससे उनकी भक्ति सगुण ही कही जा सकती है। रसखान के इष्ट निर्गुण नहीं हैं, यह बात उनके निम्नलिखित सवैये से स्पष्ट है—

---

[1] धन्य धन्य वृन्दावन के वासी।
निसिदिन चरन कमल अनुरागी स्याम स्याम उपासी।
अष्ट महासिधि द्वार तें ठाढ़ी रमा चरन की दासी॥
पारस को जो मर्म न जानो जाय वसो किन कासी।
भस्म लगाय गरे लिंग बाँधो निस दिन फिरो उदासी॥
परमानंद दास को ठाकुर सुन्दर घोष निवासी।
—परमानंद पद संग्रह, पद सं० ४८६

[2] मीराबाई की पदावली, पद सं० १०५

[3] मीराबाई की पदावली, पद सं० १५

गावैं गुनी गनिका गन्धर्व, और सारद सेस सबै गुन गावैं।
नाम अनन्त गनन्त गनेस सो, ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावैं॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध, निरन्तर जाहि समाधि लगावत।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावत॥

वास्तव में रसखान के इष्ट भी वही गोपी वल्लभ कृष्ण ही हैं।

रहीम भी सगुणोपासना को ही श्रेष्ठ समझते थे। निर्गुणोपासना तो एक ढोंग है। सगुणोपासना का भाव इस दोहे में देखिये :—

अंजन देहु तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन में हरि बसो, रहिमन बलि-बलि जाय॥

अंजन से कवि का आशय योग आदि क्रियाओं से है जिसका प्रयोग करना बहुत ही कठिन है, यह कठिनता 'किरकिरी' शब्द से जान पड़ती है। 'सुरमा' शब्द से मुसलमानी रीति से आराधना की ओर कवि का संकेत है। अब तीसरा 'हरि' शब्द ही विचारणीय है। जिस प्रकार हरियाली आँखों के लिए सुखद और उपयोगी है उसी प्रकार हरि—सगुण हरि की उपासना सुखप्रद और उपयोगी है।

सेनापति ने भी, यद्यपि निर्गुण ईश्वर और भक्ति आदि के विषय में कोई कथन नहीं किया; परन्तु उन्होंने जितना भी काव्य लिखा है वह सब सगुण ईश्वर और भक्ति विषयक ही है। निम्नलिखित पंक्तियों में सगुण हरि को ही ब्रज का वियोग सता रहा है :—

लोल हैं कलोल पारावार के अपार तऊ,
जमुना लहरि मेरे हिय कौं हरति है।
सेनापति नीकी पटबास हू तै बृज-रज,
परिजात हू तै बन लता सरसति हैं॥
अंग सुकुमारी संग सोरह सहस रानी,
तऊ छिन एक पैन राधा बिसरति है।
कंचन अटा पर जराऊ परंजक तऊ।
कुंजन की सेजैं वे करेजे खरकति हैं।[1]

---

[1] कवित्त रत्नाकर—दूसरी तरंग, पद सं० ४२

घनानन्द की भक्ति सगुण प्रेमा भक्ति थी। प्रेम के पंथ से प्रभावित होकर ही घनानन्द ने कृष्ण भक्ति को स्वीकार किया। ज्ञान से ऊँची प्रेम भक्ति है—

ज्ञान हूँ तैं आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
रत उपजावै तामैं भोगी भोग जात ह्वै।
जान 'घन आनन्द' अनोखी यह प्रेम पंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र युगलमूर्ति के उपासक थे। उनका सम्पूर्ण कृष्ण-काव्य सगुण भक्ति से पूर्ण है। ब्रज के मधुर वातावरण में रहने की कितनी तीव्र इच्छा है—

ब्रज के लता पता मोंहि कीजै,
गोपी-पद-पंकज पावन की रज जामै सिर भीजै।
आवत जात कुंज की गलियन रूप सुधा नित पीजै।
श्री राधे राधे मुख यह वर ही हरीचन्द को दीजै।

इन्होंने भी यद्यपि निर्गुण भक्ति आदि के विषय में कोई कथन नहीं किया परन्तु जितना भी कृष्ण भक्ति काव्य लिखा है वह सब सगुण ईश्वर और उसकी भक्ति-विषयक ही है।

जगन्नाथदास रत्नाकर के काव्य में भी कृष्ण की सगुण भक्ति ही है। 'रत्नाकर' की गोपियाँ उद्धव से कहती हैं :—

प्रेम नेम छाँड़ि ज्ञान-छेम जो बतावत सो,
भीत ही नहीं तौ कहाँ घातैं रहि जाँइगी,
घातैं रहि जाँइगी न कान्ह की कृपा तैं इती।[1]

और ज्ञान से ऊँचा प्रेम ही है :—

कीजै ज्ञान भानु को प्रकाश गिरि श्रृङ्गिनि पै।
ब्रज में तिहारी कला नैंकु खटिहैं नहीं।
कहै रत्नाकर न प्रेम तरु पै है सूखि।
याकी डार-पात तृन तूल घटिहैं नहीं।[2]

---

[1] उद्धवशतक—पद ६३ रत्नाकर

[2] उद्धव शतक—पद ६७ रत्नाकर

और रत्नाकर की गोपियों के आगे भी सदैव गोपाल ही नाचते रहते हैं—

नैननि के आगै नित नाचत गुपाल रहैं,
ख्याल रहैं सोई जो अनन्य-रसवारे हैं।
कहे रत्नाकर सो भावना भरीयै रहै,
जाके चाव भाव रचैं उर मैं अखारे हैं।
ब्रह्म हूँ भए पै नारि ऐसियै बनी जौ रहैं,
तौ तौ सहैं सीस सबै बैन जो तिहारे हैं।
यह अभिमान तो गवै हैं ना गए हूँ प्रान,
हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे हैं।[1]

'हरिऔध' जी ने भी प्रियप्रवास में सगुण भक्ति की ही श्रेष्ठता स्वीकार की है। वे गोपियों के मुख से कहलाते हैं :—

भोली भाली-ब्रज अवनि क्या योग की रीति जानें।
कैसे बूझें अ-बुझ अबला ज्ञान विज्ञान बातें॥
देते क्यों हो कथन करके बात ऐसी व्यथाएँ।
देखूँ प्यारा बदन जिनसे यत्न ऐसे बता दो॥[2]

हरिऔध गोपी रूप में कहते हैं :—

कह चुकी प्रिय साधन ईश का।
कुंवर का प्रिय साधन है यही॥
इसलिए प्रिय की परमेश की।
परम पावन-भक्ति अभिन्न है॥[3]

ज्ञान का पन्थ कठिन है इसमें ज्ञानी लोग भी भ्रमित हो जाते हैं तो फिर गोपियों के लिए वह कैसे सुगम होगा :—

हो जाते है भ्रमित जिसमें भूरि-ज्ञानी-मनीषी।
कैसे होगा सुगम पथ सो मंद-धी नारियों को॥
छोटे-छोटे सरिस-सर -में डूबती जो तरी है।
सो भू-व्यापी सलिल-निधि के मध्य कैसे तरेगी॥[4]

---

[1] उद्धव शतक, पद ६८ – रत्नाकर
[2] प्रिय प्रवास, सर्ग १४ पद सं० ७१—हरिऔध
[3] ” ” १६ ” १२७—हरिऔध
[4] ” ” १४ ” ४१—हरिऔध

गोपियों की प्रेम भक्ति के आगे उद्धव जी अन्त में हार जाते हैं और उनके अलौकिक प्रेम की सराहना करने लगते हैं :—

तदुपरांत अतीत सराहना।
भर अलौकिक-पावन प्रेम की॥
ब्रज-वधू जन की कर सान्त्वना।
ब्रज-विभूषण-बंधु विदा हुए॥[1]

श्रीमैथलीशरण गुप्त के 'द्वापर' में भी गोपियों ने सगुण भक्ति की ही महत्ता प्रतिपादित की है। चर्म-चक्षुओं से तो साकार की ही उपासना की जा सकती है—

होगा निर्गुण, निराकार वह छली तुम्हारे लेखे,
हमसे पूछो तुम उसके गुन रूप हमारे देखे।
अन्तर्दृष्टि मिले तो हम भी शून्य देख लें अथके,
पर जब तक हैं क्या करें चर्म-चक्षु हम सबके।[2]

द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'कृष्णायन' में कहते हैं कि यही पूर्ण ब्रह्महरि सगुण और निर्गुण दोनों होते हैं :—

जानि आत्मजा, लखि चरण, अर्पित तन मन प्राण।
होत सगुन निर्गुण हरिहु लखति भूमि भगवान॥[3]

(ख) भक्ति के प्रकार

श्रीमद्भागवत में साधक के स्वभावानुसार भक्ति चार प्रकार की कही गई है। भागवत पुराण के तृतीय स्कंध में कपिल जी कहते हैं—"हे माता! भक्ति योग अनेक प्रकार का है। स्वभाव की वृत्तियों के अनुसार भक्तियों के भी विभेद होते हैं। हिंसा, दम्भ क्रोध आदि के वश अपनी-अपनी इच्छा पूरी करने के लिए जो मेरी पूजा भक्ति की जाती है उसे तामसी भक्ति कहते हैं। लौकिक विषय, यश अथवा ऐश्वर्य की कामना से भेद-दृष्टिपूर्वक मेरी भक्ति राजसी भक्ति है।

---

[1] प्रियप्रवास, सर्ग १४, पद संख्या १४७

[2] द्वापर, पृ० १६६—मैथलीशरण गुप्त

[3] कृष्णायन, अवतरण काण्ड, दोहा सं० २, पृ० २

जब भक्त अपना पाप नष्ट करने के लिए अपने सब कर्मों को मुझे अर्पण कर देता है, परन्तु जीव को मुझसे अलग देखता है तथा अपनी आशापूर्ण करने को मुझमें आसक्त है उसकी भक्ति सात्विकी है। जो भक्त मेरे गुणों के श्रवण से, मुझको सबमें समान जानता है और अपनी कर्म गति को अविच्छिन्न भाव से मुझमें अर्पण करता है, उस आसक्ति को निष्काम या निर्गुण भक्ति कहते हैं। ये भक्त मेरी दी हुई पाँच प्रकार की मुक्ति को भी ग्रहण नहीं करते है।[1]"

इस प्रकार साधक के स्वभावानुसार भक्ति चार प्रकार की कही गई है—तामसी, राजसी, सात्विकी और निर्गुणा।

हिन्दी के कृष्णभक्त कवियों में से सूरदास ने इन चारों भक्तियों का ठीक भागवत पुराण के ही समान उल्लेख किया है। चौथी निर्गुण भक्ति को 'सुधासार-भक्ति' कहा है। वे कहते हैं—"भक्ति चार प्रकार की है। सात्विकी, राजसी, तामसी और निर्गुणा अथवा सुधासार। सात्विकी भक्त मुक्ति चाहता है, राजसी भक्त धन-कुटुम्ब चाहता है, तामसी भक्त पर अपकार 'मेरा बैरी मर जाय'—इस भाव को चाहता है; परन्तु सुधा भक्ति का करनेवाला भक्त मुक्ति को भी नहीं चाहता। यह अनन्य भक्त कुछ नहीं चाहता। इसका न तो कोई शत्रु है और न कोई मित्र। इसको संसार की माया का संताप नहीं होता। यह भक्त केवल ईश्वर के दर्शन मात्र से ही परम सुख का अनुभव करता है।[2]"

---

[1] भाग—३।२६।७-१४

[2] माता भक्ति चारि प्रकार, सत रज तम गुण सुधासार।
भक्ति सात्विकी चाहति मुक्ति, रजोगुणी धन कुटुम्ब अनुरक्ति।
तमोगुनी चाहे या भाई मम बैरी क्यों ही मर जाई।
सुधा भक्ति मोक्ष को चाहे, मुक्तिहू की नहि अवगाहे।
मन क्रम बच मम सेवा करै, मन ते भव आशा परिहरै।
ऐसो भक्त सदा मोंहि प्यारो, इक छिन जाते रहों न न्यारो।
त्रितिन भक्त मेरे है जोई, जे माँगे तिहि देहुं मैं सोई।
भक्त अनन्य कछु नहिं माँगे, ताते मोहि सकुच अति लागे।
ऐसो भक्त जानि है जोई, जाके शत्रु मित्र नहिं दोई।
हरि माया सब जग संतापै, ताको माया मोह न व्यापै।
—सूरसागर, तृतीय स्कंध, ना० प्र० सभा

पुराणों में श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य किसी भी पुराण में इस प्रकार भक्तियों का उल्लेख नहीं किया गया है। पुराणों से पूर्व उपनिषदों में भी भक्ति का ऐसा विवेचन और विभाजन नहीं है। अतः हिन्दी कृष्ण-भक्ति काव्य पर यह प्रभाव सीधा श्रीमद्भागवत से ही आया है, इसमें सन्देह नहीं।

भक्ति के इन चार प्रकारों के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में भक्ति के नौ प्रकार और बताये गये हैं जिन्हें 'नवधा भक्ति' कहते हैं। उपनिषदों तथा अन्य पुराणों में नवधा-भक्ति का उल्लेख नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि सभी वैष्णव पुराणों में इन नवधा भक्तियों में से कुछ का महत्त्व अवश्य प्रतिपादित किया गया है। उपनिषदों में भी कहीं-कहीं नवधा भक्तियों में से श्रवण और नाम स्मरण आदि भक्तियों का महत्त्व बताया गया है, जिनका उल्लेख आगे किया गया है।

श्रीमद्भागवत में भक्ति के निम्नलिखित नौ प्रकार दिये गये हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, बन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन।[1] इन नव भक्तियों में श्रवण, कीर्तन और स्मरण, भगवान के नाम और लीला से सम्बन्ध रखनेवाली क्रियाएँ हैं। पादसेवन, अर्चन और बन्दन का भगवान के स्वरूप से लगाव है तथा दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन भावों का अर्पण भगवान को होता है।

सूरदास ने भी भागवत पुराण का गुरुसम्मत अनुकरण करते हुए इन भक्तियों का वर्णन किया है। किन्तु इन नवधा भक्तियों के साथ एक प्रेम लक्षणा भक्ति का भी उल्लेख, वल्लभमत के अनुसार किया है। सूर ने नवधा भक्तियों और दसवीं प्रेम लक्षणा भक्ति का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

श्रवण कीर्तन स्मरण पादरत, अरचन बन्दन दास।
सख्य और आत्मनिवेदन, प्रेम लक्षणा जास॥[2]

---

[1] श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं बन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नव लक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥
भागवत—७।५।२३-२४

[2] सूरसारावली, सूरसागर, वे० प्रे०, पृ० ५ तथा पृ० ६६

नन्ददास और परमानन्ददास ने भी इन भक्तियों का उल्लेख किया है। नन्ददास 'रास पंचाध्यायी' के माहात्म्य वर्णन में कहते हैं कि यह कृष्ण मेरे श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि भक्ति साधनों का फलस्वरूप सार है।

श्रवण कीर्तन सार, सार सुमिरिन को है पुनि।
ज्ञानसार हरिध्यान सार श्रुतिसार गुही गुनि।[1]

परमानन्द दास जी ने भी एक पद में इन भक्तियों का उल्लेख किया है :—

तात दसधा भक्ति भली।
जिन जिन कीनी तिनके भनते नेक न अनत चली।
सुमिरन कर प्रहलाद निर्भय भयो कमला करी पद सेव।
पृथु अर्चन सुफलक सुत बंदन, दास भाव हनुमन्त।
सखा भाव अर्जुन बस कीने श्री हरि श्री भगवन्त।
बलि आत्म समर्पन बस कीने श्री हरि श्री भगवन्त।
बलि आत्म समर्पण करि, करि राखे अपने पास।
अविरल प्रेम भयो गोपिन को बलि परमानन्द दास।[2]

'हरिऔध' जी ने 'प्रियप्रवास' में भी नवधा भक्तियों का उल्लेख किया है :—

श्रवण कीर्तन, वन्दन, दासता,
स्मरण, आत्म . निवेदन, अर्चना।
सहित सख्य तथा पद-सेवना,
निगदिता नवधा प्रभु भक्ति है।

हिन्दी के अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने नवधा भक्तियों का उल्लेख नहीं किया है। सभी कवि इनमें से किसी एक भक्ति भाव को लेकर चले हैं जिनका वर्णन आगे मिलेगा।

नवधा-भक्ति

श्रवण :—भगवान् के यश, महत्ता, गुण उनका पावन नाम तथा उनकी लीलाओं का श्रद्धापूर्वक सुनना और सुनाना श्रवण-भक्ति है। उपनिषदों

---

[1] नन्ददास ग्रन्थावली, रास पंचाध्यायी, ना० प्र० सभा, काशी।

[2] परमानंद दास पद संग्रह—पद सं० ३१४

के अन्तर्गत त्रिपाद्विभूतिमहानारायण उपनिषद् में भगवान् की कथा, श्रवण, का महत्त्व बतलाया गया है। एक स्थान पर लिखा है "जब सद्गुरु का कृपा-कटाक्ष होता है तब भगवान् की कथा सुनने एवं ध्यान आदि करने में श्रद्धा उत्पन्न होती है। इससे हृदय कमल की कर्णिका में परमात्मा आविर्भूत होते हैं।"[1] किन्तु जैसा विस्तृत वर्णन भागवत में है वैसा उपनिषद् में नहीं है।

पुराणों में श्रवण भक्ति का बहुत अधिक महत्त्व बताया गया है। भगवान् की अनेक लीला-वर्णनों के पश्चात् उनके श्रवण का महत्त्व बताया गया है। उदाहरण-स्वरूप श्रीमद्भागवत में पूतना उद्धार की कथा के पश्चात् लिखा है—"यह पूतना-मोक्ष भगवान् कृष्ण की अद्भुत बाल लीला है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करता है उसे भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम प्राप्त होता है।"[2]

पुराणों के अनुसार ही हिन्दी कृष्ण-भक्ति काव्य में भी श्रवण भक्ति का महत्त्व कहा गया है। सूर तथा नन्ददास ने कृष्ण की अनेक लीलाओं का चिंतन किया है। उन लीलाओं की समाप्ति में बहुधा उन्होंने उनके सुनने और सुनाने का महत्त्व कहा है। श्रवण भक्ति के प्रभाव के द्योतक बहुधा सूर के शब्द इस प्रकार के हुआ करते हैं :—

"जो यह लीला सुने सुनावै, सो हरि भक्ति पाइ सुख पावै।"[3]

और,

"जो पद स्तुति सुने सुनावै सूर सो ज्ञान भक्ति को पावै।"[4]

सूरदास की तरह नन्ददास ने भी अपने कई ग्रन्थों की समाप्ति में उन ग्रन्थों के विषय के श्रवण का माहात्म्य तथा अपनी श्रवण शक्ति का वर्णन किया है। रास पंचाध्यायी की समाप्ति में वे श्रवण भक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं :—

---

[1] त्रिपाद्विभूतिमहानारायण उपनिषद्, उत्तर काण्ड ५।८

[2] य एतत् पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम्।
शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविंदे लभते रतिम्॥ —भाग० १०।६।४४

[3] सूरसागर, नवम स्कंध, ना० प्र० सभा, काशी।

[4] सूरसागर, दशम स्कंध, ना० प्र० स०, काशी।

जो यह लीला गावै चित दै सुने सुनावै।
प्रेम भक्ति सो पावै अरु सबके जिय भावै॥
श्रवण कीर्तन सार-सार सुमिरन को है पुनि।
ग्यान सार हरि ध्यान सार श्रुतिसार गुथी गुनि॥[1]

परमानंददास भी श्रवण भक्ति के महत्त्व को बतलाते हुए कहते हैं कि "जिन लोगों ने कृष्ण कथा, उनके नाम का गुणगान और उनका श्रवण नहीं किया वे व्यर्थ के लिए जीवित हैं। जो इस लोक और परलोक में सुख चाहते हैं उन्हें मनुष्य शरीर पाकर श्याम सुन्दर की कथा का श्रवण करना चाहिए।"

मंगल माधो नाँउ उच्चार।
मंगल बदन कमल कर मंगल, मंगल जन की सदा संभार।
देखत मंगल पूजत मंगल, गावत मंगल चरित उदार॥
मंगल श्रवण, कथा पुनि मंगल मंगल तन वसुदेव पुकार।
गोकुल मंगल मधुबन मंगल, मंगल रचित वृन्दावन चन्द॥
मंगल कर्म गोवर्द्धन धारी, मंगल भेस जसोदा नन्द।

× × ×

मंगल कमल चरन सुर वंदित। मंगल कीरति जगत निवास।
मंगल ध्यान विचारत अनुदित, मंगल मनि परमा-नन्ददास॥[2]

मीरा के काव्य में भी श्रवण भक्ति की महिमा अनेक स्थलों पर मिलती है। एक पद में वे कहती हैं :—

राम नाम रस पीजै मनुआ, राम नाम रस पीजै।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित हरि चर्चा सुन लीजै॥[3]

रसखान और रहीम के काव्य में नवधाभक्तियों में से किसी एक का भी महत्त्व वर्णित नहीं मिलता। नरोत्तमदास और घनानंद के काव्य में श्रवण भक्ति का महत्त्व वर्णित नहीं है।

---

[1] नंददास ग्रंथावली 'रासे पंचाध्यायी' पृ० २४, ना० प्र० सभा, काशी।
[2] परमानंददास पद संग्रह, पद सं० ३०५
[3] मीराबाई की पदावली, पद सं० १६६

आधुनिक काल के कृष्ण कवि "हरिऔध" जी के प्रियप्रवास में नवधा-भक्तियों का उल्लेख हुआ है। सोलहवें सर्ग में श्रवण-भक्ति का उल्लेख इस प्रकार हुआ है :—

> जी से सारा कथन सुनना आर्त-उत्पीड़ितों का।
> रोगी प्रानी व्यथित जन का लोक-उन्नायकों का।
> सच्छास्त्रों का श्रवण सुनना वाक्य सत्संगियों का।
> मानी जाती श्रवण अभिधा-भक्ति है सज्जनों में।[1]

कीर्तन :—भगवान् के नाम, गुण, माहात्म्य और लीला आदि का वर्णन गान तथा पाठ कीर्तन कहलाता है। श्रीमद्भागवत में भी कीर्तन भक्ति की बहुत महिमा कही गई है। भागवतकार कहता है—"दोष निधि कलियुग में एक ही महान् गुण है कि भगवान् कृष्ण के कीर्तन से मनुष्य लौकिक आसक्ति से छूट जाता है।"[2]

तथा जिसकी जिह्वा पर भगवान् का पवित्र नाम रहता है। वह चांडाल भी उच्च है। क्योंकि जो भगवान् के नाम को ग्रहण करते हैं। उन्होंने तप, यज्ञ तीर्थ स्नान आदि सब कुछ कर लिया।[3]

विष्णु पुराण में कीर्तन भक्ति का महत्त्व बतलाते हुए परासर जी कहते हैं—जिनमें (भगवान्) चित लगाने वाला कभी नरक में नहीं जा सकता। जिनके स्मरण में स्वर्ग भी विघ्न रूप है। जिनमें चित लग जाने पर ब्रह्मलोक भी अति तुच्छ प्रतीत होता है। तथा जो अव्यय प्रभु निर्मल चित्तवाले पुरुषों के

---

[1] प्रियप्रवास—सर्ग १६, हरिऔध।

[2] कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥—भाग० १२।३।५१

[3] अहोबत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥
—भाग० ३।३३।७

हृदय में स्थित होकर उन्हें मोक्ष देते है, उन्हीं अच्युत का कीर्तन करने से यदि पाप विलीन हो जाते हैं तो उसमें आश्चर्य की क्या बात।"[१]

एक अन्य स्थान पर विष्णु पुराण में भगवान् के नाम कीर्तन का महत्त्व बतलाते हुए लिखा है—"जो फल सत्ययुग में ध्यान, त्रेता युग में यज्ञ और द्वापर युग में देवार्चन करने से प्राप्त होता है वह कलियुग में श्री कृष्णचन्द्र का नाम-कीर्तन करने से मिल जाता है।"[२]

बृहन्नारदीय पुराण में भी नाम-कीर्तन का महत्त्व बतलाते हुए लिखा है—"बिना जाने भी जो उनका (भगवान् का) नाम ले लेता है, वह पापों से छूट कर श्रेष्ठ पद को प्राप्त होता है।"[३]

सूर आदि अष्टछाप भक्तों का सम्पूर्ण काव्य भक्ति के कीर्तन, साधन और उसका एक बड़ा अंश प्रेम भक्ति के 'पद' रूप में ही लिखा गया था। इसलिये उनकी कीर्तन-भक्ति का नमूना उनका सम्पूर्ण काव्य ही है। एक पद में सूरदास ने स्वयं कहा है कि मैं सगुण ईश्वर की लीला के पद गाता हूँ :—

अविगत गति कछु कहत न आवै।

× × ×

सब विधि अगम विचारै तातै सूर सगुन-लीला पद गावै।[४]

सूर ने अनेक पदों में कीर्तन भक्ति की महिमा गाई है। दो एक पद देखिए :—

---

[१] यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने।
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः॥
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः।
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं यत्राच्युते कीर्तिते॥
—विष्णु पु० ६।८।५६

[२] ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
—विष्णु पु० ६।२।१७

[३] बृहन्नारदीय पु० १।५१

[४] सूरसागर, प्रथम स्कंध, पृ० १, पद सं० २, ना० प्र० सभा, काशी।

जो सुख होत गुपालहिं गाए।
सो नहिं होत जप तप के कीने कोटिक तीरथ न्हाए।
दिये लेत नहिं चारि पदारथ चरण कमल चित नाए।
तीन लोक तृण सम करि लेखत नंद नंदन उर लाये।
बंशीवट वृन्दावन यमुना तजि बैकुण्ठ को जाये।
सूरदास हरि को सुमिरन करि बहुरि न भव चलि आये।[1]

तथा,

"दिन दश लेइ गोविन्द गाइ।"[2]

अन्य हिन्दी कृष्ण भक्ति कवियों के काव्य में कीर्तन भक्ति की महिमा कदाचित् नहीं मिलती। 'हरिऔध' जी के प्रियप्रवास में कीर्तन-भक्ति की महिमा कही गई है :—

सोयें, जागें, तम पतित की दृष्टि में ज्योति आवे।
भूले आवें सु-पथ पर औ ज्ञान-उन्मेष होवे।
ऐसे गाना कथन करना दिव्य-न्यारे गुणों का।
है प्यारी भक्ति प्रभुवर की कीर्तनोपाधिवाली।[3]

स्मरण—भगवान के नाम, उसके गुण, माहात्म्य, उसकी सर्व व्यापकता, लीला आदि का हमेशा ध्यान रखना तथा उसी की याद में लीन रहना स्मरण-भक्ति है।

उपनिषदों में स्मरण-भक्ति का उतना स्पष्ट और विशद वर्णन तो नहीं है जितना श्रीमद्भागवत में है; किन्तु कहीं-कहीं इसका महत्त्व स्पष्ट शब्दों में बतलाया गया है। गोपालोत्तरतापनी उपनिषद् में एक स्थान पर श्रीकृष्ण ब्रह्माजी से कहते हैं—"इस प्रकार जो नित्य मेरा ध्यान करता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है।"[4] एक अन्य स्थान पर ध्यान, नाम और भजन का महत्त्व बताया गया

---

[1] सूरसागर, प्रथम स्कंध, पद सं० ३४६, ना० प्र० सभा, काशी। [2] सूर-सागर, प्रथमस्कंध, पद सं० ३१५, ना० प्र० सभा। [3] प्रिय प्रवास, सर्ग १६, —हरिऔध [4] गोपालोत्तरतापनी उपनिषद्, प्रथम उपनिषद्, श्लो० ७४

है—"इस प्रकार उस श्रीकृष्ण नाम से प्रसिद्ध परब्रह्म का जो ध्यान करता है, तप आदि के द्वारा उनके नामामृत का रसास्वादन करता है तथा उनके भजन में लगा रहता है, वह अमृतस्वरूप होता है।[१]" उपनिषदों में ऐसे वर्णन हैं अवश्य किन्तु पुराणों में और विशेषकर वैष्णव-पुराणों में इन भक्तियों का महत्त्व अधिक प्रभावशाली है। श्रीमद्भागवत में स्मरण भक्ति का प्रलोभन तथा उसकी महिमा का वर्णन अनेक स्थानों पर हुआ है तथा नाम-स्मरण का बहुत महत्त्व बताया गया है। एकादश स्कंध में कृष्ण उद्धव से कहते हैं—"जो कोई विषय का चिंतन किया करता है उसका मन विषय कर्मों में लीन रहता है और जो व्यक्ति निरन्तर मेरा स्मरण करता है उसका मन मुझमें ही लीन हो जाता है।[२]"

विष्णु पुराण में भी स्मरण-भक्ति का बहुत अधिक महत्त्व बताया गया है। एक स्थान पर लिखा है—"श्री विष्णु भगवान का अहर्निशि स्मरण करने से सम्पूर्ण पाप क्षीण हो जाने के कारण मनुष्य फिर नरक में नहीं जाता।"[३] एक अन्य स्थान पर लिखा है—"प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रि में अथवा मध्याह्न में, किसी भी समय श्री नारायण का स्मरण करने से पुरुष के समस्त पाप तत्काल क्षीण हो जाते हैं। श्री विष्णु भगवान के स्मरण से समस्त पाप राशि के भस्म हो जाने से पुरुष मोक्षपद प्राप्त कर लेता है, स्वर्ग लाभ तो उसके लिए विघ्न-स्वरूप माना जाता है।[४]"

विष्णु पुराण में एक अन्य स्थान पर स्मरण-भक्ति का महत्त्व बतलाते हुए लिखा है—"यज्ञवेत्ता कर्मनिष्ठ लोग यज्ञों द्वारा जिनका यज्ञेश्वर रूप से भजन करते हैं, ज्ञानी जन जिनका बलस्वरूप से ध्यान करते हैं, जिनका स्मरण करने से

---

[१] गोपालोत्तरतापनी उपनिषद्, प्रथम उपनिषद्, श्लोक० १।१६

[२] विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते। —भाग० ११।१४।२७

[३] तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन्पुरुषो मुने।
न याति नरकं मर्त्यः संक्षीणाखिलपातकः। —विष्णु पु० २।६।४३

[४] प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्नादिषु संस्मरन्।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयान्नरः ॥३९॥
विष्णु संस्मरणात्क्षीणसमस्त क्लेशसञ्चयः।
मुक्तिं प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य विघ्नोऽनुमीयते ॥४०॥
—विष्णु पु० २।६।३९, ४०

पुराण न जन्मता है, न मरता है, न बढ़ता है और न क्षीण ही होता है तथा जो न सत् (कारण) है और न असत् (कार्य) ही है उन श्री हरि के अतिरिक्त और क्या सुना जाय।"[1]

बृहन्नारदीय पुराण में भी भगवान के नाम-स्मरण का बहुत अधिक महत्त्व वर्णित है। एक स्थान पर लिखा है—"संसार रूप घोर वन के वनाग्नि विष्णु जी ही हैं, जो स्मरणकर्त्ता के सब पापों को शीघ्र नष्ट करते हैं[2]।" एक अन्य स्थान पर लिखा है—"जो जन वैराग्य में परायण विष्णु जी का निरंतर स्मरण करते हैं वे फिर जन्म नहीं लेते।"[3] और "जो विष्णु जी का ध्यान तथा स्मरण करते, पूजा व नमस्कार करते हैं वे संसार को पार कर जाते हैं।"[4]

पुराणों के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में भी स्मरण भक्ति का महत्त्व पर्याप्त दिखाया गया है। हरि-स्मरण भक्ति के विषय में सूरदास कहते हैं—"सब को हरि भगवान का स्मरण करना चाहिए। हरि स्मरण से सब सुख मिलते हैं। श्रुति और स्मृति सबका यह मत है कि भगवान के चरणों में चित्त लगाओ। हरि स्मरण के बिना मुक्ति नहीं है। दिन-रात उसी का स्मरण करो। मेरे विचार से भी सौ बातों की एक बात यह है कि हरि का स्मरण करो।

हरि हरि हरि सुमिरो सब कोई, हरि हरि सुमिरत सब सुख होई।
हरि समान द्वितीय नहिं कोई, हरि चरणनि राखो चित गोई।
श्रुति स्मृति सब देखो जोई, हरि सुमिरत होई सो होई।
हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोई, बिन हरि सुमिरन मुक्ति न होई।

× × ×

हरि बिनु सुख नहीं इहं न वहाँ, हरि हरि हरि सुमिरो जहँ तहाँ।

---

[1] यज्ञैर्यज्ञविदो यजन्ति सततं यज्ञेश्वरं कर्मिणो,
यं वै ब्रह्ममयं परावरमयं ध्यायन्ति च ज्ञानिनः।
यं सञ्चिन्त्य न जायते न म्रियते नो वर्द्धते हीयते,
नैवासन्न च सद्भवत्यति ततः किं वा हरेः श्रूयताम्॥५७॥

—विष्णु पु० ६।८।५७

[2] बृहन्नारदीय पु० १।५२ [3] बृहन्नारदीय पु० ३७।११४ [4] बृहन्नारदीय पु० ३२।४५

हरि हरि हरि सुमिरो दिन राति, नातर जन्म अकारथ जात।
सौ बातन की एकै बात, सूर सुमिर हरि हरि दिन रात।[1]

स्मरण भक्ति का उपदेश तथा उस समय का माहात्म्य वर्णन करने वाले इसी प्रकार के अनेक पद सूरदास जी ने लिखे हैं। भगवान् के ध्यान और उनके नाम स्मरण का प्रबोधन देनेवाले भी बहुत से पद उन्होंने कहे हैं।

परमानन्ददास ने भी अपनी स्मरण-भक्ति का परिचय देते हुए कहा है कि मैं सदैव यशोदा नन्दन का ही चिंतन करता हूँ—

जहिं जहिं चरन कमल माधो के तहीं तहीं मन मोर।

× × ×

चिंतन करौं जसोदा नन्दन मुदित सांझ अरु भोर।

× × ×

परमानन्द दास की जीवनि गोपिनि पट झकझोर।[2]

उनकी स्मरण-भक्ति और निरन्तर कृष्ण नाम, लीला और भगवान के स्वरूप के ध्यान को प्रकट करनेवाला उनका एक पद वल्लभ-सम्प्रदाय में बहुत प्रसिद्ध है। इस पद में कवि ने कहा है—"हे हरि, मुझे तेरी लीला की याद आती है। तेरी मोहिनी मूर्ति मेरे मन के भीतर ही भीतर, अनेक चित्र उपस्थित कर रही है। तुम्हीं बताओ जिसको तुम एक बार अपना संयोग दे देते हो वह तुम्हारी बंक अवलोकन और मृदु मुस्कान को कैसे भूल सकता है? तुम्हारी याद कभी तुम्हारे प्रगाढ़ आलिंगन का सुख देती है तो कभी वह तुम्हारे मधुर स्वर में मिलकर गाने लगती है। जब तुम छिप जाते हो तो याद में मेरी चेतना "कहाँ हो, कहाँ हो" कहकर इधर-उधर दौड़ने लगती है। कभी मेरी अन्तरात्मा नेत्र

---

[1] सूरसागर, द्वितीय स्कंध, पद सं० ४६२३, ना० प्र० सभा, काशी।
[2] परमानन्द दास, पद संग्रह, पद सं० २६६

मूँदकर तुम्हें सर्वस्व अर्पण करती हुई वनमाला पहनाती है। इसी प्रकार मैं श्याम के ध्यान में विरह की घड़ियों को बिता रही हूँ।"[1]

आधुनिक काल के कवि श्री "हरिऔध" जी ने अपने प्रियप्रवास में स्मरण-भक्ति के विषय में इस प्रकार कहा है—

कंगालों की विवश विधना औ अनाथाश्रितों की।
उद्विग्नों की सुरति करना औ उन्हें त्राण देना।
सत्कार्यों का पर-हृदय की पीर का ध्यान आना।
मानी जाती स्मरण अभिधा भक्ति है भावुकों में।[2]

पाद सेवन—श्रीमद्भागवत में पाद सेवा का बहुत महत्त्व बताया गया है। एक स्थान पर लिखा है—"जो श्रेष्ठ सज्जन पुण्य यश वाले भगवान के नौका रूप चरणों का आश्रय लेते हैं, उनके लिए यह संसार गोवत्सपद के चिह्न के समान है। वे पद-पद में परम पद पाते हैं। इसी से उन्हें कभी विपत्तियों का सामना नहीं करना पड़ता।[3]" भागवत पुराण में एक अन्य स्थान पर गरुड़ जी श्रीकृष्ण भगवान से कहते हैं—"आज मेरा शरीर धारण करना सफल हुआ। आज मुझे सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त हो गये। क्योंकि आज मुझे आपकी चरणों की सेवा का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। भगवन्, जिन्हें भी आपके चरणों की सेवा

---

[1] हरि तेरी लीला कौ सुधि आवति।
कमलनैन मन मोहनी मुरति मन-मन चित्र बनावति।
एक बार जाय मिलत मयाकरि सो कैसे बिसरावति।
मृदु मुसकानि बंक अवलोकनि चली मनोहर भावति।
कबहुक निबड़ तिमर आलिंगनि कबहुंक पिक स्वर गावति।
कबहुंक संभ्रम क्वासि-क्वासि करि संगहीन उठि धावति।
कबहुंक नयन मूंदि अन्तरगति बनमाला पहिरावति।
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे बिरह गंवावति।
—परमानन्ददास पद संग्रह, पद सं० २५४

[2] प्रियप्रवास—सर्ग १६

[3] भाग० १०।१०।५८

का शुभ अवसर मिला, वे भवसागर से पार हो गये।[१]" कंस के कारागार में शंकर, ब्रह्मा आदि देवता भगवान् कृष्ण की पद-वन्दना करते हुए कहते हैं—"हे कमलनयन, जो लोग आपके चरण कमलों की शरण नहीं लेते तथा आपके प्रति भक्ति भाव से रहित होने के कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है वे अपने को झूठ-मूठ मुक्त मानते हैं। वास्तव में तो वे बद्ध ही हैं। वे यदि बड़ी तपस्या और साधना का कष्ट उठाकर किसी प्रकार ऊँचे-से-ऊँचे पद पर भी पहुँच जायँ, तो भी वहाँ से नीचे गिर जाते हैं।"[२]

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में पाद-सेवन का महत्त्व बहुत अधिक बताया गया है जिसका प्रभाव हिन्दी के कृष्ण भक्ति काव्य पर पर्याप्त पड़ा है। सूरसागर दशम स्कंध में सूर ने एक पद में भगवान् के चरण सेवक श्वपच को गोपाल विमुख ब्राह्मण से अधिक बड़ा और भगवान् का प्रिय बताया है—

सोइ भलो जो रामहिं गावै।
श्वपच प्रसन्न होइ बड़ सेवक, बिनु गोपाल द्विजन्य न भावै।

और 'भज मन नन्द नन्दन चरन' वाले पद में सूर ने उन चरणों का वर्णन किया है जिन चरणों की पाद सेवा वे अपने मन मन्दिर में किया करते थे।

पाद सेवा की महत्ता बतलाते हुए परमानन्द दास जी कहते हैं—"मदन गोपाल की सेवा मुक्ति से भी अधिक मीठी है। भक्ति के रसिक उपासक इस सेवा के रस को जानते हैं। उन्होंने भगवान् की चरण सेवा के सामने सब धर्मों को बहा दिया और वे श्रवण, कथन, स्मरण तथा ईश्वर गुणगान का साधन करते रहते हैं। उन्होंने इस रस को वेद पुराणों को निचोड़कर पिया है और इससे परमानन्द पाया है। इन रसिक भक्तों के दृष्टान्त से प्रेरित होकर

---

[१] अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो।
त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः॥ —भाग० १०।२८।५

[२] येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥
—भाग० १०।२।३२

परमानन्ददास ने भी भगवान के चरणों में तथा उनकी लीला में प्रेम बढ़ाया है।[1]"

परमानन्ददास ने कई पदों में भगवान के पाद-सेवन साधन के भाव प्रकट करते हुए यही कामना की है कि कृष्ण के चरण-कमलों में निरन्तर उनका अनुराग रहे और संतों का सत्संग उन्हें मिले।[2]

मीरा की भक्ति यद्यपि मधुर भाव की है फिर भी उनमें पादसेवा के पद भी मिलते हैं—एक पद बहुत ही प्रसिद्ध है—

मन रे परस हरि के चरन।
सुभग शीतल कंवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रहलाद परसे, इंद्र पदवी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरण।
जिण चरण ब्रह्मांड मेटयो, नखसिखां सिरी धरण।
जिण चरण प्रभु परस लीने, तरी गौतम धरण।
जिण चरण कालीनाग नाथ्यो, गोपलीला करण।
जिण चरण गोबरधन धारयो, इन्द्र पद को गर्व हरण।
दासि मीरा लाल गिरधर, अगम तारण तरण।[3]

---

[1] सेवा मदन गोपाल की मुक्ति हू तै मीठी।
जाने रसिक उपासिका शुक मुख निज दीठी।
चरण कमल रज मन बसी सब धर्म बहाए।
श्रवण, कथन, चिंतन बढ़यौ पावन गुन गाए।
वेद पुरान निरूपि के रस लियो निचोइ।
गान करत आनंद भयौ डारयो सब छोड़।
परमानंद विचारि के परमारथ साध्यो।
राम कृष्ण पद प्रेम बाढ़यौ लीला रस बाध्यौ।

[2] यह मागौं संकर्षन वीर—परमानन्ददास पद संग्रह, पद सं० ३१५
चरण कमल अनुराग निरंतर भावत है संतन की भीर।
संग देहु तौ हरि भक्तन कौ, बास देहु तो जमुना तीर।
—परमानंददास, पद संग्रह प० सं० २८३

[3] मीराबाई की पदावली—पद सं० १

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी एक स्थान पर पाद-सेवा का महत्त्व बताते हुए कहते हैं कि जिन्होंने भगवान् के चरण नहीं स्पर्श किये वे कितनी ही साधना करने पर भी भवसागर में बह जाते हैं—

जिन नहिं श्री वल्लभ पद गहे।
ते भवसिंधु धार में साधन करत करत हूँ बहे।[1]

'हरिऔध' जी के प्रिय-प्रवास में पाद-सेवा-भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की गई है :—

जो प्राणि पुंज निज कर्म-निपीड़नो से।
नीचे समाज-वपु के पग सा पड़ा है।
देना उसे शरण मान प्रयत्न द्वारा।
है भक्ति लोक पति की पद सेवनाख्या।[2]

'कृष्णायन' में भी कवि भगवान् की पादसेवा में रत, कहता है :—

गत मन मोह, प्रीति नव जागी।
पदतल परेउ भक्त अनुरागी॥[3]

अर्चना :—श्रद्धा और आदर के साथ भगवान् के स्वरूप की पूजा अर्चन-भक्ति कही जाती है। विष्णुपुराण में अर्चन-भक्ति की महिमा बतलाते हुए लिखा है—"जिसका चित्त जप, होम और अर्चना आदि करते हुए निरन्तर भगवान् वासुदेव में लगा रहता है उसके लिए इन्द्र पद आदि फल तो अन्तराय (विघ्न) हैं।[4]"

हिन्दी के भी कतिपय कृष्णभक्त कवियों ने अर्चन-भक्ति का महत्त्व दिखलाया है। सूरदास ने अर्चन-भक्ति का महत्त्व सूरसागर के नवम स्कंध में अम्बरीष की कथा में अम्बरीष की अर्चन-भक्ति का उल्लेख किया है। नन्ददास ने भी "दशम स्कंध भाषा" में जहाँ वरुण से कृष्ण की पूजा कराई है और 'रूपमंजरी' में रूपमंजरी के हृदय मंदिर के देव कृष्ण की इन्दुमती

---

[1] भारतेंदु ग्रंथावली, दूसरा खंड—विनय प्रेम पचासा, ना० प्र०सभा।
[2] प्रियप्रवास, सर्ग १६। [3] कृष्णायन, मथुरा कांड, पृ० १२४
[4] वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु।
तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम्॥ —विष्णु पु० २।६।४१

द्वारा पूजा का उल्लेख किया है, वहाँ उन्होंने अर्चन-भक्ति का ही रूप खड़ा किया है।

परमानन्ददास गोपी रूप में अपने इष्टदेव को छाक (कलेऊ) अर्पण करने के लिए उनका आह्वान करते हैं और कहते हैं—"हे मोहन, मैं तुम्हारी छाक लेकर आई हूँ, तुम्हें बुलाते-बुलाते हार गई, तुम कहाँ हो ? मैं राह भूल गई थी, बड़ी कठिनाई से तुम्हें खोज पाई और पूछते-पूछते यहाँ तक आ पाई हूँ। उसी समय तुम्हारी वंशी का मधुर नाद मेरे कानों में पड़ा। देखो, मेरे अंगों में पसीना आ गया है, और मेरा अंचल भीज गया है।

> तुमको टेरि-टेरि मैं हारी।
> कहाँ रहे अब लों मन मोहन ले हो न छाक तुम्हारी।
> भूलि परी आवत मारग में क्यों हू न पेड़ो पायो।
> बूझत-बूझत यहाँ लो आई, तब तुम बेनु बजायो।
> देखो मेरे अंग पसीना उसको अंचल भीनों।
> परमानन्द प्रभु प्रीति जानि के धाय अलिंगन कीनों।[1]

इस गोपी वन्दना में परमानन्द का ही प्रेमपूर्ण हृदय मानसिक जगत् में अन्योक्ति रूप से अपने इष्ट को अर्चन-भक्ति की भेंट दे रहा है। भक्त की इस अर्चना की तीव्रता ने अंत में भगवान् को खींच ही लिया। वे दौड़े हुए आये और भक्त की पूजा स्वीकार कर उन्होंने उसको हृदय से लगा लिया।

अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने अर्चन-भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की है :—

> संत्रस्तों को शरण मधुरा शांति संतापितों को।
> निर्बोधों को सुमति विविधा औषधी पीड़ितों को॥
> निर्बोधों को सुमति जन को अन्न भूखे नरों को।
> सर्वात्मा भक्ति अति रुचिरा अर्चना संज्ञका है॥[2]

वन्दन :—श्रीमद्भागवत में कहा गया है :—"भक्त लोग जब अपने इष्ट के गुण और नाम का कीर्तन करते हैं तब उनका हृदय प्रेम रस में मग्न हो

---

[1] परमानंद दास पद संग्रह, प० सं० ४२७

[2] प्रिय-प्रवास, सर्ग १६।

जाता है। वे विवश होकर उन्मत्तों की भाँति कभी रोते हैं, कभी हँसते हैं, कभी नाम का उच्चारण करते हुए जाते हैं और नाचने लगते हैं। वे आकाश, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, चराचर प्राणी, दशों दिशा, वृक्ष आदि सबको विराट् पुरुष हरि का शरीर मान कर उनको प्रणाम करते हैं और हरि से भिन्न किसी भी प्राणी अथवा वस्तु को नहीं देखते।"[1]

विष्णु पुराण में भी हरि वन्दना का महत्त्व स्थान-स्थान पर वर्णित है। एक स्थान पर लिखा है कि जो व्यक्ति श्री हरि की वन्दना करते हैं उन्हें यमदूत भी नहीं कष्ट दे सकते। यमराज अपने अनुचर से कहते हैं—"जो भगवान् के सुर-वर वन्दित चरण कमलों की परमार्थ बुद्धि से बन्दना करता है, घृताहुति से प्रज्वलित अग्नि के समान समस्त पाप बन्धन से मुक्त हुए उस पुरुष को तुम दूर ही से छोड़कर निकल जाना।"[2]

हिन्दी के भी कुछ कृष्ण भक्त कवियों ने वन्दन भक्ति की महिमा का वर्णन किया है। सूर के काव्य का भी एक अंश उनकी वन्दन-भक्ति के भाव को प्रकट करता है। विनय, प्रार्थना तथा स्तुति भावों को प्रकट करने वाले इनके पद-वन्दन भक्ति के ही उदाहरण कहे जायँगे। सूरसागर के आरंभ में सूरदास जी ने 'हरि' भगवान् की कृपा का आवाहन करते हुए निम्नलिखित पद में उनके चरणों की वन्दना की है :—

> चरण कमल बन्दों हरि राई।
> जाकी कृपा पंगु गिरिलंघै अंधे को सब कुछ दरसाई।
> बहिरो सुने मूक पुनि बोले रंक चले शिर छत्र धराई।
> सूरदास स्वामी करुणामय बारबार बन्दों तेहि पाई।

---

[1] एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥४०॥
खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत् किंचभूतं प्रणमेदनन्यः॥४१॥
—भाग० ११।२।४०, ४१

[2] हरियमखरार्चिताङ्घ्रिपद्मं प्रणमति यः परमार्थतो हि मर्त्यः।
तमपगतसमस्तपापबन्धं व्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम्॥१८॥
—विष्णु पु०, ३।७।१८

नन्ददास ने भी अपने कई ग्रन्थों को कृष्ण की वन्दना तथा स्तुति के साथ आरम्भ किया है। रस मंजरी, मान मंजरी, अनेकार्थ मंजरी, रूपमंजरी, सिद्धांत पंचाध्यायी, तथा दशम स्कंध भाषा ग्रन्थों में कवि ने प्रथम अपने इष्ट श्रीकृष्ण की वन्दना की है।

परमानन्ददास भी निम्नलिखित पद में अपनी रचना के मंगलाचरण के रूप में ईश्वर की वंदना करते हैं :—

चरन कमल बन्दौ जगदीस जे गोधन संग धाए,
जे पद कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिन उर लाए।

× × ×

जे पद कमल शंभु चतुरानन हृदै कमल अंतर राषे।
जे पद कमल रमा उर भूषन वेद भागवत मुनि भाषे।
जे पद कमल लोक त्रै पावन बलिराजा के पीठ धरे।
सो पद कमल दास परमानन्द गावत प्रेम पीयूष भरे।[1]

मीरा ने भी अपने कई पदों में श्री हरि की वन्दना की है :—

हमारो प्रणाम बाँके बिहारी को।
मोर मुकुट माथे तिलक बिराजै कुंडल अलकाकारी को।
अधर मधुर पर वंशी बजावै, रीझ रिझावै राधा प्यारी को।
यह छवि देख मगन भई मीरा मोहन गिरिवर धारी को।[2]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी वन्दना के अनेक पद रचे हैं। पौराणिक आख्यानों के दृष्टांत देकर कवि कहता है कि वह भी अब श्री भगवान् के चरणों में आ पड़ा है और वन्दना करता है कि जैसे अनेकों को तारा है वैसे ही मुझे भी तारिए :—

अब तो आय परयो चरनन में।
जैसे हो तैसे तुमरोई राखोइ गे सरनन में॥
गनिका गीध अभीर अजामिल खस खस जवनादिक तारे।
औरहु जो पापी बहुतेरे भये पाप तें न्यारे॥

---

[1] परमानंददास पद संग्रह, पद सं० १। [2] मीराबाई की पदावली, पद सं० २

सुत बध हेत पूतना आई सब विधि अघ ते पीनी।
जो गति जननी हूँ को दुर्लभ सो गति तोको दीनी॥
औरो पतित अनेक उधारे तिनमें मोहु को जान।
तुम ही एक आसरो मेरे यह निहचै करि जान॥
बुरो भलो तुमरोई कहावत याकी राखौ लाज।
'हरीचन्द' ब्रजचन्द पियारे मत छाँड़हु महाराज॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रिय-प्रवास में वन्दन-भक्ति का उल्लेख इस प्रकार करते हैं :—

विद्वानों के स्वगुरु-जन के देश के प्रेमियों के।
ज्ञानी दानी सु-चरित गुणी सर्व तेजस्वियों के।
आत्मोत्सर्गी विबुध जन के देव सद्विग्रहों के।
आगे होना नमित प्रभु की भक्ति है वन्दनाख्या।[1]

आत्मनिवेदन :—भक्त भगवान् के सामने अपना हृदय खोल कर रख देता है। वह जानता है कि प्रभु से कोई बात छिपाई नहीं जा सकती। वेद के शब्दों में गुप्त से गुप्त स्थान में होनेवाली गुह्य से गुह्य मन्त्रणा तक को सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा प्रभु जान लेते हैं।[2] आत्मनिवेदन में एक दृष्टि और रहती है। जो सत्ता भक्त से दूर है, उससे वह कैसे आत्मनिवेदन करे? और प्रभु ही निकट हैं, अतः भक्त जब चाहे और जहाँ चाहे उसके आगे आत्मनिवेदन कर सकता है। श्रीमद्भागवत में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ भक्त भगवान् के सामने आत्मनिवेदन करता है।[3] सूर के भी अनेक पदों में आत्म-निवेदन का भाव अभिव्यंजित हो रहा है। नीचे लिखे पद पर विचार कीजियेः—

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय को माल॥
महामोह के नूपुर बाजत निन्दा सब्द रसाल।
भरम भर्यौ मन भयौ पखावज, चलत कुसंगति चाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहीं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नन्दलाल॥[4]

---

[1] प्रिय-प्रवास, सर्ग १६। [2] अथर्ववेद ४।१६।२। [3] भाग ७।६, ८।३
[4] सूरसागर, पद सं० १५३, ना० प्र० सभा, काशी।

नवधा भक्तियों में से दास्य और सख्य भक्तियों का वर्णन आगे "भक्ति के विविध भाव" के अन्तर्गत दिया गया है।

भक्ति भाव की रसानुभू—तिभक्ति रस की निष्पत्ति किस प्रकार और कहाँ होती है, यह विचारणीय है। श्री रूपगोस्वामी जी ने "हरि-भक्ति-रसामृत सिंधु" में भक्ति-रस का विवेचन किया है। रूपगोस्वामी जी ने भक्ति-रस दो प्रकार का बताया है (१) मुख्य भक्ति रस तथा (२) गौण-भक्ति रस। मुख्य भक्ति रस के अन्तर्गत उन्होंने पाँच रस—शांत, प्रीति, प्रेय, वत्सल तथा मधुर—बताए हैं तथा गौण भक्ति-रस के उन्होंने सात भेद—हास्य, अद्‍भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स—किये हैं।[१]

भक्ति रस की निष्पत्ति के विषय में श्री रूपगोस्वामी कहते हैं—'विभाव, अनुभाव आदि की परिपुष्टि से भक्ति परम रस रूपा हो जाती है। विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव तथा व्यभिचारी भावों से भक्तों के हृदय में स्वाद्यत्व को प्राप्त कराई गई जो कृष्ण रति-रूप स्थायी भाव है, वह भक्ति में परिणत होता है। जिनके हृदय में पूर्वजन्म की अथवा इस जन्म की सद्‍भक्ति की वासना या संस्कार हैं, उन्हीं के हृदय में भक्ति-रस का आस्वाद होता है। जिनके पाप-दोष भक्ति से दूर हो गए हैं, जिनका चित्त प्रसन्न और उज्ज्वल है, जो भागवत में रत हैं, जो रसिकों के सत्संग में रंजित हैं, जो जीवनीभूत गोविंद के चरणों की भक्ति को ही अपनी सुख-श्री मानते हैं और जो प्रेम के अंतरंग कृत्यों को करने-

---

[१] भवेद्‍भक्तिरसोऽप्येष मुख्यगौणतया द्विधा।
पंचधाऽपि रतेरैक्यान्मुख्यस्त्वेक इहोदितः ॥६५॥
सप्तधाऽत्र तथा गौण इति भक्तिरसोऽष्टधा।
मुख्यस्तु पंचधा शांतः प्रीतिः प्रेयांश्च वत्सलः ॥६६॥
मधुरश्चैत्यमी ज्ञेया यथापूर्वमनुत्तमाः।
हास्यौऽद्‍भुतस्तथा वीरः करुणो रौद्र इत्यपि ॥६७॥
भयानकः स बीभत्स इति गौणश्च सप्तधा।
एवं भक्तिरसो भेदाद्‍द्वयोर्द्वादशधोच्यते ॥६८॥

—हरिभक्ति-रसामृत-सिंधु, दक्षिण विभाग, लहरी ५, पृ० ३०८, ३-६

वाले भक्त हैं, उनके हृदय में जो आनन्दरूपा रति स्थिर होती है, वही दोनों प्रकार के (प्राचीन तथा इस जन्म के) संस्कारों से उज्ज्वल बनी, रति-रस-रूपता को प्राप्त होती है। यही रति अनुभूत कृष्णादि विभावादि के संसर्ग से उक्त भक्तों के हृदय में प्रौढानन्द और चमत्कार की पराकाष्ठा को प्राप्त होती है।[1]

श्री रूपगोस्वामी जी के इस कथन में भक्तिरस की निष्पत्ति सहृदय तथा पूर्व संस्कार युक्त भक्त हृदय में ही मानी गई है। रूपगोस्वामी की तरह ही काव्यशास्त्रकार अभिनव गुप्त और मम्मट आदि भी रस की निष्पत्ति वासना तथा पहले के संस्कारों से युक्त हृदय में ही मानते हैं। किंतु काव्यरस तथा भक्तिरस में अन्तर है। काव्यशास्त्र की रीति से वासनापूर्ण सामाजिकों के हृदय में ही रस का संचार माना गया है, किन्तु भक्तिरस अनुकर्ता भक्त के हृदय में भी अभिव्यक्ति होता है। काव्य-प्रकाश में कहा गया है कि रति आदि स्थायी-भाव के जो कारण, कार्य और सहकारी लोक में (घटनास्थल में) स्थित होते हैं वे ही सब नाट्यादि काव्य में समर्पित होते हैं, तब वे विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी कहलाते हैं, और इनसे व्यक्त स्थायीभाव ही रस-रूपता लेता है।[2]

---

[1] सामग्री परिपोषेण परमा रसरूपता।
विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः ॥५॥
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभिः।
एषा कृष्णरतिः स्थायीभावो भक्तिरसो भवेत् ॥६॥
प्राक्तन्याधुनिकी चास्ति यस्य सद्भक्तिवासना।
एष भक्तिरसास्वादस्तस्यैव हृदि जायते ॥७॥
भक्तिनिर्धूतदोषाणां प्रसन्नोज्वलचेतसाम्।
जीवनीभूतगोविंदपादभक्तिसुखश्रियाम् ॥८॥
प्रेमान्तरंगभूतानि कृत्यान्येवानुतिष्ठताम्।
भक्तानां हृदि राजन्ती संस्कारयुगलोज्ज्वला ॥९॥
रतिराननन्दरूपैव नीयमाना तु रस्यताम्।
कृष्णादिभिर्विभावाद्यैर्गतैरनुभवाध्वनि ॥१०॥
प्रौढानन्द चमत्कारकाष्ठामापद्यते पराम् ॥११॥
—हरिभक्तिरसामृत सिंधु, दक्षिण विभाग, १ लहरी, पृ० १२०-१२१

[2] कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः ॥२७॥
विभावा अनुभावाश्च कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
—काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, पृ० ८६, आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना

किन्तु भक्ति रस की निष्पत्ति आधार-आलम्बन रूप भक्त-हृदय में ही पहले होती है। भक्ति रस में कृष्ण और कृष्ण भक्त दोनों आलम्बन विभाव हैं। भक्त हृदय आधार आलम्बन है और भगवान् मुख्य विषय आलम्बन हैं।[१] भक्त की यही अनुभूति जब शब्दों में व्यक्त होती है तब वह सहृदय पाठक और श्रोता अथवा प्रेक्षक सामाजिकों में भी रस की अभिव्यक्ति करती है। 'रसो वै सः' श्रुति के अनुसार भक्तों का आलम्बन आनन्दस्वरूप ईश्वर है। अद्वैत वैष्णव-मत के अनुसार अंशरूपा आत्मा, जिसका आनन्दांश अविद्या माया से परिच्छिन्न रहता है, प्रेमानुभूति की एकाग्रता तथा सत्वगुण के प्रकाश में, अविद्या के आवरण के हटने पर, अपने सत्य स्वरूप आनन्द तथा, अंशीं रसरूप आत्मा का साक्षात्कार करता है। वही परमानन्द की अनुभूति भक्तों का अखंड, सतत् ब्रह्मानन्द है। योगियों के समाधिगत ब्रह्मानन्द की अनुभूति में विभावादि विषयों का सम्पर्क नहीं होता।[२] भक्ति के ब्रह्मानन्द में अलौकिक विभावादि का लगाव रहता है किन्तु काव्य रस के साथ, लौकिक विभावादि का सम्पर्क है।

भक्तों के हृदय में प्रथम रसानुभूति, कृष्ण और उनकी लीला से सम्बन्धित रानानुगा भक्ति के अनुभाव तथा ब्रह्म साक्षात्कार से ही होती है। वे लोग जिस समय अपनी अनुभूतियों का समर्पण कवि रूप से भाषा द्वारा कीर्तन अथवा काव्य में करते हैं, उस समय उनके हृदय में भक्ति रसानुभूति सामाजिकवत् काव्य रस के अनुरूप होती है। इसी अनुभूति का रस भक्तिकाव्य के श्रोता अथवा पाठक लेते हैं। इस प्रकार भक्ति रस दो प्रकार अथवा दो अवस्था का कहा जा सकता है—एक, अप्राकृत रस, दूसरा प्राकृत रस, ब्रह्मानन्द सहोदर।

मम्मट आदि आलंकारिकों ने भक्ति रस को भाव कोटि में ही रक्खा है, परन्तु वैष्णव लोग उसे रस ही कहते हैं।

भक्ति के विविध भाव

श्रीमद्भागवत में कहा गया है—"काम, क्रोध, भय, स्नेह, ऐक्य और सुहृद्भाव, इनमें से कोई भी भाव भगवान् हरि के साथ लगाया जाय तो ये भाव

---

[१] कृष्णश्च कृष्णभक्ताश्च बुधैरालम्बना मताः।
रत्यादेर्विषयत्वेन तथाऽऽधारतयाऽपि च ॥
—हरिभक्तिरसामृत सिंधु, दक्षिण विभाग, १ लहरी, पृ० १२२-३

[२] रसगङ्गाधर, पृ० २३ 'निर्णयसागर, प्रेस

लौकिक रूप को छोड़ ईश्वरमय हो जाते हैं।"[1] भक्ति सब भावों से हो सकती है, इस बात को सूरदास ने भी कहा है—"किसी भी भाव से भगवान् को भजो, उनका भजन सब प्रकार के संसार-दुःख से पार करने वाला है तथा काम, क्रोध, स्नेह, सत्य आदि किसी भी भाव से जो व्यक्ति दृढतापूर्वक हरि का ध्यान करता है वह हरि का हो जाता है।"[2] प्रेम भक्ति के विषय में भी सूर का विचार है कि प्रेम के सभी सम्बन्धों से भगवान् वश में हो जाते हैं :—

> शुक कह्यो कुटिल भाव मन राखे मुक्त भयो शिशुपाल,
> गोपी हरि की प्रिया मुक्ति लहैं कहा अचरज भूपाल।
> काम क्रोध में नेह सुहृदता काहू विधि कहै कोई,
> धरै ध्यान हरि को जो दृढ़ करि सूर सो हरि सो होई ॥[3]

नन्ददास ने भी इसी प्रकार के 'रास पंचाध्यायी', 'सिद्धांत पंचाध्यायी' तथा 'रूपमंजरी' ग्रन्थों में विचार प्रकट किये हैं। 'रास पंचाध्यायी में कवि कहता है:—

> तब कहीं श्री शुकदेव, देव यह अचरज नाहीं।
> सर्व भाउ भगवान् कान्ह जिनके मन माहीं ॥[4]

और 'सिद्धांत पंचाध्यायी' में कवि कहता है—

> केन केन परकार होइ अति कृष्ण मगन मन।
> अनार्कन चैतन्य कछु न चितवै साधन तन ॥[5]

---

[1] कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥—भाग० १०।२९।१५.

[2] हरि हरि हरि सुमिरहु सब कोय, हरि के शत्रु मित्र नहिं दोय।
ज्यों सुमिरै त्यों ही गति होय, हरि हरि हरि सुमिरहु सब कोय ॥

× × ×

कोउ भजो काहू परकारा। सूरदास सो उतरै पारा ॥
—सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० ४८२४, पृ० १६७५, ना० प्र० सभा, काशी।

[3] सूरसागर, दशम स्कंध, ना० प्र० सभा, काशी।

[4] नन्ददास ग्रन्थावली, रासपंचाध्यायी, प्रथम अध्याय, ना० प्र० सभा, काशी।

[5] नन्ददास ग्रन्थावली, 'सिद्धांत पंचाध्यायी, ना० प्र० सभा, काशी।

और रूप मंजरी में कहता है—

जिहि जिहि भाँति भजै जो मोहिं।
तिहि तिहि विधि सो पूरन होहिं॥[1]

दास्य-भाव की भक्ति—श्रीमद्भागवत में दास्य-भाव की भक्ति से पूर्ण अनेक स्थल हैं। अन्य पुराणों में दास्य भक्ति का इतना स्पष्ट विवेचन नहीं है। दशम स्कंध भागवत, में शङ्करजी भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं।[2] यह स्तुति उनकी दास्य-भावना को पूर्ण रूप से प्रकट करती है। इसी प्रकार एक स्थल पर ब्रह्माजी भी दास्य-भाव से भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं।[3] इस प्रकार की दास्य-भाव से पूर्ण भक्ति भागवत में अनेक स्थानों पर मिलती है। इसका प्रभाव हिंदी के कृष्ण भक्ति काव्य पर पर्याप्त रूप से पड़ा है।

दास्य-भक्ति से ओत-प्रोत सूरदास के अनेक पद मिलते हैं। दास्य-भाव को प्रकट करते हुए सूरदास जी कहते हैं—"नन्दनन्दन की शरण में आकर मेरा मृत्यु-भय छूट गया, मैंने अन्य भक्ति के चिह्नों को मेट कर कृष्ण-भक्ति के चिह्न धारण कर लिये हैं। मस्तक पर तिलक, कान में तुलसी पत्र और कण्ठ में वनमाला आदि चिह्नों को देखकर मुझे लोग श्याम का गुलाम कहते हैं। यह सुनकर मेरा मन प्रसन्न होता है। सबसे बड़ा सुख तो मुझे यह है कि मैं दास वृत्ति से भगवान् की जूठन प्रसाद रूप में पाता हूँ।[4]

अपने दोषों को प्रकट करते हुए सूर ने अनेक पद लिखे हैं जो केवल व्यक्तिगत ही नहीं, वरन सांसारिक विषयों से विकृत और आत्मिक स्वच्छता के इच्छुक सभी व्यक्तियों के हृदय के चित्रण कहे जा सकते हैं। वे कहते हैं :—

अब मैं नाच्यों बहुत गुपाल,
काम क्रोध को पहिर चोलना, कंठ विषय की माल।
महामोह के नूपुर बाजत निंदा शब्द रसाल।
भरम भर्‌यो मन भयो पखावज चलत कुसंगत चाल।

---

[1] रूप मंजरी। [2] भाग० १०।४० [3] भाग० १०।१४ [4] सूरसागर, प्रथम स्कंध, पद सं० १७१, ना० प्र० सभा, काशी।

तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बांध्यो लोभ तिलक दियो भाल।
कोटिक कला काछि देखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करौ नन्दलाल।[1]

दास्य-भाव से परमानन्ददास अपने स्वामी कृष्ण से विनय करते हैं :—हे कृपावन्त स्वामी, आप मुझे भी अपने चरण-कमलों का मधुप बना लीजिए, मेरी आपसे यही विनय है। आपके करकमलों की शीतल छत्रछाया बहुत सुखकारी है। आपके पद्म प्रवाल के समान रतनारे नेत्रों की चितवन में कृपा की दृष्टि भरी है। परमानन्ददास आपके इस कृपा-रस का लोभी है। आप जिस पर द्रवित होकर दया करते हैं वही आपके नैकट्य को पाता है।[2]"

भगवान् की शक्ति और सामर्थ्य का भाव प्रकट करते हुए वे कहते हैं—"जिस पर कमला-कान्त भगवान् प्रसन्न होते हैं, उस लकड़ी और घास के बेचने वाले व्यक्ति के सिर पर भी वे राज छत्र छा देते हैं, उनमें रिक्त को भरने और भरे को ढुलकाने और फिर उसे भरने की शक्ति है। वे सब प्रकार से सामर्थ्यवान् हैं। परमानन्द के मन में यही अभिलाषा है कि वे उसको भी अपनी कृपाकोर दें।[3]"

---

[1] सूरसागर, प्रथम स्कंध—'हमें नन्दनन्दन मोल लिए' पद सं० १५३ ना० प्र० सभा, काशी।

[2] अपने चरण कमल को मधुकर मोहू काहे न करिहू जू।
कृपावंत भगवंत गुसांई, यह विनती चित धरिहू जू।
शीतल आतपत्र की छाया कर अम्बुज सुखकारी।
पद्म प्रवाल नयन रतनारे कृपा कटाक्ष मुरारी।
परमानन्द दास रस लोभी भाग्य बिना क्यों पावै।
जाको द्रवत रमापति स्वामी से तुम्हरे ढिंग आवै।
—परमानन्ददास पद संग्रह, पद सं० ३१३

[3] जापर कमला कांत ढरैं।
लकरी घास को बेचन हारो ता सिर छत्र धरैं।
विद्यानाथ अविद्या समरथ जो कछु चाहै सोइ करैं,
रीतै भरैं-भरैं पुनि ढोरैं जो चाहे तो फेरि भरैं।
सिद्ध पुरुष अविनाशी समरथ काहू ते न डरैं,
परमानन्द सदा यह सम्पत्ति, मन में कबहूँ ढरैं।
—परमानंददास पद संग्रह, पद सं० ४८३

मीरा ने भी अपने अनेक पदों में स्वयं को अपने गिरिधर नागर की दासी कहा है।

वे कहती हैं :—

मीरा दासी राम की जी, राम गरीब निवाज।
जन मीरा को राख ज्यो, कोई बाँह गहे की लाज ॥[1]

× × ×

मीरा के प्रभु हरि अविनाशी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।[2]

× × ×

हाँ हो म्हारा नाथ सुनाथ, विमल नहिं कीजिये।
मीरा चरणां की दास, दरस अब दीजिये ॥[3]

इस प्रकार की अनेक पंक्तियों में मीरा ने स्वयं को अपने 'साहब', 'ठाकुर', 'नाथ' और गिरिधरगोपाल की दासी कहा है।

रसखान ने अपने उपास्यदेव को न तो सखा रूप में समझा और न पुत्र रूप में। ये अपने को श्रीकृष्ण का दास ही मानते थे। रसखान का कहना है कि शरीर के सभी कार्य-व्यापार श्रीकृष्ण से ही सम्बन्धित रहने चाहिए, कृष्ण के लगाव के बिना कोई कार्य कुछ मूल्य नहीं रखता। एक स्थल पर दास्य-भाव की भक्ति के उद्गार देखिये :—

बैन वही उनको गुन गाइ, औ कान वही उन बैन सो सानी।
हाथ वही उन गात सरैं, अरु पाँय वही जु वही अनुजानी ॥
जान वही उन प्रान के संग, औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यों 'रसखानि' वही रसखानि जु है रसखानि बहै रसखानी ॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी दास्य-भाव की भक्ति से पूर्ण अनेक पद लिखे हैं। प्रस्तुत पद में दास्य-भक्ति का प्रलाप देखिये :—

नखरा राह राह को नीको।
इतनो प्रान जात हैं तुम बिनु तुम न लखत दुख जी को
धावहु बेग नाथ करुना करि करहु मान मत फीको।
'हरीचन्द' अठलानि पने को दियो तुमहिं बिधि टीको।

---

[1] मीराबाई की पदावली, पद सं० ४२। [2] मीराबाई की पदावली, पद सं० ६७। [3] मीराबाई की पदावली, पद सं० ५५।

हरिश्चन्द्र जी ने कई पदों में भगवान् से विरद की लाज रखने की प्रार्थना की है। विरद नाश होने की बात केवल अधिकारी भक्त ही कह सकते हैं। इस दीनता में भी एक अनोखी शान है। हरिश्चन्द्र अपने इष्टदेव से कैसी अधिकारपूर्ण याचना कर रहे हैं :—

फैलि है अपजस तुम्हरी भारी।
फिर तुमको कोऊ नहिं कहि हैं मोहन पतितउधारी।
वेदादिक सब झूठ हौंहिगे ह्वै जैहैं अति ख्यारी।
तोसो कोउ विधि धाइ लीजिये हरीचन्द कौं तारी।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने प्रिय-प्रवास में राधा से दास्य-भक्ति के विषय में इस प्रकार कहलाया है :—

जो बाते हैं भव-हितकारी सर्व भूतोपकारी।
जो चेष्टाएँ मलिन गिरती जातियाँ हैं उठाती।
हो सेवा में निरत उनके अर्थ उत्सर्ग होता।
विश्वात्मा-भक्ति भव-सुखदा दासता संज्ञका है।[1]

सख्य-भाव की भक्ति—सख्य भक्ति से पूर्ण अनेक स्थल भागवत में देखने योग्य हैं। भागवत दशम स्कंध में ब्रह्मा कृष्ण की स्तुति करते हैं। उस स्तुति में भागवतकार का कहना है—"व्रज के निवासी उन नन्द गोपों को धन्य है जिनका परमानन्द पूर्ण सनातन ब्रह्म मित्र है।[2]" इसके अतिरिक्त दशम स्कंध में अनेक स्थानों पर गोपों का मित्र भाव और सख्य-भक्ति देखने योग्य है।

सुदामा की सख्य-भक्ति तो प्रसिद्ध ही है। इसका वर्णन भागवत में पर्याप्त विस्तार से हुआ है।[3]

हिन्दी के कृष्णभक्त कवियों ने भी भागवत के अनुसार ही सख्य-भक्ति का प्रचुर मात्रा में वर्णन किया है। सूर की सख्य भक्ति के उदाहरण कृष्ण की बाल-

---

[1] प्रिय-प्रवास, सर्ग १६

[2] अहो भाग्यमहो भाग्यं नंदगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥३२॥ —भाग० १०।१४।३२

[3] भाग० १०।८०

लीला और गोचारण लीला के अतिरिक्त 'सुदामा दरिद्रभंजन' नामक प्रसंग है। इस प्रसंग में उन्होंने भगवान् को सबसे बड़ा मित्र बताते हुए सख्य-भक्ति की महत्ता का भी उल्लेख किया है। सुदामा मित्र-भाव से कृष्ण के पास गये। उस समय कृष्ण ने मित्र के साथ क्या व्यवहार किया :—

दूरि ते देखे बलबीर,
अपने बाल सखा सुदामा, मलिन वसन अरु छीन सरीर।
पौढे हुते प्रयंक परम रुचि रुक्मिनी चमर डोलावत तीर।
उठि अकुलाइ अनमने लीने मिलत नैन भरि आए नीर।

और,

ऐसी प्रीति की बलि जाऊँ,
सिंहासन तजि चले मिलन को सुनत सुदामा नाऊँ।

गौ-चारण लीला के प्रसंग में सूर की सख्य-भक्ति का और भी अधिक प्रगाढ़ रूप प्रकट हुआ है। सख्य-प्रेम के वशीभूत होकर सूर के कृष्ण सखा भक्तों के साथ गाय चराते हैं और उनके सुख के लिए अनेक आमोद-प्रमोद भरे खेल रचते हैं।[१] कृष्ण की अपनी गाएँ तो उनके वश में हैं ही, मित्रों की भटकी हुई गायों को भी बुलाकर अपने गायों के साथ चराते हैं। गायरूपी कुमार्गगामी इन्द्रियों के निरोध में मानो भगवान् सख्य अनुग्रह से भक्तों की रक्षा करते हैं। मित्रों की गायों को ढुँढवाकर कृष्ण उनको चेतावनी देते हैं—"भैया, मुझे सब

---

[१] चरावत वृन्दावन हरि गाई।
सखा लिए संग सबल श्रीदामा डोलत हैं सुखपाई।
क्रीड़ा करत जहाँ तहाँ सब मिलि आनंद बढ़ाइ-बढ़ाइ।
बगरि गईं गइयाँ वनवीथिनि देखी अति अकुलाइ।
कोऊ गए ग्वाल गाइ बन घेरन कोऊ गए बछरु लिवाइ।
आपुहि रहे अकेले बन में कहुँ हलधर रहे जाइ।
वंसीवट शीतल जमुना तट अतिहिं परम सुखदाई।
सूर श्याम तब बैठि विचारत सखा कहाँ बिरमाई।
—सूरसार, दशम स्कंध, पद सं० १११८, ना० प्रा० सभा, काशी।

ाय कुंजों में मिल गई हैं। इस सघन वन में अपनी-अपनी गायों को सावधानी ा चराओ। तुम कहीं घूमते हो और गायें कहीं घूमती हैं।[१]"

नन्ददास के काव्य में भी कुछ पद कृष्ण की गो-चारण तथा छाक लीला के ; किंतु उनमें कवि की प्रगाढ़ सख्य-भक्ति का अभाव है। नन्ददास के 'सुदामा-ारित' के अन्तिम छन्दों में कवि ने सख्य-भक्ति के माहात्म्य पर कहा है—"जो ुदामा की तरह सख्य-भाव से भगवान् को भजेगा उसको सब सुख प्राप्त होंगे।"

"ऐसे जो कोऊ हरि को भजै, हरि उदारता ते सुख सेजे।[२]"

परमानन्द दास के काव्य में भी सख्य-भक्ति का कुछ परिचय मिलता है। ाख्य-भक्ति के रस को चखते हुए गोपरूप से परमानन्ददास गो-चारण तथा छाक ़े पदों में अपने सखा श्रीकृष्ण से कहते हैं—

आजु दधि मीठों मदन गोपाल।
भावत पात बनाए दोना दिये सबन को बाँट,
जिन नहिं पाए सुनो रे भैया, मेरी हथेरी चाट।
बहुत दिनन हम बसे, कुमुदवन कृष्ण तिहारे साथ,
ऐसो स्वाद हम कबहुँ न चाख्यो सुन गोकुल के नाथ।
आपुन हँसत हँसावत ग्वालन मानस लीला रूप,
परमानन्द प्रभु हम सब जानत तुम त्रिभुवन के भूप।[3]

---

[१] पाई-पाई है भैया कुंज वृन्द में टाली।
अबके अपनो हटकि चरावहु जैहै हटकी घाली।
आवहु वेगि सकल दुंहु दिसि ते कत डोलत अकुलाने।
सुनि मृदु वचन देखि उन्नत कर हरखि सबै समुहाने।
तुम तो फिरत अनत ही ढूँढ़त ये बन फिरति अकेली।
हांकी गाय कौन पर लैन्हो, सघन बहुत द्रुम बेली।
सूरदास प्रभु मधुर बचन कहि राखत सबहिं बुलाए।
नृत्य करत आनंद गौ चारत सबै कृष्ण पै आए॥
—सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० ११२१, ना० प्र० सभा, काशी।

[२] नन्ददास ग्रंथावली, सुदामा चरित, पृ० २१५ ना० प्र० सभा, काशी।

[3] परमानन्द दास पद संग्रह, ४३२

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने प्रिय-प्रवास में सख्य-भक्ति के विषय में लिखा है :—

नाना प्राणी तरु गिरि लता आदि की बात ही क्या।
जो दूर्वा से द्युमणि तक है व्योम में या धरा में॥
सद्भावों के सहित उनसे कार्य्य प्रत्येक लेना।
सच्चा होना सुहृद उनका भक्ति है सख्य नाम्नी॥[1]

वात्सल्य-भाव की भक्ति—श्री वल्लभाचार्य जी ने श्रीनाथजी की सेवा-पद्धति में वात्सल्य भाव की सेवा पर विशेष बल दिया था। क्योंकि इस भाव में निष्काम प्रेम का भाव सर्वाधिक रहता है। इस प्रकार की प्रीति की भक्ति के अभ्यास से साधन की आरम्भिक अवस्था में लौकिक वासनाएँ जल्दी छूट जाती हैं। वात्सल्य प्रेम में स्नेह-पात्र अबोध और अशक्त होने के कारण स्नेही को उससे, बदले के रूप में, कुछ चाहना नहीं रहती। वात्सल्य-भाव की जिसशु चिंता, सुखमग्नता तथा प्रबलता का अनुभव मातृ-हृदय करता है, वह अन्य मनुष्य का हृदय नहीं करता। वात्सल्य-भाव की भक्ति करनेवाले भक्तों ने इसी से अपने को यशोदा की स्थिति में अधिक रक्खा है, नन्द के रूप में अपने को उतना नहीं देखा।

वात्सल्य-भक्ति का रूप श्रीमद्भागवत में भी है, परन्तु जितना पूर्ण और प्रभावशाली इस प्रेम का प्रभाव ब्रजभाषा के कवियों के काव्य में प्रकट हुआ है उतना भागवत में भी नहीं है। लेकिन फिर भी हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों की भक्ति के समस्त रूपों का मूल-स्रोत भागवत में ही है। भागवत में कपिल अपनी माता देवहूति से कहते हैं—"हे माता! जिन लोगों का गुरु, इष्टदेव, प्रिय आत्मा, पुत्र और सखा मैं ही हूँ उनको मेरे कालचक्र से भय नहीं होता।"[2]

सूरसागर में कृष्ण की बाललीला तथा कृष्ण वियोग में यशोदा के विरह के

---

[1] प्रिय-प्रवास, सर्ग १६

[2] न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः।
येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम्॥
—भाग० ३।२५।३८

सम्पूर्ण पद सूर की इस भक्ति के प्रमाण हैं। सूर का मातृ-हृदय बालरस की इस अभिलाषा से प्लावित है—

मेरो नान्हरियाँ गोपाल बेगि बड़ो किन होई,
इहि मुख मधुरे बयन हंसि कबहूँ जननि कहोगे मोहिं।
यह लालसा अधिक दिनदिन प्रति कबहूँ ईश करैं,
मो देखत कबहूँ हँसि माधव पगु द्वै धरनि धरै।
हलधर संग फिरै, जब आँगन चरणशब्द सुख पाऊँ,
छिन छिन क्षुधित जान पय कारन हौं हठि निकट बुलाऊँ।
आगम निगम नेति करि गायो शिव उनमान न पायो,
सूरदास बालक रस लीला मन अभिलाष बढ़ायो॥[1]

कृष्ण का बाल-सौन्दर्य भी अनोखा है। माता यशोदा ही नहीं, वरन ब्रज की सभी माताएँ उस सौन्दर्य पर मुग्ध हैं। सूर अकिंचन की अनुभूति में तो इस अपार सुन्दरता सिंधु की केवल एक बूँद ही ग्रहण करने की शक्ति है, उसकी मति इस रूप-सागर में मग्न होकर विलीन हो रही है :—

लालन हौं या छबि ऊपर बारी,
बाल गोपाल लगी इन नैननि रोग बलाइ तुम्हारी।
लट लटकनि मोहन मसि बिंदुका तिलक भाल सुखकारी।
मनहुँ कमल अलिशावक पंगति उठत मधुप छबि भारी।
लोचन ललित कपोलनि काजर छबि उपजत अधिकारी।
सुख में मुख औ छबि बाढ़ति हँसत दै दै किलकारी।
अल्पदसन कलबल करि बोलनि बिधि नहिं परत बिचारी।
निकसति जोति अधरनि के बीच ह्वै मानो बिधु में बीजु उजारी।
सुन्दरता को पार न पावति रूप देखि महतारी,
सूर सिंधु की बूंद भई मिलि मति गति दृष्टि हमारी।[2]

सूर के वियोग वात्सल्य वर्णनों में भी प्रगाढ़ भक्ति दिखलाई पड़ती है—

---

[1] सूरसागर, दशम स्कंध, ना० प्र० सभा, काशी। [2] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० ७०६, पृ० ३६२, ना० प्र० सभा, काशी।

यद्यपि मन समुझावत लोग,
शूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग।
निसवासर छतियाँ लै आऊँ बालक लीला गाऊँ।
वैसे भाग बहुरि फिरि ह्वै हैं मोहन मोद खवाऊँ।

× × ×

बिदरत नहीं ब्रज को हृदय हरि वियोग क्यों सहिए।
सूरदास प्रभु कमल नैन बिनु कौने विधि ब्रज रहिये।[1]

नन्ददास ने श्रीकृष्ण-जन्म की बधाई और बाल-लीला के पद लिखे हैं; परन्तु वे कम संख्या में उपलब्ध हैं। साथ ही उनमें सूर की-सी प्रगाढ़ वात्सल्य-भक्ति भी नहीं है। वास्तव में नन्ददास कृष्ण के किशोर रूप के उपासक थे। 'दशम स्कंध भाषा' के सप्तम अध्याय में कवि ने कृष्ण के बालरूप की महत्ता और उसकी पवित्रता का इस प्रकार वर्णन किया है—

सुनि सप्तम अध्याय उदारा, जामे बाल चरित मधु धारा।
जिहि रस सिंधु मगन भयो राजा, फिरि पूछे सुक अति सुख काजा।
हो प्रभु हरि को बाल चरित्र, अति विचित्र अरु परम पवित्र।
जदपि अवर हरि के अवतार, मंगल रूप सकल श्रुति सार।
पै यह बाल चरित मधुधार, या सम कछु न अवर संसार।
पियत तृपति मानत नहिं कान, औरौ कहो जान मनि जान।[2]

प्रातःकाल यशोदा माता कन्हैया को जगाती हैं। नन्ददास का यह वर्णन बड़ा ही सुन्दर है—

चिरैया चुहचुहानी सुनि चकई की बानी,
कहति यसोदा रानी जागो मेरे लाला।
रवि की किरन जानी कुमुदनी सकुचानी,
कमलिनि विकसानी दधि मथे बाला।

---

[1] सूरसागर, दशम स्कंध, ना० प्र० सभा, काशी। [2] नन्ददास ग्रंथावली, पृ० २४०, ना० प्र० सभा, काशी।

सुबल श्रीदामा तोक उज्ज्वल बसन पहिरे,
द्वारे ढाड़े हेरत हैं बाल गोपाला।
नंददास बलिहारी उठि बैठो गिरिधारी,
सब कोउ देख्यो चाहै लोचन बिसाला।[१]

परमानन्द दास का हृदय नन्ददास से अधिक कृष्ण की वात्सल्य-भक्ति में रमा है। परमानन्द दास कृष्ण के बाल, कुमार और पौगराड, तीनों लीलारूपों के उपासक थे, किन्तु उनका मन कुमार अवस्था में 'माखन चोर' की ओर अधिक रमा है। शिशु रूप की अपेक्षा नटखट बालक की ओर उनका बाल स्नेही मन अधिक खिंचता था। एक पद में वे कहते हैं :—

जहँ जहँ चरन कमल माधो के तहीं तहीं मन मोर।
इष्ट देवता सब बिधि मेरे जे माखन के चोर।
परमानन्द दास की जीवनि गोपिन पट झकझोर।[२]

श्रीकृष्ण की बाल छवि ने भी परमानन्द दास को रिझा रखा था। निम्नलिखित पद दर्शनीय हैं :—

बाल विनोद गोपाल के देखत मोहिं भावै।
प्रेम-पुलकि आनन्द भरि जसोमति गुन गावै।
बल समेत धन-साँवरो आँगन में धावै।
बदन चूमि कोरा लिए सुत जानि खिलावै।
सिव विरंचि मुनि देवता जाको अंत न पावै।
सो परमानन्द ग्वालि को भलो मनावै।[३]

सूर के समान ही वात्सल्य के विरह की अनुभूति भी परमानन्द जी को होती है—

गोपाल बिन कैसे वे ब्रज रहिबो।
धूसरि धूरि उठाय गोद लै लाल कौन सो कहिबो।
जो मधुपुरी दिवस लागत है सोच-सूल तन सहिबो।
परमानन्द स्वामी को तज के सरन कौन की गहिबो।[४]

---

[१] नन्ददास ग्रंथावली, पदावली पद सं० ३२, ना० प्र० सभा, काशी।
[२] परमानंददास पद संग्रह, पद सं० २६६ [३] परमानंददास पद संग्रह, पद सं० १३। [४] परमानंददास पद संग्रह, पद सं० २२०

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का भी मन कृष्ण की वात्सल्य-भक्ति में रमा है। उन्होंने कृष्ण के बाल-सौन्दर्य का वर्णन बहुत सुन्दर ढंग से किया है :—

आजु लख्यौ आँगन में खेलत जसुदा जी को बारो री।
पीत झंगुलिया तनक चौतनी मन हरि लेत दुलारो री।
अति सुकुमार चन्द्र के मुख पै तनक डिठौना दीनो री।
मानहुँ श्याम कमल पै इक अति बैठो है रंग भीनो री।
उर बघनहा बिराजत सखि री उपमा नहिं कहि आवै री।
मनु फूली अगस्त्य की कलिका सोभा अतिहि बढ़ावै री।
छोटी-छोटी सीस लुटुरिया भ्रमरावलि जनु आई री।
तैसी तनक कुल्हैया तापै देखत अति सुखदाई री॥
छुद्र घंटिका कटि में सोहत सोभा परम रसाला री।
मनहुँ भवन सुन्दरता को लखि बाँधी बन्दन-माला री।
पीत झंगा अति तन पै राजत उपमा यह बनि आई री।
मनु घन में दामिनि लपटानी छबि कछु बरनि न जाई री।
कोटि काम अभिराम रूप लखि अपने तन मन वारै री।
हरीचन्द ब्रज चन्द चरन-रज लेत बलैया हारै री॥[1]

बाल कन्हैया के पालने में झूलने के भी सुन्दर चित्र भारतेन्दु ने खींचे हैं। एक देखिये :—

वारी मेरे लालन झूलो पालना।
हौं बलि जाऊँ वदन की मोहन मानहुँ बात हमारी॥
माखन लेहु लालन ब्रज-जीवन वारने गै महतारी।
अंचरा छोरहु तुमहिं झुलाऊँ 'हरीचन्द' बलिहारी॥

मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'द्वापर' में वात्सल्य-भक्ति का सुन्दर चित्रण किया है। यशोदा माता कहती हैं :—

उसे सुलाती थी हाथों पर
जब मैं हिला हिला के।
जीने का फल पा जाती हूँ
प्रति दिन उसे खिला के,

[1] भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खंड, राग-संग्रह, पद सं० १७ ना० प्र० सभा, काशी।

मरना तो पा गई पूतना,
उसको दूध पिला के।[1]

और निम्नांकित पंक्तियों में यशोदा का वात्सल्य-प्रेम कृष्ण के सौन्दर्य को देखकर कैसा उमड़ रहा है :—

मेरे श्याम सलोने की है,
मधु से मीठी बोली,
कुटिल अलक वाले की आकृति,
है क्या भोली भाली।
मृग से दृग हैं, किन्तु अनी-सी,
तीक्ष्ण दृष्टि-अनमोली,
बड़ी कौन सी बात न उसने
सूक्ष्म बुद्धि पर तोली ?[2]

मधुर भाव की भक्ति

वैष्णव पुराणों में गोपी-कृष्ण के मधुर प्रेम में मधुर भाव की भक्ति का बहुत सुन्दर रूप दिखाई पड़ता है। विशेष रूप से भागवत में गोपियों की मधुर भक्ति देखने योग्य है।[3] पुराणों के अनुसार ही हिन्दी में भी कृष्णभक्त कवियों ने मधुर भक्ति का बहुत अधिक वर्णन किया है। कारण यह है कि मनुष्य मात्र का सबसे अधिक व्यापक भाव रति-प्रेम है। प्रीति के जितने सम्बन्ध हैं, उसमें स्त्री-पुरुष के प्रेम में अधिक आकर्षण है। इसमें भी प्रेम की पूर्वराग अवस्था और स्वकीया प्रेम से परकीया प्रेम में अधिक तीव्रता, गहनता और टीस का आनन्द होता है। लोकानुभूत स्त्री-पुरुष के प्रेम सम्बन्ध की व्यापकता को देखकर ज्ञानी साधकों ने भी ईश्वर के प्रति अपने आध्यात्मिक सम्बन्ध की अनुभूतियों को लौकिक-शृङ्गार की भाषा तथा अन्योक्तियों में प्रकट किया है; किन्तु इस प्रेम का आलंबन लोक-नायक न होकर ईश्वर या ईश्वर का कोई अवतरित रूप होता है।

---

[1] द्वापर, पृ० ६, मैथिलीशरण गुप्त [2] द्वापर, पृ० १२, मैथिलीशरण गुप्त।
[3] भाग० १०।२१, २२, २६, ३०, ३१, ३३, ३५

स्वकीयाभाव की मधुर भक्ति

कृष्ण से माधुर्य भाव की प्रेम करनेवाली दो प्रकार की गोपियाँ पुराणों में भी और हिन्दी के कृष्णभक्ति-काव्य में भी वर्णित हैं। एक तो वे कुमारिकाएँ थीं, जिन्होंने आरम्भ से ही कृष्ण पर मुग्ध होकर उन्हें अपना पति माना था और उनमें से कुछ का उनसे वरण भी हो गया था। दूसरी वे थीं जो विवाहिता थीं और जिन्होंने पर पुरुष कृष्ण से प्रेम किया था।

अब प्रश्न यह उठता है कि इन गोपियों का प्रेम स्वकीया था या परकीया। विचारपूर्वक देखने से प्रतीत होता है कि वास्तव में उनका प्रेम स्वकीया था। पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं। जगत् की प्रत्येक वस्तु उन्हीं से उत्पन्न है, वे ही परमात्मा हैं, संसार की समस्त वस्तुओं के एकमात्र पति हैं। श्रीकृष्ण जीव नहीं हैं कि जगत् की वस्तुओं में उनका हिस्सेदार दूसरा भी हो। भागवत में अपनी प्रार्थना में और परीक्षित के प्रश्न के उत्तर में श्री शुकदेव जी ने भी यही बात कही है कि "गोपी, गोपिओं के पति, उनके पुत्र, सगे सम्बन्धी और जगत् के समस्त प्राणियों के हृदय में आत्मा रूप से जो प्रभु स्थित हैं, वही श्रीकृष्ण हैं। कोई अज्ञानवश चाहे श्रीकृष्ण को पराया समझ ले, लेकिन वास्तव में ये किसी के पराए नहीं हैं, सबके अपने हैं, सब उनके हैं। सभी गोपियाँ भगवान की ह्लादिनी शक्तियाँ हैं, यह बात गोपियाँ जानती थी और स्थान-स्थान पर उन्होंने ऐसा कहा भी है। ऐसी स्थिति में 'जार भाव' का कोई लौकिक अर्थ नहीं रह जाता। वास्तव में गोपियाँ स्वकीया थीं, परकीया नहीं, किन्तु उनमें परकीया भाव था। परकीया होने में और परकीया भाव होने में बहुत अन्तर है। परकीया भाव से मधुर भक्ति में और भी तीव्रता आ जाती है। परकीया भाव से मधुर-भक्ति का वर्णन आगे किया गया है।

पुराणों के अनुसार ही हिन्दी के कृष्णभक्त-कवियों ने स्वकीया भाव की मधुर भक्ति का वर्णन किया है। भागवत में राधा नहीं है किन्तु पद्मपुराण और ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में राधा स्वकीया के रूप में ही आई है, जिसका विशेष विवरण तीसरे अध्याय में दिया जा चुका है। हिन्दी के कृष्णभक्त कवियों ने भी राधा को कृष्ण की विवाहिता पत्नी के रूप में चित्रित किया है। सूरदास कहते हैं :—

जाको व्यास वर्णित रास है गंधर्व
विवाह चित्त दै सुनो विविध विलास।

× × ×

देत भाँवरि कुंज मंडफ पुलिन में वेदी रची,
बैठे जु श्यामाश्याम, वर त्रैलोक की शोभाखची।[1]

एक स्थान पर स्वकीया-भाव से सूर की गोपी उद्धव से कहती हैं :—

हम अलि गोकुल नाथ अराध्यो।
मन वच क्रम हरि सों धरि पतिव्रत प्रेम योग तप साध्यो।
मात पिता हित प्रीत निगम पथ तजि सुख दुख के भ्रम नाख्यो।
मानापमान परग परितोषन सुस्थत थिति मन राख्यो।[2]

तथा,

विनती सुनो दीन की चित्त दै कैसे तव गुण गावै।
× × ×
मेरे तो तुमहीं पति तुम समान को पावै।
सूरदास प्रभु तुमरी कृपा बिनु को मो दुख बिसरावै।[3]

नन्ददास ने राधा को कृष्ण की दुल्हन के रूप में चित्रित किया है :—

सजनी आनन्द उर न समाऊँ।
बरसाने वृषभान लगन लिखो पठई है नन्द गाऊँ।
धौरी धूमरी घेनु विविध रंग शोभित ठाऊँ ठाऊँ।
भूषण मणि गण पार नाँहिने सो धन देखि लुभाऊँ।
नन्ददास लाल गिरधर की दुलहनि पर बलि जाऊँ।[4]

परमानन्द दास ने भी राधा को श्रीकृष्ण की सुहागिन के रूप में चित्रित किया है :—

मनावत हार परी मेरी माई।
राधे तू बड़ भागिनी, कौन तपस्या कीन।
तीन लोक के नाथ हरि सो तेरे आधीन।
तनिक सुहागों डारि के जड़ कंचन पिघलाय।

---

[1] सूरसागर, दशम स्कंध, ना० प्र० सभा, काशी। [2] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० ४१४८, ना० प्र० सभा, काशी। [3] सूरसागर प्रथम स्कंध, पद सं० ४२, ना० प्र० सभा, काशी। [4] नन्ददास ग्रंथावली पदावली, पद सं० ५८, ना० प्र० सभा, काशी।

सदा सुहागिन राधिका क्यों न कृष्ण ललचाय।
नंदनन्दन को जान महातम अपनी राख बढ़ाई।
ढोड़ी हाथ दे चली दूतिका तिरछी भौ हैं चढ़ाई।
परमानन्द प्रभु करूँगी दुल्हैया तौ बाबा की जाई।[1]

मीरा स्वयं ही कृष्ण की स्वकीया थीं। उनके अनेक पद स्वकीया-प्रेम के मिलते हैं। मीरा स्पष्ट रूप से कहती हैं :—

मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई॥[2]

तथा,

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ।
गिरिधर म्हारो सांचों प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ॥

× × ×

मेरी उनकी प्रीति पुरानी उण बिन पल न रहाऊँ।

× × ×

मीरा के प्रभु गिरधर नागर बार बार बलि जाऊँ॥[3]

इस प्रकार अनेक पदों में मीरा की स्वकीयोक्ति ही प्रकट होती है।[4] वे अपने प्रियतम कृष्ण को सदा 'प्रिया', सैंया, भरतार, साजन, वर, पिव, उठा और धणी कह कर सम्बोधित करती हैं। वे अपनी दृष्टि में कदाचित् स्वकीया हैं परन्तु ऐसे सम्बन्ध लोक दृष्टि से परकीया की दृष्टि से ही लक्षित होते हैं।

मीरा का आदर्श ब्रज की गोपियाँ थी और उनका आदर्श प्रेम भी 'गोपी-भाव' था। यह प्रसिद्ध है कि वे स्वयम् को ललिता नाम की एक गोपी का अवतार भी समझा करती थीं। अपने प्रियतम श्री गिरधर लाल के साथ इसी पूर्व सम्बन्ध का परिचय मीरा ने अनेक पदों में दिया है।

---

[1] परमानन्ददास पद संग्रह, पद सं० ३५२ [2] मीराबाई की पदावली, पद सं० १५ [3] मीराबाई की पदावली, पद सं० १७ [4] मीराबाई की पदावली, पद सं० ३०, ४७, १०६

परकीया भाव की मधुर-भक्ति

ऊपर कहा जा चुका है कि वैष्णव पुराणों में वर्णित गोपियाँ स्वकीया ही थीं किन्तु उनमें परकीया भाव था। वास्तव में परकीया होने में और परकीया भाव होने में बहुत अन्तर है। परकीया भाव से मधुर भक्ति में और भी तीव्रता आ जाती है। परकीया भाव में तीन बातें विशेष हैं—अपने प्रियतम का निरंतर चिंतन, मिलन की उत्कट उत्कण्ठा और दोष दृष्टि का सर्वथा अभाव। स्वकीया भाव में ये बातें गौण हो जाती हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण मधुर-भक्ति में परकीया भाव भक्ति के उद्रेक में और भी अधिक सहायक होता है। गोपियों के इस भाव के अनेक दृष्टांत श्रीमद्भागवत में मिलते हैं, विशेष रूप से दशम स्कंध, रास वर्णन में।

हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों में से कुछ ने पौराणिक प्रभाव के फलस्वरूप परकीया भाव की मधुर-भक्ति के पद लिखे हैं। सूरदास की निम्नांकित पंक्तियाँ देखिये :—

मुरली सुनत भई सब बौरी, मानहुँ परि सिर माँझ ठगौरी।
× × ×
छुटि सब लाज गई कुल कानी, सुत पति आरज पंथ भुलानी॥
× × ×
कोउ जेवंत पति ही तन हेरै, कोउ दधि में जामन पद फेरै।
× × ×
सूरदास प्रभु कुंज बिहारी, शरद रास रस रीति विचारी॥[1]

परमानन्द दास भी परकीया भाव की मधुर भक्ति के इस पद में कहते हैं कि मैंने तो प्रेम कृष्ण से किया है। यदि लोग इसे पातिव्रत्य कहें तो अच्छा और व्यभिचार कहें तो भी अच्छा :—

मैं तो प्रीति श्याम सों कीनी।
कोऊ निन्दो कोऊ बन्दो अब तो यह कह दीनी।
जो पतिव्रत तों या ढोटा सों इन्हें समर्प्यो देह।
ज्यो व्यभिचार नंद नंदन सों बाढ्यो अधिक सनेह।

[1] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० १६०७, ना० प्र० सभा, काशी।

जो व्रत गह्यो सो और न भायो मर्य्यादा को भंग।
परमानन्द लाल गिरिधर को पाये मेरो संग।[१]

मीरा के कुछ पदों में ऐसे भाव आये हैं जिनसे परकीया भाव की ओर संकेत होता है। मीरा यद्यपि स्वयं को स्वकीया की भाँति ही देखती हैं परन्तु लोक-दृष्टि से देखने से ये पद परकीया भाव की मधुर भक्ति के ही अन्तर्गत आयेंगे। मीरा एक पद में कहती है :—

तेरो कोई नहिं रोकनहार, मगन होइ मीरा चली।
लाज सरम कुल की मरजादा, सिर तैं दूर करी॥[२]

और एक पद में कहती हैं :—

लोक लाज कुल की मरजादा, यामें एक न राखूँगी।
पिव के पलंगा जा पौढ़ूँगी, मीरा हरि रंग राचूँगी।[३]

इस प्रकार लोक-दृष्टि से देखने पर मीरा के अनेक पदों में परकीया-भाव की मधुर भक्ति के दर्शन होते हैं।

ग—मधुर प्रेम की उत्कट अवस्था में लोक-लाज, वेद और कुल मर्यादा का त्याग

लोक-मर्यादा की दृष्टि से मधुर भक्ति या प्रेम निन्दनीय समझा जाता है परन्तु रस रूप कृष्ण के उपासक सभी कवियों ने भागवत के अनुसार इस प्रकार के भाव भरे प्रेम को महत्त्व दिया है। भागवत में रास के प्रकरण में, जब श्रीकृष्ण ने वंशी पर मधुर तान छेड़ी तब समस्त गोपियाँ जिस-जिस काम में लगी थीं, उन्हें छोड़कर श्रीकृष्ण के पास चल दीं। पिता, पति और भाइयों ने रोकने की चेष्टा की किन्तु ये न रुकीं और श्रीकृष्ण के पास पहुँचीं। तब श्रीकृष्ण भगवान् ने उन्हें बहुत प्रकार से समझाया कि तुम लोगों को रात्रि में यहाँ न आना चाहिए। तुम्हें घर में न देख कर तुम्हारे माता-पिता, पति-पुत्र आदि तुम्हें ढूँढ़ रहे होंगे। तुम लोग कुलीन स्त्री हो और स्वयं भी सती हो, जाओ अपने पतियों की सेवा-शुश्रुषा करो।

श्रीकृष्ण ने उन्हें यह भी समझाया कि स्त्रियों का परम धर्म यही है कि वे पति और उसके भाई बन्धुओं की निष्कपट भाव से सेवा करें और सन्तान का

---

[१] परमानन्ददास पद संग्रह, पद सं० ३७८ [२] मीराबाई की पदावली, पद सं० ३२ [३] मीराबाई की पदावली, पद सं० १४

पालन-पोषण करें। कुलीन स्त्रियों के लिए जार-पुरुष की सेवा सब तरह से निंदनीय ही है। इससे उनका परलोक बिगड़ता है, आदि-आदि। किन्तु गोपियाँ न मानीं और फिर रास लीला का आरम्भ हुआ। उन गोपियों ने पूर्ण रूप से लोक-लाज और कुल-मर्यादा का त्याग कर दिया।[1]

हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने भी "गोपी प्रेम" द्वारा अपनी प्रेम लक्षणा भक्ति का परिचय देते हुए लोक लाज तथा लोक वेद की उपेक्षा का भाव प्रकट किया है। इस आशय को प्रकट करनेवाला सूर का यह पद देखिये :—

माई री गोविंद सो प्रीति करत तब ही काहे न हटकी री,
यह तौ अब बात फैल गई बई बीज बटकी री।
घर घर नित इहै घैर बानी घट घट की,
मैं तो यह सबै सही लोक लाज पटकी।
मद कैसे हस्ती समान फिरति प्रेम लटकी,
खेलत में चूकि जाति होति कला नटकी।
जब रजु मिलि गाँठ परी रसना हरि रट की,
छोरे ते नाहीं छुटति कइक बेर झटकी।
मेटे क्यों हूँ न मिटति छाप परी टटकी,
सूरदास प्रभु की छबि हिरदै मेरे अटकी।[2]

नन्ददास ने भी उक्त भाव के पद लिखे हैं। एक पद में गोपी कहती हैं:—

अंखियाँ मेरी लालन संग अटकीं,
वह मूरति मो चित में चुभी रही छूटत नहीं यो झटकी।
भौंह मरोरि डारि पिक बानी पिय हिय ऐसो घटकी,
नंददास प्रभु की प्यारी लाज तजि डारी चलि निकट की।[3]

परमानन्ददास की गोपी भी लोक लाज को त्याग अपना मन हरि से जोड़ती हैं :—

---

[1] भाग० १०।२६ [2] सूरसागर, दशम स्कंध, ना० प्र० सभा, काशी।
[3] नन्ददास ग्रन्थावली, ना० प्र० सभा, काशी।

मैं अपनो मन हरि सों जोर्‌यो, हरि सों जोरि सबन सों तोर्‌यो।
नाच नच्यो तो घूँघट कैसो, लोक लाज डरु फटकि पिछेर्‌यो,
आगे पाछे सोच मिट्यो सब माझ बाट मटुका लै फोर्‌यो।
कहनो होय सो कहो सखी री कहा भयो काहू मुख मोर्‌यो,
परमानन्द प्रभु लोक हंसन दे लोक वेद ज्यों तिनका तोर्‌यो।[1]

मधुर प्रेम की उत्कट अवस्था में मीरा भी सूर आदि की गोपियों की भाँति कुल मर्यादा का त्याग कर देती हैं। संतन ढिग बैठकर लोक लाज खो देती हैं और साँवरे के रंग में रच कर "साजि सिंगार बांधि पग घुँघरू", लोक-लाज तज कर नाचती भी हैं। फिर लोक कुटुम्बियों के 'बरजने' को कहती है—"भली कहो कोई बुरी कहो मैं, सब लई सीस चढ़ाइ"। लोग उन्हें 'कुलनासी' तक कहने में नहीं हिचकते, परन्तु मीरा को ऐसी 'बदनामी' भी प्रेम की तीव्रता में 'मीठी' लगती है—

"राणा जी मुझे यह बदनामी लगे मीठी[2]"

रत्नाकर की गोपियाँ भी प्रेम की उत्कट अवस्था में लोक-लाज और कुल-मर्यादा का बन्धन तोड़ देती हैं :—

नेम व्रत संजम के पींजरे को जब
लाज-कुल कानि-प्रतिबंधहिं निवारि चुकीं।
कौन गुन गौरव को लंगर लगावै जब
सुधि बुधि ही कौ भार टेक करि टारि चुकीं॥
जोर-रतनाकर में साँस घूँटि बूड़ै कौन
ऊधो हम सूधौ यह बानक विचारि चुकीं।
मुक्ति-मुक्ता को मोल माल ही कहा है जब
मोहन लला पै मन-मानिक ही वारि चुकीं॥[3]

मधुर प्रेम का संयोग-सुख

गोपी कृष्ण कथा में भागवतकार से लेकर हिन्दी के अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने कुंज-लीला में गोपी कृष्ण का संयोग कराया है। यह संयोगावस्था भागवत में

---

[1] परमानन्द दास पद संग्रह, पद सं० ११६ [2] मीराबाई की पदावली, पद सं० ३६ [3] उद्धव-शतक, पद ५१

दो प्रकार से प्रकट हुई है। एक तो गोपियों की उत्कट अभिलाषा द्वारा उनके मानसिक जगत् के काल्पनिक मिलन में प्रकट हुई है, दूसरे वृन्दाविपिन की कुंजों के रास-रूप में।

काल्पनिक मिलन का भागवत में एक स्थान पर सुन्दर वर्णन हुआ है। जब श्रीकृष्ण ने वंशी की मधुर तान द्वारा गोपियों का आह्वान किया तो कुछ गोपियाँ घरों के भीतर थीं और उन्हें बाहर निकलने का मार्ग न मिला। तब उन्होंने अपने नेत्र मूँद लिये और बड़ी तन्मयता से श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, माधुर्य और लीलाओं का ध्यान करने लगीं। अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के असह्य विरह की तीव्र वेदना से उनके हृदय में इतनी व्यथा, इतनी जलन हुई कि उनमें जो कुछ अशुभ संस्कारों का लेशमात्र अवशेष था, वह भस्म हो गया। इसके बाद तुरंत ही ध्यान लग गया। ध्यान में उनके सामने भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने मन ही मन बड़े प्रेम से, बड़े आवेग से उनका आलिंगन किया। उस समय उन्हें इतना सुख, इतनी शान्ति मिली कि उनके सब के सब पुण्य के संस्कार एक साथ ही क्षीण हो गये।[1]

भागवत के दशम स्कंध के उनतीसवें तथा बत्तीसवें अध्याय में रास-लीला के अन्तर्गत कृष्ण-गोपी-मिलन का सुन्दर वर्णन है।

हिन्दी के कृष्णभक्त कवि सूरदास ने भी कृष्ण गोपी के संयोग का अनेक पदों में वर्णन किया है :—

> राधा सकुच श्याम मुख हेरति,
> चन्द्रावली देख कै आवति ब्रज ही को प्रिय फेरति।
> जाहु-जाहु मुख ते कहि भाषत, कर ते कर नहिं छूटत,
> उतहि सखी आवत सकुचानी इतहि श्याम सुख लूटत।
> सुख दुख हरष कछू नहिं जानति श्याम महारस माती,
> सूर उतहि चन्द्रावलि इक टक उनहीं के रंग राती।[2]

और,

> श्याम हँसि बोले प्रभुता डारि,
> बारम्बार विनय कर जोरत कोटि पट गोद पसारि।
> तुम सम्मुख मैं विमुख तुम्हारो मैं अपराध तुम साध,

---

[1] भाग०, १०।२६।६-१० [2] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० २७७६, ना० प्र० सभा, काशी।

धन्य-धन्य कहि-कहि युवतिन को आप करत अनुराध।
मोको भजो एक चित ह्वै कै निदरि लोक कुल कानि,
सुरपति नेह तोरि तिनका सों मोही निज करि जानि।
जाके हाथ पेर फल ताको सो फल लह्यो कुमारि,
सूर कृपा पूरण सो बोले गिरि गोवर्धन धारि॥[1]

नन्ददास ने भी गोपी-कृष्ण के संयोग का वर्णन कुछ पदों में किया है।

आज मेरे धाम आए री नागर नंद किशोर।
धन्य दिवस धन रात री सजनी धन्य भाग सखि मोर।
मंगल गावो चौक पुरावो बंदनवार सजावहु पोर,
नंददास प्रभु संग रस बस कर जागत करहु भोर॥[2]

मीरा ने भी अपने प्रियतम मिलन के चित्र अंकित किये हैं। एक पद में वे कहती हैं—

सहेलियाँ साजन घरि आया हो।
बहुत दिना की जोवती विरहणि पिय पाया हो॥[3]

और,

म्हारा ओलगिया घर आया जी।
तन की ताप मिटी सुख पाया हिलमिल मंगल गाया जी॥[4]

मधुरभक्ति का वियोग-पक्ष

प्रेमी भक्त अपने प्रिय की स्मृति में इतने लीन हो जाते हैं कि उनकी आत्म-विस्मृति वाली अवस्था हो जाती है और इस अवस्था में वे अपने को अपने प्रिय में मिला पाते हैं।

भागवत में जब रास के प्रारम्भ में ही श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये तो गोपियों की आत्मविस्मृति वाली अवस्था हो गई। उनका प्रेम पराकाष्ठा को पहुँच गया।

---

[1] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० १६५१, ना० प्र० सभा, काशी।
[2] नंददास ग्रन्थावली पदावली, पद सं० ६२ [3] मीराबाई की पदावली, पद सं० १४८ [4] मीराबाई की पदावली, पद सं० १४६

वे प्रेम की मतवाली गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गईं और फिर श्रीकृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं का अनुकरण करने लगीं। अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की चाल-ढाल, हास-विलास आदि में गोपियाँ उन्हीं के समान बन गईं। वे अपने को सर्वथा भूल-कर श्रीकृष्णस्वरूप हो गयीं और उन्हीं के लीला विलास का अनुकरण करती हुईं 'मैं श्रीकृष्ण ही हूँ'—इस प्रकार कहने लगीं।[1]

इस प्रकार भागवत में गोपियों की मधुर भक्ति में वियोग-पक्ष का सुन्दर चित्रण हुआ है। हिन्दी के कृष्णभक्त कवियों ने भी मधुरभक्ति के वियोग-पक्ष पर कुछ रचनाएँ की हैं।

सूरदास ने भी मधुर भक्ति के वियोग-पक्ष का पर्याप्त वर्णन किया है। सूर विरह की महत्ता बतलाते हुए कहते हैं :—

ऊधो विरहो, प्रेम करै,

× × ×

सूर गोपाल प्रेम पथ चलि कर क्यों दुख सुखन डरै।[2]

नन्ददास वियोग भाव की अनुभूति के विषय में कहते हैं कि विरह में चित्त की समाधि अवस्था हो जाती है —

प्रेम बुद्धि जो कीनौ चहौ, तौ तुम मं तै न्यारी रहौ।
विरह में चित समाधि लाइहो, तुरतहि तब मोकहुँ पाइयो।

परमानन्ददास ने भी विरह के विषय में कहा हैं :—

विरह बिनु नाहिन प्रीति को खोज,
बिनु लागे कैसे आवत है इन नैननि को रोज।
स्याम मनोहर बिछुरे सखीरी बैरी भयो मनोज,
परमानन्द निसूगे जे नर, ते हैं राजा भोज।[3]

---

[1] भागवत १०।३० [2] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० ४६०४, ना० प्र० सभा, काशी। [3] परमानन्ददास पद संग्रह, पद सं० १९३

इन कवियों ने मिलन की आतुरता, कामना, सर्वसमय इष्ट की प्रेममयी मधुर मूर्ति का स्मरण और ध्यान से लेकर तन्मय अवस्था तक के अनेक भावों को अंकित किया है। सूर के इस पद में विरहवेदना की तीव्रता देखने योग्य है :—

> कहो तो जो कहिबे की होई,
> प्राणनाथ बिछुरे की वेदन जानत नाहिंन कोई।
> जो हम अधर सुधारस लै लै, रहीं मदन गति भोई,
> कहा कहौं कछु कहत न आवै तन मन रही समोई।
> विरह व्यथा वेदन उर अन्तर जापै बीतै जानै स ई,
> सूरदास शिव सनकादिक लोभा सो हम बैठे खोई।[1]

परनानन्ददास ने भी अपने काव्य में गोपियों के विरहोद्गार प्रकट किये हैं :—

> मारग माधो को जोवैं,
> वह अनुहारि न देख्यो कोऊ जो नैनन दुख खोवैं।
> बाल विनोद किये नंदनंदन सुमिरि सुमिरि गुन रोवैं,
> बासर पति गृह काज न भावै निस भरि नींद न सोवैं।
> अन्तरगति की बिथा मानसी सो तन अधिक बिगोवै,
> परमानन्द दास गोविंद बिन अँसुवन जलधि उछोवै।[2]

मीरा का तो सम्पूर्ण काव्य ही विरह-काव्य है। मीरा के विरह में आन्तरिक वेदना का समावेश अधिक होने के कारण मानसिक पक्ष की प्रधानता है। शारीरिक कष्टों की असहायता का प्रदर्शन अधिकतर परम्परानुसार है और कई पदों में अत्युक्तियों से भरा हुआ है। जैसे एक पद में मीरा कहती हैं :—

> मांस गले गल छीजिया रे, करक रह्या गल माँहिं।
> आंगलियाँ रो मूदड़ो, म्हारे आवण लागी बाँहिं॥[3]

लेकिन फिर भी स्वानुभूति के कारण उसमें भी उतनी अस्वाभाविकता

---

[1] सूरसागर, दशम स्कंध, ना० प्र० सभा, काशी। [2] परमानन्ददास पद संग्रह, पद सं० २१७ [3] मीराबाई की पदावली, पद सं० ७४

नहीं जान पड़ती। मीरा के अनेक पदों में मिलन की व्याकुलता बहुत अधिक बढ़ी हुई है। प्रिय के बिना रहा नहीं जाता :—

प्रभु जी थे कहाँ गया, नेहड़ी लगाय,
छोड़ गया विस्वास संगाती, प्रेम की बाती बराय।
विरह सँमद में छोड़ गया हो, नेह की नाव चलाय,
मीरा के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम बिनि रह्योइ न जाय॥[1]

और,

रमइया बिनि रह्योइ न जाय।
खाण पाण मोहि फीको सो लागै, नैणा रहे मुरझाय।
बार बार मैं अरज करत हूँ, रैणा गई दिन जाय।
मीरा कहै हरि तुम मिलियाँ बिनि, तरस तरस तन जाइ।[2]

और होली के अवसर पर तो प्रिय के मिलन के लिए व्याकुलता और भी बढ़ जाती है :—

होली पिया बिन लागै खारी, सुनो री सखी मेरी प्यारी।
सूनो गाँव देश सब सूनो, सूनो सेज अटारी।
सूनी विरहन पिव बिन डोलै, तज दइ पीव पियारी।
भई हूँ या दुख कारी।

× × ×

मीरा के प्रभु मिलज्यो माधो, जनम जनम की क्वाँरी।
लगी दरशन की तारी।[3]

---

[1] मीराबाई की पदावली, पद सं० ६६ [2] मीराबाई की पदावली, पद सं० ७१। [3] मीराबाई की पदावली, पद सं० ७८।

अध्याय ५

हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य में राधा

क—राधा का आविर्भाव

कृष्णभक्ति शाखा के प्रत्येक वैष्णव सम्प्रदाय में राधा की किसी न किसी रूप में मान्यता है, किन्तु इन वैष्णव सम्प्रदायों में राधा का आविर्भाव कब हुआ, यह बतलाना कठिन है। पुराणों के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार से राधा के उल्लेख मिलते हैं, अतः उनके द्वारा यह निर्णय नहीं किया जा सकता कि प्रारम्भ में राधा का वास्तविक स्वरूप क्या रहा होगा?

राधा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रचलित मत यह है कि राधा आर्य जाति की देवी नहीं वरन् आभीर जाति की देवी थीं। सर भंडारकर लिखते हैं कि "सीरिया से आये हुए आभीरों की इष्टदेवी राधा को आर्यों ने स्वीकार किया, आभीरों के यहाँ बस जाने पर उनके बालगोपाल सात्वत-धर्म के उपदेष्टा भगवान् कृष्ण के साथ सम्मिलित हो गये और कुछ शताब्दियों पश्चात् आभीरों की इष्टदेवी राधा भी आर्य जाति में स्वीकृत कर ली गई।[1]" इसी कारण प्राचीन साहित्य में बालगोपाल का लीला-वर्णन तो उपलब्ध होता है किन्तु राधा का अस्तित्व कहीं नहीं है। किन्तु सर भंडारकर की इस धारणा को कुछ विद्वान् ठीक नहीं समझते। डा० मुन्शीराम शर्मा के अनुसार आभीर भारतीय ही थे, किंतु वे अपनी उपासना पद्धति की मौलिकता के कारण आर्यों से पृथक् समझे जाते हैं।[2]

---

१ Vaishnavism, Shaivism and other roligious systems.—Dr. Bhandarkar, Page 38.

२ इस देश के किसी भी साहित्यिक ग्रन्थ में आभीरों को बाहर से आया हुआ नहीं कहा गया है। विष्णु पुराण में आभीर वंश का उल्लेख है। वायु पुराण में भी आभीर राजाओं की वंशावली वर्णित है। यह भी लिखा है कि इन राजाओं ने शक और कुशानों के पूर्व दस पीढ़ियों तक सिंध में राज्य किया था। महाभारत में यदुवंश के साथ आभीर वंश का घनिष्ट सम्बन्ध बताया गया है और लिखा है कि श्रीकृष्ण की एक लाख नारायणी सेना मुख्यतः आभीर क्षत्रियों से ही निर्मित थी और युद्ध में दुर्योधन की ओर से लड़ी थी। —भारतीय साधना और सूर साहित्य, पृ० १६४, डा० मुंशीराम शर्मा

इस सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी दो कल्पनाएँ की हैं। उनकी पहली कल्पना यह है कि "राधा आभीर जाति की प्रेम देवी रही होंगी जिनका सम्बन्ध बालकृष्ण से रहा होगा आरम्भ में बालकृष्ण का वासुदेव कृष्ण से एकीकरण हुआ होगा। इसीलिए आर्य ग्रन्थों में राधा का नामोल्लेख नहीं है। पीछे बालकृष्ण की प्रधानता होने पर इस बालक देवता की सारी बातें आभीरों से ले ली गई होंगी और इस प्रकार राधा की प्रधानता हो गई होगी।[1]"

दूसरी कल्पना में आपने यह अनुमान लगाया है कि "राधा इसी देश की आर्य जाति की प्रेम देवी रही होगी। बाद में आर्यों में इसकी प्रधानता होने पर कृष्ण के साथ भक्ति के लिए इसका सम्बन्ध जोड़ दिया गया।[2]"

बहुत से विद्वान् दार्शनिक दृष्टि से राधा-कृष्ण का आधार पुरुष प्रकृतिवाद को मानते हैं। अर्थात् कृष्ण पुरुष हैं और राधा प्रकृति। डा० मुंशीराम शर्मा कहते हैं कि "हमारी सम्मति में इस नवीन वैष्णव धर्म की राधा अपने मूल रूप में संख्य की प्रकृति ही हैं।" ब्रह्मवैवर्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्मखंड में लिखा है—

"ममार्द्धांश स्वरूपात्त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी[3]"

कुछ विद्वान् राधा की उत्पत्ति के मूल में शक्तिवाद का प्रभाव मानते हैं। डा० शशिभूषण दास गुप्त के अनुसार "राधावाद का बीज भारतीय शक्तिवाद में है, वही सामान्य शक्तिवाद वैष्णव धर्म और दर्शन से भिन्न-भिन्न प्रकार से युक्त होकर भिन्न-भिन्न युगों और भिन्न-भिन्न देशों में विचित्र परिणति को प्राप्त हुआ है। उसी कुल परिणति की एक विशेष अभिव्यक्ति ही राधावाद है। जो थीं शुद्ध शक्तिरूपिणी क्रम परिणति के प्रवाह के अन्दर से उन्होंने आकर रूप परिग्रह किया है परम प्रेम रूपिणी मूर्ति में।[4]"

डा० शशिभूषण दास गुप्त ने 'श्री राधा का क्रम विकास' में श्री सूक्त और श्री देवी या लक्ष्मी देवी को प्राचीन इतिहास वर्णित कर उसमें भी शक्ति तत्त्व को दिखलाया है, और राधा भाव का संधान किया है[5]" इसी ग्रंथ के

---

[1]-[2] सूर साहित्य संशोधित संस्करण : पृ०१६-१७ डा०हजारी प्रसाद द्विवेदी,
[3] भारतीय साधना और सूर साहित्य, पृ० १७५, डा० मुंशीराम शर्मा
[4] श्री राधा का क्रम विकास, पृ० ३, डा० शशिभूषणदास गुप्त
[5] श्री राधा का क्रम विकास, अ० २, डा० शशिभूषण गुप्त।

तीसरे अध्याय में भी यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि पांचरात्र की वितलु शक्ति श्री या लक्ष्मी ही परवर्ती काल में राधा-तत्त्व के रूप में आया। किन्तु देखना यह है कि माधुर्य भक्ति को स्वीकार करने वाले वैष्णव संप्रदायों में "शक्ति" का कहाँ तक समावेश है और राधा के शुद्ध शक्ति का रूप किस-किस संप्रदाय में गृहीत है।

शाक्त-मत में वामा पूजा का बहुत महत्त्व है। वहाँ यह माना गया है कि साधना का पथ तभी प्रशस्त हो सकता है जब स्त्री-पुरुष अपने को त्रिपुर सुन्दरी ही समझकर पूजा करें। वैष्णव भक्ति संप्रदायों में कहीं-कहीं जीवात्मा को सखी भाव से उपासना करने का उपदेश है। संभवतः इसी कारण कुछ विद्वानों ने राधा की भक्ति पर शाक्त मत का प्रभाव देखा है। किंतु डा० विजयेन्द्र स्नातक ने अपने ग्रंथ में इस धारणा को निर्मूल मानते हुए कहा है—"राधा और कृष्ण के स्वरूप में भेद होने पर भी कृष्णभक्ति के सभी संप्रदायों के आधारभूत मान्यता में अन्तर नहीं है, अतः यह कहा जा सकता है कि राधा की कल्पना में हो सकता है कि शाक्तमत का भी प्रभाव रहा हो। किन्तु यह उपपत्ति कल्पना पर ही आश्रित मानी जायगी।[1]

राधा की उपासना का कारण अभी तक यही माना जाता है कि राधा आभीर जाति की देवी थीं, बाद में आर्यों ने भी उसे अपनी पूजा-अर्चा में इष्ट-देवी के रूप में ग्रहण कर लिया। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने अपने ग्रंथ में लिखा है—"राधा की, कृष्ण के साथ देवता के रूप में आराधना का मूल कारण अभी तक विद्वानों ने यही निश्चित किया है कि राधा आभीर जाति की प्रेमदेवी थीं, उनकी उपासना शृंगार प्रेम के मार्ग से आभीरों में प्रचलित थी। आर्यों ने इसके मोहक स्वरूप पर रीझकर जैसे बालकृष्ण को अपना उपास्य बनाया वैसे ही कालान्तर में राधा को भी अपनी पूजा में ग्रहण किया।[2]

(ख) ज्योतिष शास्त्र और राधातत्त्व

कुछ पंडितों का ऐसा विचार है कि राधातत्त्व में कोई धर्म तत्व नहीं था वरन् यह मूलतः एक ज्योतिष तत्त्व है। श्री योगेशचन्द्र राय ने कृष्ण को सूर्य का

---

[1] राधावल्लभ संप्रदाय : 'सिद्धांत और साहित्य' पृ० १७६—डा० विजयेन्द्र स्नातक। [2] राधा वल्लभ संप्रदाय : 'सिद्धांत और साहित्य' पृ० १७६—डा० विजजेन्द्र स्नातक।

अवतार सिद्ध करते हुए राधातत्त्व को भी ज्योतिष का ही अंग माना है।[1] श्रीकृष्ण सूर्य हैं तथा व्रज के अन्य गोपगण तारे हैं। राधा का वर्णन श्रीकृष्ण के साथ रासलीला प्रसंग में आता है। ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार यह लीला नक्षत्र-मण्डल की संपूर्ण गति है। राधा विशाखा नक्षत्र हैं। विशाखा और अनुराधा नामक दो नक्षत्रों का कृष्ण-यजुर्वेद में वर्णन आता है। अथर्ववेद में 'राधा-विशाखे' पद में राधा का विशाखा अर्थ में स्पष्ट ही वर्णन है। राधा वृषभानु की पुत्री कही जाती हैं—इसका तात्पर्य है, वृष राशि की किरण। श्रीकृष्ण की पत्नियों के नाम भी नक्षत्र-परक हैं। अतः राधा का यह समस्त प्रबंध ज्योतिष-शास्त्र पर निर्भर है।

किन्तु ज्योतिषशास्त्र के आधार पर जो यह छान-बीन की गई है, वह सर्वथा अप्रामाणिक है। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है—"ज्योतिष शास्त्र की पदावली के साम्य पर जो अनुसंधान किया गया है वह सर्वथा अप्रामाणिक न होने पर भी 'राधा' के स्वरूप विकास में स्वीकार्य नहीं हो सकता, हम इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं। विगत डेढ़ सहस्र वर्षों से राधातत्त्व भक्ति क्षेत्र का आराध्य तत्त्व रहा है, अतः उसे नक्षत्र-विद्या तक सीमित करने का दुस्साहस हम नहीं करना चाहते।[2]"

(ग) आलवार भक्तों द्वारा राधा का संकेत

राधा का साक्षात् वर्णन आलवारों ने नहीं किया है, किन्तु अनुमान लगाया जाता है कि पाँचवीं-छठी शताब्दी में दक्षिण आलवार वैष्णवों में राधाकृष्ण युगल केलि विनोद का रूप अवश्य था। वैष्णव आलवार भक्तों का काल ईसा की पाँचवीं शती के मध्य स्थिर किया जाता है। आलवार भक्त अपने को नायिका मानते थे और श्रीकृष्ण को ही पुरुष मानकर पूज्य देवता मानते थे। इन भक्तों के कृष्णलीला सम्बन्धी लगभग चार हजार पद पाये जाते हैं। इनमें कृष्ण के साथ उनकी एक प्रमुख गोपी का भी वर्णन है। इस गोपी का नाम (नाप्पिनाई) है। कल्पना की जाती है कि यह राधा ही हैं। इसके अतिरिक्त कृष्ण-लीला के अन्तर्गत (कुरवैकुट्ट) नामक तामिल नृत्य का भी उल्लेख है। यह भी

---

[1] भारतवर्ष (पत्र) माघ १३४० बंगाब्द। [2] राधा वल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, पृ० १८१—डा० विजयेन्द्र स्नातक।

रासलीला का समकक्ष प्रतीत होता है; किन्तु 'राधा' और 'रासलीला' नाम कहीं भी नहीं आये हैं।

(घ) संस्कृत-साहित्य में राधा का उल्लेख

पुराणों से पूर्व अनेक साहित्यिक ग्रन्थों में राधा का उल्लेख श्रीकृष्ण के साथ संयुक्त देवी के रूप में हुआ है। हाल की 'गाहा सतसई' (ईसा की प्रथम शताब्दी) में कृष्ण की ब्रजलीला के सम्बन्ध में अनेक पद हैं। एक पद में स्पष्ट रूप से राधा का उल्लेख है। इसमें राधा कृष्ण को मधुर रूप में चित्रित किया गया है।

मुहमारुएण तं कह्रूण गोरअं राहि आएं अवठोन्तो।
एताणं बलवीणं आण्णाणं वि गोरअं हरसि ॥[1]

हे कृष्ण, तुम मुख मारुत के द्वारा राधिका के (मुँह में लगे) गोरज (धूलि) का अपनयन करके इन वल्लभियों तथा दूसरी सभी नारियों के गौरव का हरण कर रहे हो।

कवि भट्टनारायण कृत वेणीसंहार (रचना काल ८वीं शताब्दी) के नान्दी-श्लोक में कालिन्दी-जल में रास के समय केलिकुपिता अवकलुषा राधिका और उनके लिए किये गये कृष्ण के अनुनय का उल्लेख है।[2]

इसके बाद आनन्दवर्द्धन के अलंकार ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' में राधा कृष्ण के विषय में एक प्राचीन श्लोक का उद्धरण दिया गया है। इस श्लोक में प्रवासी कृष्ण वृन्दावन से आये सखा से पूछ रहे हैं—"हे भद्र, उन गोप बंधुओं के विलास सुहृद् और राधा के गुप्त साक्षी कालिन्दी तटवर्ती लतागृह कुशल से तो हैं न। स्मरशय्याकल्पनविधि के लिए तोड़ने की आवश्यकता न रहने के कारण लगता

---

[1] 'गाहा सतसई' २, १२० निर्णय सागर संस्करण, बम्बई।

[2] कालिन्द्याः पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रसं,
गच्छन्तीमनुगच्छतीऽश्रुकलुषां कंसद्विषो राधिकाम्।
तत्पादप्रतिमानिवेशित पदस्योद्भूतरोमोद्गते,
रक्षुन्नोनुनयं प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातुः वः।
—वेणीसंहार, अ० १, दृश्य १

है, अब वे पल्लव सूखकर विवर्ण होते जा रहे हैं।[1]" 'ध्वन्यालोक' में ही एक और पद उद्धृत है जिसमें राधा का वर्णन है। यह पद ईसा की दसवीं और ग्यारहवीं सदी के प्रसिद्ध आलंकारिक कुंतक के 'वक्रोक्ति-जीवित' अलंकार ग्रंथ में भी उद्धृत किया गया है। इस श्लोक में राधा का श्रीकृष्ण के वस्त्र पहनकर और कालिंदी तटकुंज की मंजुल लताओं से लिपटकर उत्कंठापूर्वक गद्गद कंठ से कृष्ण के विरह में गान का उल्लेख है।[2]

त्रिविक्रम भट्ट ने अपने 'नल-चम्पू' (दसवीं शती) में श्रीकृष्ण चरित वर्णन के संदर्भ में राधा की कला-कुशलता का वर्णन किया है। 'नल-चम्पू' के एक श्लोक का अर्थ इस प्रकार लगाया जा सकता है—"कला कौशल में चतुर राधा परम पुरुष मायामय केशिहन्ता के प्रति अनुरक्त हैं।[3]"

दसवीं शताब्दी के 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' में भी राधा सम्बन्धी कई श्लोक मिलते हैं। इससे यह मालूम होता है कि दसवीं शताब्दी में राधा नाम अनेक रूपों में साहित्य में प्रचलित हो गया था। क्षेमेन्द्र ने अपने 'दशावतार चरित' में राधा का वर्णन करते हुए राधा कृष्ण के श्रृंगारपरक भाव को व्यक्त किया है। हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' में राधा-विषयक दो श्लोक मिलते हैं। ये किसी प्राचीन कवि के हैं। शारदा-तनय ने अपने 'भाव विलास' ग्रंथ में एक नाटक का उल्लेख किया है जिसका नाम 'रामा राधा' है और वह राधा से ही सम्बद्ध है।

तेरहवीं शताब्दी तक आते-आते राधा कृष्ण के प्रिया-प्रियतम का या परिणीता के रूप स्पष्ट रूप से काव्य में आने लगे।

---

[1] तेषां गोपवधूविलाससुहृदां राधारहः साक्षिणां,
क्षेमं भद्र कलिन्दराजतनया तीरे लतावेश्मनाम्।
विच्छिन्ने स्मरतल्पकल्पनविधिच्छेदोपयोगेऽधुना,
ते जाने जरठीभवन्ति विगलन्नीलत्विषः पल्लवाः। —ध्वन्यालोक

[2] याते द्वारावतीं पुरीं मधुरिपौ तद्वस्त्रसंव्यान या,
कालिन्दी तटकुंजमंजुललतामालंब्य सोत्कंठया।
उद्गीतं गुरुवाष्पगद्गदगलतारस्वरं राधया,
येनान्तर्जलचारिभिः जलचरैरुत्कंठमाकूजितम्। —ध्वन्यालोक

[3] शिक्षितवैदग्ध्यकला पराध्यात्मिका परपुरुषे मायाविनिकृतकेशिवेऽधरागं बध्नाति—नलचम्पू।

(ङ) जयदेव के गीतगोविन्द में राधा

बारहवीं शताब्दी में आकर हम राधा के आधार पर पूर्ण विकसित काव्य 'गीत गोविन्द' पाते हैं। राधा को काव्य के माध्यम से भक्ति-क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने का श्रेय जयदेव को ही दिया जाता है। इस मधुर काव्य में भक्ति का वह रूप है जो पाठकों को यमुना पुलिन के निकुंजों में होने वाली राधा कृष्ण की प्रेम-क्रीड़ाओं-सा आनन्द देता है। कवि ने काव्य में आदि से अन्त तक राधा के रूप-सौन्दर्य-वर्णन पर ध्यान रखा है। यहाँ राधा प्रेमिका नायिका के ही रूप में चित्रित हैं। परम्परा से तो जयदेव को परकीया-भाव का साधक माना जाता है; किंतु स्थूल श्रृंगार-लीला के वर्णन में जयदेव स्वकीया-नायिका का ही चित्रण करते दिखाई पड़े हैं। सम्भवतः स्वकीया नायिका का वर्णन जयदेव ने ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के उन अंशों के आधार पर किया है जिनमें राधा का स्वकीयात्व स्पष्टरूप में वर्णित है। किन्तु कुछ विद्वान् ब्रह्मवैवर्त्त पुराण को गीत गोविन्द से बाद की रचना मानते हैं और इस पर गीत गोविन्द का ही प्रभाव भी देखते हैं।

जयदेव ने राधा को शक्ति या महालक्ष्मी का कोई रूप नहीं दिया। राधा केवल प्रेमिका नायिका के रूप में ही आती हैं। जयदेव के गीतों ने राधा को काव्य और भक्ति दोनों क्षेत्रों में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित किया है।

(च) पुराण साहित्य में राधा

विविध पुराणों के विविध प्रसंगों में राधा का उल्लेख मिलता है। राधा-भक्ति का प्रादुर्भाव और प्रचार चाहे जिस युग में हुआ हो किन्तु उसका जो विशद और व्यापक प्रचार हुआ है, वह पुराणों द्वारा ही माना जाता है। यद्यपि संस्कृत-साहित्य के काव्य, व्याकरण, कथा-आख्यान आदि में राधा का उल्लेख है किन्तु उसका स्वरूपाख्यान और सर्वांगीण वर्णन नहीं है। राधा के आध्यात्मिक और दार्शनिक स्वरूप का वर्णन भी पुराणों से पहले नहीं मिलता। विष्णु की शक्ति के रूप में राधा का वर्णन सर्वप्रथम पुराणों में ही मिलता है।

वैष्णव-साधना का पूर्व आधार भागवतपुराण माना जाता है किन्तु लक्षणीय बात यह है कि इसमें कहीं भी राधा नाम उपलब्ध नहीं होता। लेकिन फिर भी गौड़ीय गोस्वामियों ने भागवत में ही राधा का आविष्कार किया है। भागवत के दसवें स्कंध में रासलीला के प्रकरण में कृष्ण की एक प्रिय गोपी का वर्णन है जिसे आधार बनाकर राधा का संधान किया जाता है। रासमंडल में कृष्ण

अपनी इसी प्रियतमा गोपी को लेकर अदृश्य हो गये। तब कृष्ण को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते विरहातुरा गोपियों ने वृन्दावन के एक बन में श्रीकृष्ण के पदचिह्न के साथ एक और ब्रजबाला का पदचिह्न देखा और इस परम सौभाग्यवती कृष्ण की प्रियतमा को लक्ष्य करके कहा था :—

> अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
> यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतोमामनयद्रह ॥

इस श्लोक के 'अनयाराधितो' पद की व्याख्या श्रीसनातन गोस्वामी ने 'वैष्णवतोषिणी' टीका में करते हुए राधा का संकेत ग्रहण किया है। कृष्णदास कविराज ने भी सनातन गोस्वामी का अनुगमन करते हुए राधा का अस्तित्व इसी पद में स्वीकार किया है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इसकी व्याख्या में कहा है—"नूनं हरिरयं राधितः राधां इतः प्राप्तः" और इस प्रकार राधा से उसका सम्बन्ध जोड़ा है।

प्रोफ़ेसर विल्सन राधा के स्वरूप निर्धारण में ब्रह्मवैवर्त पुराण का आश्रय लेकर राधा की शक्ति का कृष्णनिष्ठ होना सिद्ध करते हैं। उनकी दृष्टि में राधा कृष्ण की प्रेयसी हैं[१] और उनका यह भी विश्वास है कि हिन्दू-भक्ति सम्प्रदायों में राधा की उपासना का उदय काफी अर्वाचीन है। प्रोफ़ेसर विल्सन ने महाभारत और पुराणों की राधा में भेद करते हुए पौराणिक काल की राधा को जिसका नाम भागवत में नहीं है, कालक्रम से बाद में निर्मित ब्रह्मवैवर्त की देन कहा है।[२]

---

१ Radha the favourite mistress of Krishna is the object of adoration to all the sect who worship that deity and, not unfrequently obtains a degree of preference that almost throws the character from whome she derives her importance into the shade. Hindu Religions by prof. H. H. Wilson, page 113.

(Radha continued to reside with Krishna in Golok where she gave origin to gopies, on her female companions and received the homage of all divinties.,—Ibid—page 114.

२ The adoration of Radha is a most undoubted innovation in the Hindu creed, and one of very recent origin...Even the Bhagwat makes no Particular mention of her amongst the gopies of Vrindavan, and we must look to the Brahma Vaivarta Puran as the chief authority of a classical character on which the presentations of Radha are founded.—Hindu Religions—Prof H. H. Wilson—Page 113.

प्रसिद्ध अंग्रेज् विद्वान् जे० एन० फर्कुहर ने राधा का उद्भव और राधा भक्ति का प्रारम्भ भागवत पुराण से ही माना है। भागवत पुराण में राधा का नाम नहीं आया है किंतु प्रधान गोपी के रूप में जिसका वर्णन है, वही 'राधा' है। इसलिए यह हो सकता है कि उसी समय से राधा का भक्ति के क्षेत्र में प्रवेश हुआ है। राधा नाम सर्वप्रथम कहाँ से आया, यह अज्ञात है। राध् धातु का अर्थ 'प्रश्न करना' होने से आपने राधा नाम की कल्पना को मान लिया है।[१]

मौनियर विलियम्स ने वैष्णव-भक्ति का उल्लेख करते हुए राधा-कृष्ण की उपासना को पौराणिक साहित्य से ही उद्भूत माना है। आपने राधा का स्वरूप कहीं भी स्थिर नहीं किया, किंतु राधा को उन्होंने "मानवात्मा की उस इच्छा का प्रतीक माना है जो सतत परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करने की होती है।" आपने राधा को कृष्ण की स्वामिनी लिखा है और दोनों की एक साथ उपासना करने के विधान की ओर संकेत किया है।[२]

वृन्दावन लीलाओं में श्रीकृष्ण के प्रति चार प्रकार का प्रेम वर्णित है—(१) सेव्य-सेवक प्रेम, (२) मैत्रीभावपूर्ण प्रेम, (३) मातृत्व का वात्सल्यभाव-पूर्ण प्रेम, (४) गोपियों का माधुर्य शृङ्गार परिपूर्ण कांताभाव प्रेम। चतुर्थ कोटि का प्रेम भागवतपुराण में गोपियों की रासलीला में व्यक्त हुआ है। यह रासलीला

---

१ We have seen above in the Bhagwat Puran there is a Gopi whome Krishna favours so much as to wander with her alone, and that the rest of the gopies surmise that she must have worshipped Krishna with peculiar devotion in a previous life to have thus won his special favour. This seems to be the source whence Radha arose, and it is probable that name Radha comes from the root, in the sense of conciliating, pleasing. She is thus pleasing one. In what book she first appears is not yet known.—An outline of the Religious Literature of India, J. N. Faruqhar, page 237.

२ 'Kriahna and Radha, as typical of the longing of the human soul for union with the divine......'

'Worship of the goddoss Radha in conjunction with Krishna.' Religious Thought & Life in India, Part I Monier williams, Page 146-147.

वर्णन ही गोपियों के माध्यम से राधा को कृष्ण के साथ जोड़ देता है। किंतु भागवतपुराण के अध्ययन से यह पता चलता है कि इस पुराण के रचनाकाल तक राधा को उस स्थान की प्राप्ति नहीं हुई थी जो बाद के भक्ति-सम्प्रदायों में दिखाई पड़ती है।

विष्णु पुराण के पंचम अंश के अट्ठाइसवें अध्याय में भी रासलीला का वर्णन हुआ है, किन्तु वहाँ भी राधा का नाम नहीं आया है। भागवतपुराण तथा विष्णुपुराण दोनों में राधा का नाम न आना इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि इन दोनों के रचनाकाल तक राधा को प्रमुखता नहीं मिली थी। ब्रह्मवैवर्त्त, पद्म और वाराह पुराणों में राधा का वर्णन है। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में राधा का विशद व्यापक वर्णन है। इस पुराण के ब्रह्मखंड, प्रकृति खंड और कृष्णजन्मखंड में राधा का वर्णन पहले अधिक विस्तारपूर्वक हुआ है। अनेक स्थलों पर मूलकथा का ध्यान न रहकर राधा की कथा ही मुख्य प्रतीत होने लगती है। पद्मपुराण में राधा का वर्णन इतना विस्तृत नहीं है।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है कि राधा कृष्ण को प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं—

प्राणाधिके राधिके त्वं श्रूयतां प्राणवल्लभे।
प्राणाधि देवि प्राणेश प्राणाधारे मनोहरे॥[1]

एक स्थान पर राधा को कृष्ण की शक्ति कहा गया है।[2] एक अन्य स्थान पर राधा का कृष्ण से अभिन्न सम्बन्ध बताया गया है। श्रीकृष्ण राधा से कहते हैं—"तुममें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है, जैसे, दूध में सफेदी रहती है और अग्नि में गर्मी रहती है, पृथ्वी में सुगन्ध रहती है वैसे ही मैं सदैव तुममें ही रहता हूँ। जैसे कुम्हार या सुनार एक बर्तन या कर्णफूल मिट्टी या सोने के बिना नहीं बना सकता वैसे ही मैं भी तुम्हारे बिना कुछ नहीं बना सकता। तुम संसार की आधार और मैं कारण हूँ।"[3]

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में एक स्थान पर 'राधा' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए उसका माहात्म्य प्रतिपादित किया गया है। रकार का उच्चारण करोड़ों जन्मों के

---

[1] ब्रह्मवैवर्त्त पु०, कृष्ण जन्म खंड, ४०, ११ [2] ब्रह्मवैवर्त्त पु० कृष्ण जन्म खंड [3] ब्रह्मवैवर्त्त पु०, कृष्ण जन्म खंड, १५

अंधे शुभ और अशुभ कर्मफलों को नष्ट करता है। आकार गर्भवास, मृत्यु और रोगादि से छुड़ाता है। धकार आयु की हानि से बचाता है और आकार भव-बंधन से मुक्त करता है। इसी प्रकार राधा नाम के और भी अर्थ-माहात्म्य अनेक स्थलों पर वर्णित हैं। इनको पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन युग में राधा को ही सर्व शक्तिशालिनी मानकर पूजा-उपासना प्रचलित हो गई थी।[1]

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के ब्रह्म खंड के पंचम अध्याय में राधा की उत्पति का विस्तृत वर्णन है। यह उत्पत्ति अप्राकृतिक शैली से वर्णित हुई है, अतः उसको किसी वैज्ञानिक या ऐतिहासिक कसौटी पर परखना कठिन है। राधा की उत्पत्ति की इस कथा में लिखा है कि "गोलोक में श्रीकृष्ण के पार्श्व से एक कन्या उत्पन्न होकर उनकी पूजा में संलग्न हो गई। यह कन्या श्रीकृष्ण से उत्पन्न हुई, अतः उसे श्रीकृष्ण के प्राण से उत्पन्न माना गया और इसीलिए श्रीकृष्ण की प्राणेश्वरी कहा गया। उत्पन्न होते ही उस कन्या ने अपूर्व सौन्दर्यशाली रूप ग्रहण कर लिया और अपने शरीर के रोम-कूपों से असंख्य सौन्दर्यमयी गोपियाँ उत्पन्न कीं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण ने भी अपने रोम-कूपों से असंख्य गोप और गौएँ उत्पन्न कीं। यह समस्त उत्पत्ति गोलोक में रासलीला के समय हुई थी, इसलिए उसे दिव्य और नित्य माना गया है।[2]"

यही गोलोक की राधा वृन्दावन धाम में अवतीर्ण हुईं। यहाँ भी राधा को

---

[1] रेफोहि कोटि जन्मान्धं कर्मयोग शुभाशुभम्।
आकारो गर्भवासं च मृत्युं च रोगमुत्सृजम्॥
धकारमायुसीहानिः आकारो भवबन्धनम्।

× × ×

रेफोहि निश्चलां भक्तिं दास्यं कृष्णपदाम्बुजम्।
सर्वेक्षितं सदानन्दं सर्वसिद्धौघमीश्वरम्॥
धकारः सहवासंच तत्तुल्यं कालमेत च।
ददाति यार्ष्णि सारूप्यं तत्वज्ञानं हरेः स्वयम्॥
आकारस्तेजसोराशि दानशक्तिं हरौ यथा।
योगशक्ति योगमति सर्वकालं हरिस्मृतम्॥

—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, कृष्ण जन्म खण्ड, अ० १३

[2] ब्रह्मवैवर्त्त पु०, ब्रह्म खंड, अध्याय ५

रासपरायण ही चित्रित किया गया है। रमण की इच्छा से राधा धावन करती श्रीकृष्ण के समीप पहुँची, इसी कारण उसका नाम 'राधा' पड़ा। इसी प्रसंग में राधा के व्रज में अवतीर्ण होने का कारण श्रीदामा का शाप भी बताया गया है। इसके अतिरिक्त 'राधा वाराहकल्प' में लिखा है कि राधा गोकुल में वैश्ववर वृषभानु गोप की कन्या के रूप में पैदा हुई थीं। इसके साथ ही राधा का रायाण नामक वैश्य के साथ विवाह का भी उल्लेख है। इस विवाह को अलौकिक रूप देने के लिए यह भी लिखा है कि राधा अपनी छाया को वृषभानुसुता में रख गई, और फिर इसी छाया राधा के साथ रायाण वैश्य का विवाह हुआ। राधा स्वयं श्रीकृष्ण के पास रहती थीं। इस प्रकार की आख्यानमूलक कथाओं से राधा को अलौलिक रूप दिया गया है।[1]

पद्मपुराण में एकाधिक स्थल पर राधा का नाम है। रूपगोस्वामी ने अपने 'उज्ज्वल नीलमणि' ग्रंथ में और कृष्णदास कविराज ने अपने 'चैतन्य चरितामृत' में पद्मपुराण से राधा नाम का उल्लेख किया है। किंतु आजकल प्रचलित पद्मपुराण में अनेक स्थानों पर राधा नाम का उल्लेख है। पद्मपुराण के पाताल-खंड में एक स्थान पर लिखा है—"जो सृष्टि, स्थिति व अन्तरूपा है व विद्या, अविद्या, वेदत्रयी रूपिणी है व स्वरूपा, शक्तिरूपा, मायारूपा, चैतन्यमयी है, वह ब्रह्मा, विष्णु शिव आदि के देहों के कारणों की भी कारण है व जिनकी माया से यह चराचर जगत् सदा परिरम्भित रहता है, उनका वृन्दावनेश्वरी राधिका नाम है। जो ब्रह्म की भी कारणरूपा हैं, उन्हीं राधा को आलिंगन किये हुए वृन्दावन के ईश्वर वृन्दावन में बसते हैं।[2]" इसी पातालखंड में राधा के कितने ही प्रकार से अनेक अन्य उल्लेख मिलते हैं। इस खंड के अड़तीसवें अध्याय में सहस्रपत्र कमल गोकुलाख्य महद्धाम और इस कमल के किस दल में कृष्ण की कौन-सी लीलाभूमि है, इस विशद वर्णन के पश्चात् कहा गया है। उस कृष्ण की प्रिया आधा प्रकृति राधिका ही कृष्णवल्लभ हैं, इसके अतिरिक्त पद्मपुराण के उत्तराखंड प्रकरण में राधाष्टमी व्रत का वर्णन करते हुए राधा-पूजन का महत्त्व विस्तार से वर्णित है। यद्यपि यह वर्णन भावनापरक है, फिर भी परवर्ती राधा पूजा अथवा भक्ति में जिस रूप में गृहीत हुआ वह लौकिक ही बन गया।[3] इस प्रकार आजकल उपलब्ध पद्मपुराण में राधा का वर्णन अनेक

[1] ब्रह्मवैवर्त्त पु०, प्रकृति खंड, अध्याय ४, ८५ [2] पद्मपुराण, पाताल खण्ड, ७६, १५-१७ [3] पद्मपुराण, उत्तराखण्ड, राधाष्टमी व्रत प्रकरण, अ० १६२, १६३

स्थलों पर है। यदि राधा का वर्णन उस काल में भी पद्मपुराण में इतना विशद होता तो रूपगोस्वामी और कृष्णदास कविराज अवश्य ही और भी सामग्री का चयन करते। वे एक ही श्लोक को क्यों खोज कर रह जाते। अतः यह अंश प्रक्षिप्त प्रतीत होता है, ऐसी कुछ विद्वानों की धारणा है। फर्कुहर के अनुसार इस पुराण का अधिकांश भाग सोलहवीं शती के बाद का है।[१]

(छ) तंत्र में राधा

पुराणों के अतिरिक्त 'राधा तंत्र' में भी राधा का वर्णन मिलता है। इसमें राधा की जो उद्भव कथा दी गई है, वह भी अलौकिक एवं अप्राकृतिक सिद्धान्त पर आधृत है। संक्षेप में कथा इस प्रकार है—"आम्नायरूपमाला में पद्मिनी नाम की माला ही राधा नाम से प्रसिद्ध हुई। पद्मिनी देवी डिम्ब रूप धारण कर कालिन्दी में आईं। उस डिम्ब को वृषभानु ने जल में तैरते देख उठा लिया और अपनी पत्नी कीर्तिदा को दिया। फिर उसी डिम्ब से राधा का आविर्भाव हुआ।[२]"

(ज) राधिकोपनिषद्

राधिकोपनिषद् में राधा के स्वरूप का वर्णन आध्यात्मिक प्रतीक के रूप में किया गया है। इसका सारांश डा० हरवंशलाल शर्मा ने अपने 'सूर और उनका साहित्य' ग्रंथ में इस प्रकार दिया है—

"उर्ध्वरेता सनकादि महर्षियों के द्वारा सर्वप्रथम देवता के पूछे जाने पर श्री ब्रह्माजी ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण ही परम देव हैं। ये छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण, गोप और गोपियों के सेव्य, श्री वृन्दावन देवी से आराधित और श्री वृन्दावन के अधीश्वर हैं। यही एकमात्र सर्वेश्वर हैं। वे श्रीकृष्ण प्रकृति से भी पुरातन और नित्य हैं। इनकी आह्लदिनी, सन्धिनी, ज्ञान, इच्छा, क्रिया आदि बहुत-, सी शक्तियाँ हैं। उनमें आह्लादिनी सर्वप्रधान है। यही परम अंतरंगभूत, श्रीराधा हैं। कृष्ण इनकी आराधना करते हैं, अथवा वे सर्वदा कृष्ण की आराधना करती हैं, इसलिए ये राधा कहलाती हैं। ये राधा और श्रीकृष्ण रससागरी श्री विष्णु के एक शरीर से ही क्रीड़ा के लिए दो हो गये हैं। इन राधिका ज

---

१ An outline of the Religious Literature of Indian-Faruqhor Page 232.

२ राधा तंत्र, पटल ७, ८

की अवज्ञा करके जो श्रीकृष्ण की आराधना करना चाहता है, वह मूर्ख है। सन्धिनी शक्ति, धाम, भूषण, शैया और आसनादि तथा मित्रों और भृत्यादिकों के रूप में परिणत होती हैं। ज्ञानशक्ति को क्षेत्रज्ञ शक्ति कहते हैं और इच्छाशक्ति अंतर्भूत माया शक्ति है। यह सत्व, रज और तमोगुण रूपा है तथा बहिरंग और जड़ हैं। क्रियाशक्ति को लीला-शक्ति कहते हैं।[1]"

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि राधिकोपनिषद् अर्वाचीन है। सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व की यह रचना नहीं हो सकती। जो राधा भाव सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में स्वीकार किया गया था, वही इसमें वर्णित है।

वास्तव में पौराणिक प्रभाव के फलस्वरूप ही राधा की उपासना मध्य-युगीन वैष्णव भक्ति में स्थान पा सकी है। इससे पहले कृष्ण-भक्ति में राधा को स्थान प्राप्त नहीं था।

झ) चंडीदास के काव्य में राधा

बंगाल के प्रसिद्ध कवि चंडीदास ने अपने काव्य में राधा का एक नवीन रूप उपस्थित किया है। चंडीदास ने राधा के जिस रूप की अवतारणा अपने काव्य में की है, वह अत्यधिक कोमल, करुण और भावुक है। वह किसी वासना की इच्छा द्वारा प्रेरित होकर श्रीकृष्ण के पास नहीं आई वरन् वह अपने अन्तर की प्रज्वलित अग्नि को ही शान्त करने अनजाने ही इन मार्ग पर आ पहुँची है। सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय की भावना से प्रभावित होकर चंडीदास ने भी परकीया-रूप से राधा का वर्णन किया है और कहा यह जाता है कि परकीया भाव में प्रेम अपनी चरम उत्कट स्थिति पर होता है, अतः सद्-असद् का विचार नहीं रहता। किन्तु चंडीदास की राधा में अतीव संयम दृष्टिगत होता है। परकीया होने पर भी उसे किसी और से, अपने विवाहित पति से भी लेशमात्र परिचय नहीं है। तभी तो वह कृष्ण को ही पति मानकर पुकार उठती है—"तुम मोर पति, तुम मोर पति, मन नाहिं आन भय।"

चंडीदास ने अपनी राधा में किसी गहन दार्शनिक भाव का भी आरोप नहीं किया है, अन्यथा उनके गीतों में प्रेम की ऐसी दिव्य छटा कदापि न मिलती। चंडीदास ने वियोगिनी राधा का जो रूप उपस्थित किया वह 'व्रजबुली साहित्य' का मेरुदंड है।

---

[1] सूर और उनका साहित्य, पृ० २६७—डा० हरबंशलाल शर्मा

चंडीदास की राधा एक विशुद्ध बंगाली कवि की मानस-प्रतिमा है—बंगाली कवि के चित्त में धृत प्रेम प्रतिमा है—प्रेम की प्रतिमा इस राधा को हम देखते हैं कि बंगाली कवि बंगाल को छोड़कर वृन्दावन नहीं चले गये, वृन्दावन की भूमि दूर से आकर क्षण-क्षण पर बंगाली कवि की मनोभूमि में प्रतिष्ठित हुई है। हमारे राधा प्रेम में प्राकृत कहीं भी अस्वीकृत नहीं हुई है—प्राकृत धीरे-धीरे दिव्य भूमि में उद्भासित हुई है।[1]

(ञ) विद्यापति के पदों में राधा

विद्यापति के काव्य का आधार जयदेव की कोमलकांत पदावली है। ये चंडीदास के समकालीन माधुर्य-भाव के कवि हैं। जयदेव ने अपने काव्य का प्रारम्भ राधा-कृष्ण की केलि से किया है किन्तु विद्यापति ने राधा को वयः संधि पर खड़ा करके मुग्धा-भाव का सुन्दर चित्र अंकित किया है। इस चित्रण के कारण विद्यापति की राधा में प्रेम की प्रखरता कम और विलास की मात्रा अधिक हो गई है।

विद्यापति और चंडीदास की राधा की तुलना कवि कुलगुरु रवीन्द्रनाथ ने इस प्रकार की है—"विद्यापति की राधिका में प्रेम की अपेक्षा विलास अधिक है, इसमें गम्भीरता का अटल स्थैर्य नहीं है, है केवल नवानुराग की उद्भ्रांत लीला और चांचल्य। विद्यापति की राधा नवीना है, नवस्फुटा है। हृदय की सारी नवीन वासनाएँ पंख फैलाकर उड़ना चाहती हैं, पर अभी मार्ग का बोध नहीं। कुतूहल और अनभिज्ञतावश वे जरा अग्रसर होती हैं, फिर सिकुड़े, आंचल की ओट में अपने एकांत कोमल घोंसलों में फिर आती हैं। कुछ व्याकुल भी हैं, कुछ आशा-निराशा का आन्दोलन भी है, किन्तु चंडीदास की राधा में जैसे "नयन चकोर, मोर जिते करे उतरोल" भाव नहीं है, कुछ-कुछ उतावलापन अवश्य है। नवीना का नया प्रेम जिस प्रकार मुग्ध मिश्रित, विचित्र और कुतूहलपूर्ण हुआ करता है उससे इसमें कुछ भी कमी नहीं है। चंडीदास गम्भीर और व्याकुल हैं, विद्यापति नवीन और मधुर। दिनेश बाबू कहते हैं—"विद्यापति वर्णित राधिका कई चित्रपटों की समष्टि हैं। जयदेव की राधा की भाँति इसमें शरीर का भाग अधिक है, हृदय का कम। परन्तु विरह में पहुँचकर कवि ने भक्ति और विरह का गान गाया है। उसके प्रेम में बँधी हुई विलास कलामयी राधा का चित्रपट सहसा सजीव हो उठा है। विद्यापति की राधिका बड़ी सरल, बड़ी अनभिज्ञा है।

[1] श्री राधा का क्रम विकास, पृ० ३१३—डा० शशिभूषणदास गुप्त

चंडीदास की राधा प्रथम ही उन्मादिनी वेश में आती हैं, प्रेम के मलय समीर में उनका विकास हुआ है। इसके बाद प्रेम की विह्वलता' कितना कातर अश्रुसंपात, कितना दुःखनिवेदन, कितनी कातरोक्ति, प्रेम के दुःख का परिशोध है अभिमान, किन्तु वह तो केवल आत्मवंचना है। चंडीदास की राधा में मान करने की क्षमता भी नहीं है। दसों इन्द्रियाँ तो मुग्ध हैं मन मान करे कैसे, यह अपूर्व तन्मयता है।[1]"

२—वैष्णव-भक्ति सम्प्रदायों में राधा

(क) चैतन्य-सम्प्रदाय में राधा

चैतन्य महाप्रभु के उद्भव काल में बंगाल, आसाम तथा बिहार में शाक्तमत का प्राबल्य था और शक्तिपूजा की आड़ में भीषण कृत्य हो रहे थे। चैतन्य देव ने उस समय कीर्तन, भजन और पद गा-गाकर चमत्कारपूर्ण परिवर्तन कर दिया। चैतन्य को राधा-भक्ति की जो परम्परा अपने से पहले के संस्कृत तथा "व्रजबुली" साहित्य से प्राप्त हुई थी, उसे उन्होंने पूर्ण रूप से स्वीकार किया और अपनी साधना द्वारा एक नवीन रूप देकर उसे व्यापक किया।

चैतन्य-संप्रदाय में राधा परकीया-कान्ताभाव से चित्रित की गई हैं। श्री रूपगोस्वामी ने अपने 'उज्ज्वल नीलमणि' और 'हरिभक्ति रसामृत सिन्धु' ग्रंथों में राधा का सांगोपांग विवेचन किया है। यह वर्णन परवर्ती माधुर्य भाव-परक भक्ति सम्प्रदायों में अनेक रूपों में स्वीकृत हुआ है।[2] परकीया-भाव के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विवाद भक्ति सम्प्रदायों में पाये जाते हैं। जीवगोस्वामी ने किस रूप में परकीया भाव को ग्रहण किया था और परवर्ती काल में वह क्यों स्वीकृत हुआ, यह भी विवाद का प्रश्न है। डा० शशिभूषणदास गुप्त अपने ग्रंथ में इस प्रश्न पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं :—

"जीव गोस्वामी के परवर्ती काल में परकीया परम तत्त्व के रूप में ही स्वीकृत हुआ है। परवर्ती काल के लेखकों ने जीव गोस्वामी को भी परकीयावादी सिद्ध करने की चेष्टा की है। हमने चैतन्य चरितामृतकार कृष्णदास कविराज के परकीया-मत का समर्थन की बात लिखी है। परवर्ती काल के पंडित विश्वनाथ ने

---

[1] सूर साहित्य, पृ० १०१, द्वितीय संस्करण—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

[2] उज्ज्वल नीलमणि, पृष्ठ ७५ से ९६, रूपगोस्वामी तथा हरि भक्ति-रसामृत सिन्धु, पृष्ठ ४२७ लहरी ५—रूप गोस्वामी।

भी अपनी दार्शनिक दृष्टि से इस परकीया मत को प्रकट और अप्रकट दोनों लीलाओं में ही एक समान प्रमाणित करने की चेष्टा की है। यदुनन्दन दास के नाम से प्रचलित कर्णानन्द ग्रन्थ में इस परकीयावाद की स्थापना जीवगोस्वामी का असल उद्देश्य है, यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। परवर्त्ती काल में स्वकीया-परकीयावाद के संबंध में वितर्क सभा हुई थी और उसमें युक्ति-तर्क के द्वारा परकीयावाद की ही प्रधानता स्थापित हुई थी, ऐसे कुछ तथ्यों का पता चलता है। इन तथ्यों की प्रामाणिकता संशयातीत नहीं है।

तत्त्व की दृष्टि के अलावा ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने से इस परकीयावाद की प्रतिष्ठा के बारे में दो प्रधान कारण मालूम होते हैं। पहला कारण बंगाल का वैष्णव धर्म और साहित्य, मुख्यतः राधा कृष्ण की प्रेमलीला का आलम्बन करके रस समृद्ध है। जयदेव के बाद चंडीदास और विद्यापति तथा उनके बाद के अगणित वैष्णव कवियों ने राधा-कृष्ण की सूक्ष्म असंख्य विचित्रताओं के साथ रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इन सभी काव्य-कविताओं के भीतर से राधा का परकीयापन साहित्य में इस तरह से प्रतिष्ठित हो गया था कि तत्त्व की दृष्टि से उसे अस्वीकार करने या केवल श्रद्धा से ढक रखने की सूरत नहीं थी। परकीया को केवल कायिक मान लेने से तो राधा-कृष्ण की प्रकट लीला (जो मुख्यतः वैष्णव-साहित्य का उपजीव्य है) प्राणहीन हो जाती।

लगता है कि राधा का आलम्बन करके इस परकीयावाद की प्रतिष्ठा के पीछे तत्कालीन एक विशेष प्रकार की धर्म-साधना का प्रभाव भी था—वह है नर-नारी के युगलरूप की साधना। हिन्दू तंत्र, बौद्ध तंत्र, बौद्ध सहजिया आदि के अन्दर से नर-नारी की युगल साधना की धारा प्रवाहित थी। वैष्णव सहजिया में आकर इस धारा ने एक विशेष रूप ग्रहण किया था। सहजिया-साधना में परकीया की इस प्रधानता ने परवर्ती काल में वैष्णव धर्म की राधा के परकीयापन विश्वास को और भी दृढ़ किया था, ऐसा प्रतीत होता है।[1]"

(ख) वल्लभ-सम्प्रदाय में राधा

वल्लभ सम्प्रदाय में रासलीला के प्रसंग में गोपियों के साथ, राधा का वर्णन हुआ है। रास लीला को आध्यात्मिक रूप देने के लिए कृष्ण को परमात्मा और गोपी (राधा) को आत्मा कहा जाता है। साथ ही रासलीला में गोपियाँ

---

[1] श्री राधा का क्रम विकास, पृष्ठ २३५-३६—डा० शशिभूषणदास गुप्त

रस की सृष्टि करनेवाली शक्ति की प्रतीक भी हैं। डा० दीनदयालु गुप्त ने वल्लभ-सम्प्रदाय में गोपी का स्वरूप स्थिर करते हुए लिखा है—"नित्य गोलोक में होनेवाले रसरूप कृष्ण के रास की गोपिकाएँ भगवान् की आनन्द प्रसारिणी सामर्थ्य शक्ति हैं। राधा भगवान् के आनन्द की पूर्ण सिद्धि शक्ति हैं। एक से अनेक भगवान् की इच्छा-शक्ति द्वारा अनेक अक्षर ब्रह्मरूप से सत् रूप जगत् और चित् रूप जीव, देवता आदि की उत्पत्ति हुई और स्वयं आनन्दस्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम रूप से गोप-गोपी आदि गोलोक की आनन्द रूप शक्तियों की उत्पत्ति हुई। कृष्ण धर्मी हैं और गोपिकाएँ उनका धर्म हैं। दोनों अभिन्न हैं, सिद्ध शक्ति राधा और कृष्ण का सम्बन्ध चन्द्र और चाँदनी का है। भगवान् की रस शक्तियों के बीच की रससिद्ध शक्ति राधा स्वामिनी रूपा हैं, भगवान् रस शक्तियों के बीच पूर्ण रस शक्ति स्वरूपा राधा के वश में रहते हैं।"[1] प्रस्तुत पंक्तियों में राधा-कृष्ण की अंशस्वरूपा शक्ति के रूप में उनका अभिन्न रूप मानी गई हैं।

अष्टछाप के सभी कवियों ने राधा और गोपियों का वर्णन ब्रह्मवैवर्त पुराण और भागवत पुराण के आधार पर किया है। गोपी भाव का दो रूपों में वर्णन है—(१) आनन्दविधायियी तथा सृष्टिकारिणी शक्तिरूपा गोपी, (२) कान्ता भाव से कृष्ण की भक्ति करनेवाली गोपी।

सूरदास ने राधा का वर्णन आध्यात्मिक रूप में भी किया है। सूर ने राधा को प्रकृति और कृष्ण को पुरुष मानकर कहीं-कहीं अभेद रूप से अद्वैत की भी स्थापना की है।[2] नन्ददास ने रास पंचाध्यायी में गोपियों की पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए उन्हें सिद्ध कोटि की पुनीत आत्मा कहा है—

धन्य कहत भई ताहि नाहिं कछु मन में कोपी,
निरमत सरजे सन्त तिननि चूरामनि गोपी।
इक नीके आराधे हरि ईश्वरवर जोई,
तातें अधर सुधारस निधरक पीवत सोई॥[3]

वल्लभाचार्य ने कृष्ण की दो शक्तियाँ मानी हैं। एक अन्तरंग और दूसरी बहिरंग। बहिरंग में आपने माया को स्थान दिया है और अन्तरंग में संधिनी और ह्लदिनी को रखा है। ह्लदिनी ही राधा हैं।

---

[1] अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० ५० ५, ६—डा० दीनदयालु गुप्त।
[2] सूरसागर दशमस्कंध, पद सं० १६२२ पृ० ८४२ ना० प्र० सभा, काशी।
[3] नन्ददास ग्रन्थावली रास पंचाध्यायी, अ० २, ना० प्र० सभा, काशी।

सूरदास ने राधा को परकीया नहीं माना है, परकीया-भाव अवश्य कहीं-कहीं आया है। अधिकतर वह स्वकीया के रूप में ही चित्रित हैं। वहाँ राधा मानवती और गौरवशालिनी चित्रित की गई हैं। यद्यपि कृष्ण दक्षिण नायक हैं लेकिन राधा फिर भी अनन्य भाव से उन्हीं का ध्यान करती हैं। मान के साथ खंडिता का भी वर्णन है।

भ्रमरगीत के पदों में वियोगिनी राधा का चित्र है। इसमें राधा का प्रेम मुखर न होकर अन्तर्मुख है। गोपियों ने उद्धव से कहा था—'अति मलीन वृषभानु कुमारी'—इस पद में राधा की शारीरिक और मानसिक स्थिति का बहुत ही सजीव वर्णन किया गया है।

(३) निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा

निम्बार्क-सम्प्रदाय के दशश्लोकी आदि ग्रन्थों पर आधारित दार्शनिक सिद्धान्तों में राधा की प्रधानता नहीं है। किन्तु आजकल तो निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा की पूर्ण प्रतिष्ठा है। इससे पता चलता है कि निम्बार्क-सम्प्रदाय में राधा का जो रूप आज स्वीकृत किया जाता है, वह प्रारम्भ में नहीं था।

निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा स्वकीया की भाँति वर्णित हैं। वास्तव में राधा-कृष्ण का नित्य दाम्पत्य संबन्ध है। यह दाम्पत्य अलौकिक और दिव्य होने के वर्णन का विषय नहीं बनता।

नित्यमेव हि दाम्पत्यं श्रीराधाकृष्णयोर्यतः।
पाणिग्रहणसम्बन्धो वर्ण्यते न च वर्ण्यते॥
रसत्वं रसिकत्वं च श्रीयुग्मे सुप्रतिष्ठितम्।
दाम्पत्यं च तयोर्नित्यं तथात्वे कारणं यतः॥[1]

शृङ्गार रस का इस सम्प्रदाय में बहुत महत्त्व है। इसलिए शृङ्गार के संयोग-पक्ष केलि आदि का दाम्पत्य प्रेम के अन्तर्गत पर्याप्त वर्णन हुआ है। श्री भट्ट द्वारा लिखित 'युगल-शतक' तथा हरि व्यास देवाचार्य प्रणीत 'महावाणी' में माधुर्य भक्ति देखने योग्य है। 'युगल-शतक'[2] के दोहों में राधा-कृष्ण का स्वरूप अधिक स्पष्ट रूप में वर्णित है। आजकल इस सम्प्रदाय में राधा-भक्ति को प्रमुखता मिली हुई है।

---

[1] श्रीयुग्मतत्त्व समीक्षा, दशम मयूख, पृ० २५२—भगीरथ झा 'मैथिल'।

[2] युगल शतक, प्रकाशक श्री ब्रजविहारी शरण, वृन्दावन—श्री भट्ट।

राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा

वल्लभ सम्प्रदाय आदि में जिस प्रकार सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म की 'ह्लादिनी शक्ति' का राधा नाम से व्यवहार किया जाता है, वैसा शक्ति और शक्तिमान् का भेद इस सम्प्रदाय में नहीं है। यहाँ राधा स्वयं आनन्द स्वरूप हैं। वह स्वयं नित्य भाव हैं। उनका विहार और रास भी नित्य है। वह कृष्ण की आराधिका और उपासिका नहीं, वरन् श्रीकृष्ण की ही उपास्या और आराध्या हैं। किन्तु दोनों प्रिया-प्रियतमा रूप हैं। दोनों एक ही हैं और एक होकर ही दो बने हुए हैं। परस्पर तत्सुखभाव से रसास्वादन के लिए नित्य प्रेम लीला करते हैं, विहार करते हैं और उसी में लीन रहते हैं। उनका साम्राज्य ही विचित्र है। ऐसी राधा की इस सम्प्रदाय में प्रमुखता है।[1]

श्री हितहरिवंश जी ने अपने 'हित-चौरासी' में राधा का जो चित्रण किया है, वह मुख्यतः तीन प्रकार का है। प्रथम प्रकार में वे पद आते हैं जो राधा के नेत्र, वदन, कपोल, अधर, वक्षस्थल, चरण आदि विभिन्न अंगों की रूप छवि प्रस्तुत करते हैं। दूसरे प्रकार के वे पद हैं, जिनमें राधा की मनःस्थिति का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। तीसरे प्रकार के पद रास-लीला सम्बन्धी हैं।

'हित चौरासी' के रूप छवि के वर्णन करनेवाले पदों में कवि ने राधा को "ब्रज नवतरुनि कदम्ब नागरी निरखि करति अधग्रीवा" कहा है, साथ ही रूप को व्यापक बनाने के लिए देवलोक, भूलोक और रसातल, कहीं भी उसकी समता नहीं पाई है।[2]

---

[1] यत्पादाम्बुरनैक रेणुकणिकां मूर्ध्नानिधातुं नहि,
प्रायुर्ब्रह्म शिवादयोप्यधिकृतिं गाप्येकभावाश्रयाः।
सापि प्रेमसुधा रसाम्बुधिनिधि राधापिसाधारणी,
भूता कालगतिक्रमेण वलिनाद्देवेव तुभ्यं नमः ॥७२॥ —राधासुधानिधि

[2] देखो भाई सुन्दरता की सींवां।
ब्रज नवतरुनि कदम्ब नागरी निरखि करत अध ग्रीवां।
जो कोऊ कोटि कल्प लगि जीवैं रसना कोटिक पावै॥
तऊ रुचिर वदनारविन्द की शोभा कहत न आवै।
देवलोक भूलोक रसातल सुनि कवि कुल मत डरियै।
सहज माधुरी अंग अंग की कहि कासे पट तरिए।
(जै श्री) हित हरिवंश प्रताप गुणरूप वय बलश्याम उजागर।
जाकी भ्रू विलास बस मधुरिव दिन विथकित रस सागर।
—हित चौरासी, पद संख्या ५२

राधा की मनःस्थिति का सूक्ष्म वर्णन करनेवाले पद 'हित चौरासी' में अनेक हैं। उदाहरण स्वरूप एक पद देखिए, जिसमें मोहन लाल के रस में विमोर राधा केलि-क्रीड़ा के बाद जिस आनन्द का अनुभव कर रही हैं वह उस आनन्दानुभूति के समान है जो श्रुतियों में अनिर्वचनीय मानी जाती है :—

मोहन लाल के रसमाती।
वधु गुपति गोवत कत मोसों प्रथम नेह सकुचाती।
देखि संभार पीत पट ऊपर कहाँ चूनरी राती।
टूटी तार लटकत मोतिन की नख विधु अंकित छाती।
अधर बिम्ब खंडित मणि मंडित गंड चलत अरुझाती।
अरुण नैन घूवत आलस जुत कुसुम गलित लटपाती।
आजु रहसि मोहन सब लूटी विविध आपुनी थाती।
हित हरिवंश वचन सुनि भामिनि भवन चली मुसकाती।[1]

[1] हित चौरासी, पद सं० २०

अध्याय ६

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में अवतार और उस पर पुराणों का प्रभाव

श्रीमद्भागवत में भगवान् के बाईस अवतारों की गणना की गई है[1] किंतु भगवान् के चौबीस अवतार कहे जाते हैं। बहुत से विद्वान् इन बाईस अवतारों के अतिरिक्त दो और अवतार हंस और हयग्रीव मानते हैं। इस प्रकार भगवान् के अवतारों की गणना चौबीस हो जाती है; किंतु वैष्णव पुराणों में भगवान् के बाईस अवतारों का ही वर्णन है। इनमें से बुद्ध अवतार तथा कल्कि अवतार के लिए भागवतपुराण में लिखा है कि ये अवतार भविष्य में होंगे, इनका वर्णन भी पुराणों में अधिक नहीं है, केवल बीस अवतारों का वर्णन पर्याप्त विस्तार से मिलता है। श्रीकृष्ण भक्ति-काव्य में केवल सत्रह अवतारों का वर्णन मिलता है जिनका परिचय आगे दिया गया है। लगभग सभी वैष्णव पुराणों में इन अवतारों का एक सा ही वर्णन है; किंतु श्रीमद्भागवत में पर्याप्त विस्तार से इनका वर्णन हुआ है।

श्रीमद्भागवत के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में भी भगवान् के अवतारों का वर्णन हुआ है, किंतु हिन्दी के कुछ ही कृष्णभक्त कवियों ने इन अवतारों का वर्णन किया है।

श्रीमद्भागवत तथा अन्य वैष्णव पुराणों में सबसे अधिक विस्तार से श्रीकृष्ण अवतार का वर्णन मिलता है। हिन्दी के कृष्णभक्ति-काव्य में भी श्रीकृष्ण अवतार का वर्णन सब अवतारों से अधिक विस्तार से हुआ है।

---

[1] सनकादि अवतार, नारद अवतार, नर-नारायण अवतार, कपिलदेव अवतार, दत्तात्रेय अवतार, यज्ञपुरुष अवतार, ऋषभदेव अवतार, पृथु अवतार, मत्स्य अवतार, कच्छप अवतार, धन्वन्तरि अवतार, नरसिंह अवतार, मोहनी अवतार, वामन अवतार, परशुराम अवतार, व्यास अवतार, रामावतार, बलराम अवतार, कृष्ण अवतार, बुद्ध अवतार, कल्कि अवतार—भाग०...१, ३

(१) श्रीकृष्ण अवतार

सूरदास ने कृष्ण अवतार की पूरी कथा श्रीमद्भागवत से ली है। वे स्वयं सूरसागर के दशम स्कंध के प्रारम्भ में यह बात स्वीकार करते हैं।[१] श्रीमद्भागवत के अनुसार ही पृथ्वी गौ का रूप धारण करके ब्रह्मा जी के पास जाती है और ब्रह्मा आदि विष्णु भगवान् की स्तुति करते हैं, तब विष्णु भगवान् उन्हें सान्त्वना देते हुए कहते हैं—"मैं शीघ्र ही असुरों को मारने के लिए अवतार लूँगा।"[२]

श्रीमद्भागवत में यह कथा पर्याप्त विस्तार के साथ दशम स्कंध के प्रथम अध्याय में दी गई है। इसी अध्याय में वसुदेव-देवकी का विवाह और कंस के द्वारा देवकी के छः पुत्रों की हत्या की कथा दी गई है।

सूरदास ने भी वसुदेव-देवकी के विवाह और देवकी के छः पुत्रों की हत्या की कथा ठीक भागवत पुराण के ही अनुसार दी है।[३]

श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के दूसरे अध्याय में भगवान् के गर्भ प्रवेश और देवताओं द्वारा उनकी गर्भ-स्तुति का वर्णन काफी विस्तार से हुआ है। सूरदास ने भी ठीक उसी प्रकार भगवान् के गर्भ प्रवेश का वर्णन और देवताओं द्वारा गर्भ-स्तुति करवाई है। फिर भागवत के अनुसार[४] ही कृष्ण-जन्म का वर्णन किया है। रोहिणी नक्षत्र में भगवान ने जन्म लिया—

> बुध-रोहिनी अष्टमी संगम, वसुदेव निकट बुलायौ।
> सकल लोक नायक सुखदायक, अजन जन्म धरि आयौ।[५]

जन्म लेने के पश्चात् भगवान ने अपनी माता को अपना अलौकिक रूप दिखाया—

> माथैं मुकुट, सुभग पीताम्बर, उर शोभित भृगु रेखा।
> संख-चक्र-गदा-पद्म विराजत, अति प्रताप शिशु भेषा।[६]

भागवत पुराण में भी भगवान् के अलौकिक रूप दिखाने का इसी प्रकार वर्णन है।[७]

---

[१] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० १, ना० प्र० सभा, काशी।
[२] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० ४, ना० प्र० सभा, काशी।
[३] सूरसागर दशम स्कंध, पद सं० ४, ना० प्र० सभा, काशी। [४] भाग० १०, ३ [५] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० ४, ना०प्र० सभा काशी। [६] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० ४, ना० प्र० सभा, काशी। [७] भा० १०, ३, ९-१०।

इसके पश्चात् वसुदेव जी श्रीकृष्ण को लेकर नंद के घर जाते हैं। वहाँ कृष्ण को यशोदा के पास छोड़ देवकी की कन्या (देवमाया) को उठाकर वापस चले आते हैं। प्रातः जब कंस को सूचना मिलती है तब वह उस कन्या को ही शिला पर पटकता है। लेकिन वह योगमाया उसके हाथ से छूटकर ऊपर आकाश में चली जाती है और कंस को सम्बोधित कर आकाशवाणी करती है कि "तुझे मारनेवाला तो व्रज में पहले ही उत्पन्न हो चुका है।"[1] भागवतपुराण में यह कथा बहुत विस्तार से दी गई है। सूरदास ने भी ठीक भागवतपुराण के अनुसार ही इसका वर्णन किया है।[2]

इसके पश्चात् गोकुल में भगवान का जन्म-महोत्सव मनाया जाता है। इसका वर्णन भागवतपुराण में पर्याप्त विस्तार से हुआ है।[3] सूरदास भी भागवतपुराण के अनुसार यह वर्णन करते हैं :—

जागी महरि, पुत्र मुख देख्यौ, आनंद तूर बजायौ।
कंचन कलस, होम, द्विज पूजा, चन्दन भवन लिपायौ।
बरन बरन रंग ग्वाल बने, मिलि गोपिन मंगल गायौ।
बहु विधि व्योम कुसुम सुर बरषत फूलनि गोकुल छायौ।
आनंद भरे करत कौतूहल, प्रेम-मगन नर-नारी।
निर्भय अगम निसान बजावत, देत महरि कौं गारी।
नाचत महर मुदित मन कीन्हें, ग्वाल बजावत तारी।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे, मथुरा-गर्व-प्रहारी।[4]

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं—बाल-लीला, असुर-संहार-लीला और रास-लीला आदि का वर्णन दशम स्कंध में पर्याप्त विस्तार से हुआ है। सूरदास ने भी सूरसागर के दशम स्कंध में इन लीलाओं का ठीक वैसा ही वर्णन किया है।

नन्ददास ने भी श्रीकृष्ण अवतार की कथा दशम स्कंध में पर्याप्त विस्तार से कही है। कवि का कहना है कि "मित्र के कहने से ही मैं संस्कृत 'भागवत पुराण' का भाषा में वर्णन करता हूँ।[5]" किन्तु ग्रन्थ पढ़ने से ज्ञात होता है

---

[1] भाग० १०, ४, [2] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० ४ ना० प्रा० सं०, काशी। [3] भाग० १०, ५। [4] सूरसागर, दशम स्कंध, पद सं० ४
[5] "तिन कही दशम स्कंध जु आहि, भाषा करि कछु बरनौ ताहि"—नन्ददास ग्रन्थावली, भाषा दशम स्कंध, प्रथम अध्याय।

कि यह ग्रन्थ 'श्रीमद्भागवत' का अक्षरश: अनुवाद नहीं है, भागवत पुराण का केवल भावानुवाद ही इसमें है।

इसमें कृष्ण अवतार की कथा ठीक भागवतपुराण जैसी ही दी गई है। पहले अध्याय में, कृष्ण अवतार के कारणों का वर्णन है। फिर मथुरा में कंस के वंश और राज्य का वर्णन किया गया है। दूसरे अध्याय में, देवकी के गर्भ में स्थित श्रीकृष्ण की ब्रह्मादिक देवताओं द्वारा की गई स्तुति में नन्ददास ने अपने कुछ धार्मिक विचारों का परिचय दिया है। श्रीमद्भागवत में भी यह स्तुति है ,परन्तु नन्ददास ने अपने साम्प्रदायिक विचार अधिक मिला दिये हैं। तीसरे अध्याय में, कृष्ण का जन्म-वर्णन है। श्रीमद्भागवत में भी यह विषय वर्णित है। चौथे अध्याय में, कंस का कुपरामर्श वर्णित है। भागवतपुराण में भी यही विषय है। पाँचवें अध्याय में, नंद के घर में कृष्ण जन्म के महोत्सव का वर्णन है। भागवतपुराण में भी इसी प्रकार यह वर्णित है। भागवतपुराण में तथा सूर आदि अन्य कवियों ने इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है किन्तु नन्ददास ने इसका वर्णन संक्षेप में किया है। छठे अध्याय में, कृष्ण का बाल-चरित्र वर्णित है। भागवत पुराण की कथानुसार शकटासुर और तृणावर्त्त-वध का भी इसमें वर्णन है।

इसी प्रकार भागवत पुराण के अनुसार ही उनतीसवें अध्याय तक नन्ददास ने भी श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन किया है। भागवतपुराण के दशम स्कंध में २६ से ३३ अध्याय तक रास-क्रीड़ा का वर्णन है। नन्ददास के उनतीसवें अध्याय में रास का पूरा वर्णन नहीं है। वेणुनाद सुनकर गोपियाँ कृष्ण के पास जाती हैं। कृष्ण उन्हें वापस घर जाने का उपदेश देते हैं। गोपियाँ भी अपने हठव्रत से नहीं टलतीं, तब कृष्ण उनके साथ रास-क्रीड़ा रचाते हैं। इतनी ही कथा 'दशम स्कंध भाषा' में कवि ने रखी है। आगे कृष्ण का छिपना, गोपियों का ढूँढ़ना और उनका दैन्य और अन्त में रास-क्रीड़ा आदि के प्रसंग जो नन्ददास की 'रास पंचाध्यायी' में हैं, इसमें नहीं दिये गये हैं। इस प्रकार कृष्ण अवतार की सम्पूर्ण कथा कवि ने भागवत पुराण के ही आधार पर लिखी है।

परमानन्द दास के काव्य का भी विषय श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन ही है। किन्तु उन्होंने श्रीकृष्ण अवतार का कारण और उनके जन्म का विशेष वर्णन नहीं किया है। कवि ने अपने काव्य का विषय कृष्ण की प्रेमपूर्ण

रसवती-ब्रज लीलाओं को ही बनाया है। उन्होंने कृष्णस्तुति, बाल-लीला, शयन-पालना, गोपीकृष्ण-परस्पर हास्य-विनोद, गोचारण, वनक्रीड़ा, पनघट-लीला, गोदोहन, दानलीला, गोपियों की आसक्ति अवस्था तथा उनकी प्रार्थना, युगल लीला के शृंगारिक चित्र, कृष्ण का मथुरा गमन, गोपी-विरह, भँवरगीत, आदि अनेक विषयों पर पद लिखे हैं।

(२) रामावतार

रामावतार का वर्णन हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में बहुत कम हुआ है। श्रीमद्भागवत के नवम स्कंध में रामावतार का वर्णन हुआ है। भागवत पुराण में शुकदेव जी रामावतार का वर्णन करते हुए कहते हैं—"देवताओं की प्रार्थना से साक्षात् परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि ही अपने अंशांश से चार रूप धारण करके राजा दशरथ के पुत्र हुए। उनके नाम थे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न।[1]"

सूरदास ने भी भागवतपुराण के अनुसार ही नवमस्कंध सूरसागर में रामावतार का वर्णन पर्याप्त विस्तार से दिया है। राम-जन्म का एक पद देखिये :—

> अयोध्या बाजति आजु बधाई।
> गर्भ मुच्यौ कौसिल्या माता, रामचन्द्र निधि आई।
> गावैं सखी परसपर मंगल, रिषि अभिषेक कराई॥
> भीर भई दसरथ कैं आँगन, सामवेद धुनि छाई॥
> पूछत रिषिहिं अजोध्या कौ पति, कहिये जनम गोसाईं।
> भौमवार, नौमी तिथि नीको, चौदह भुवन बड़ाई॥
> चारि पुत्र दसरथ कैं उपजे, तिहूँ लोक ठकुराई।
> सदा सर्वदा राज राम कौ, सूरदादि तहँ पाई॥[2]

नन्ददास ने रामावतार का विशेष वर्णन नहीं किया है। एक पद में वे राम और कृष्ण दोनों का साथ-साथ वर्णन करते हुए कहते हैं :—

> राम कृष्ण कहिए उठि भोर।
> ओहि अवधेश ओही ब्रज जीवन, धनुष धरन अरु माखन चोर।
> इतयें अयोध्या निर्मल सरजू, उत जमुना जल करत किलोल।

---

[1] भाग० ९, १०, २ [2] सूरसागर, नवम स्कंध, पद सं० १७

इतयें दशरथ पुत्र कहाये, उतयें कहाये नन्द किशोर।
इतयें कौसल्या गोद खिलावै, उतयें यशोदा झुलावैं हिंडोर[1]।

३—वाराह अवतार

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूरदास ने वाराह अवतार की कथा कही है। सूर ने यह कथा श्रीमद्भागवत से ली है। भागवतपुराण में वाराह-अवतार की कथा इस प्रकार दी गई है :—

"एक बार ब्रह्मा जी ने स्वायम्भुव मनु से कहा कि तुम अपनी इस भार्या शतरूपा से अपने ही समान गुणवती संतति उत्पन्न करके धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करो और यज्ञों द्वारा श्रीहरि की आराधना करो। प्रजापालन से मेरी बड़ी सेवा होगी और तुम्हें प्रजापालन करते देखकर भगवान् श्रीहरि भी तुमसे प्रसन्न होंगे। तब स्वायम्भुव मनु ने कहा कि हे पिता! मैं आपकी आज्ञा का पालन अवश्य ही करूँगा, किन्तु आप इस जगत् में मेरे और मेरी भावी प्रजा के रहने के लिए स्थान बतलाइये। सब जीवों का निवासस्थान पृथ्वी इस समय प्रलय के जल में डूबी हुई है। आप इसके उद्धार का प्रयत्न कीजिए। यह सुनकर ब्रह्माजी बहुत देर तक सोचते रहे कि पृथ्वी को कैसे निकालूँ। तभी उनके नाक के छिद्र से अकस्मात् अँगूठे के बराबर आकार का एक वाराह-शिशु निकला। वह देखते ही देखते बढ़कर हाथी के बराबर आकार का हो गया। तब वाराह भगवान् अपने बाण के समान पैने खुरों से जल को चीरते हुए उस अपार जलराशि के उस पार पहुँचे। फिर वे जल में डूबी हुई पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर लेकर रसातल से ऊपर आये और अपने खुरों से जल को स्तंभित कर उस पर पृथ्वी को स्थापित कर दिया और वे वाराह भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये।[2]"

विष्णुपुराण में भी वाराह-अवतार की कथा भागवतपुराण के समान ही दी गई है[3]। हिन्दी में कृष्ण भक्ति काव्य में केवल सूर ने ही इस अवतार का वर्णन किया है। हिन्दी के अन्य कृष्णभक्त कवियों ने वाराह-अवतार का वर्णन नहीं किया है। कवि ने यह कथा भागवतपुराण से ली है।

ब्रह्मा सौं स्वयम्भु मनु भयो, तासौं सृष्टि करन कौं कह्यो।
तिन ब्रह्मा सों कह्यौ सिर नाइ, सृष्टि करौं सो रहै किहिं भाइ।

---

[1] नन्ददास ग्रन्थावली, पदावली, पद सं० ३ [2] भाग० ३,१३
[3] विष्णु पु० १,१४

ब्रह्मा हरिपद ध्यान लगायौ तब हरि बपु बराह धरि आयौ।
ह्वै बराह पृथ्वी ज्यौं ल्यायौ सूरदास त्यौं ही सुक गायौ।[1]

हिन्दी के अन्य कृष्ण-भक्त कवियों ने वाराह अवतार का वर्णन नहीं किया है।

४—दत्तात्रेय अवतार

हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य के अन्तर्गत केवल सूरदास ने ही दत्तात्रेय अवतार का वर्णन किया है। कवि इसके लिए पूर्णरूप से श्रीमद्भागवत का ऋणी है।

श्रीमद्भागवत में दत्तात्रेय अवतार की कथा चतुर्थ-स्कंध के पहले अध्याय में पर्याप्त विस्तार से दी गई है। संक्षेप में यह इस प्रकार है :—

"जब ब्रह्माजी ने महर्षि अत्रि को सृष्टि रचने के लिए आज्ञा दी, तब वे अपनी सहधर्मिणी के सहित तप करने के लिए ऋक्ष नामक कुल पर्वत पर गये। उस समय वे मन ही मन यही प्रार्थना करते थे कि जो सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर हैं, मैं उनकी शरण में हूँ, वे मुझे अपने ही समान संतान प्रदान करें। तब ब्रह्मा, विष्णु और महादेव, तीनों जगत्पति उनके आश्रम पर आये। महर्षि अत्रि ने उनसे कहा कि मैंने जिनको बुलाया था, आप में से वे कौन महानुभाव हैं? क्योंकि मैंने तो संतान प्राप्ति की इच्छा से केवल एक का ही चिंतन किया था। फिर आप तीनों ने यहाँ पधारने की कृपा कैसे की? तब तीनों देवताओं ने कहा कि तुम जिस जगदीश्वर का ध्यान करते थे, वह हम तीनों ही हैं। तुम्हारे यहाँ हमारे ही अंश स्वरूप तीन पुत्र होंगे और तुम्हारे सुन्दर यश का विस्तार करेंगे।"

तत्पश्चात्, ब्रह्माजी के अंश से चन्द्रमा, विष्णुजी के अंश से योगवेत्ता दत्तात्रेय जी और महादेव के अंश से दुर्वासाऋषि अत्रि के पुत्र रूप में प्रकट हुए।

ठीक इसी प्रकार दत्तात्रेय अवतार का वर्णन सूर ने किया है। यह वर्णन भागवत पुराण के ही अनुसार है :—

अत्रि पुत्र हित बहु तप कियौ, तासु नारिहूँ यह व्रत लियौ।
तीनौं देव तहाँ मिलि आये, तिनसौं रिषि ये बचन सुनाए॥
मैं तो एक पुरुष कौं ध्यायौ, अरु एकहिं सौं चित लगायौ।

---

[1] सूरसागर तृतीय स्कंध, पद सं० १०, ना० प्र० सभा, काशी।

अपने आवन कौ कहौ कारन, तुम हौ सकल जगत-उद्धारन।
कह्यो तुम एक पुरुष जो ध्यायौ, ताकौ दरसन काहु न पायौ।
ताकी सक्ति पाइ हम करैं, प्रतिपालैं बहुरौ संहरैं।
हम तीनौं हैं जग करतार, माँगि लेहु हमसों बर सार।
कह्यो विनय मेरी सुन लीजै, पुत्र सुज्ञानवान मोहिं दीजै।
विष्णु अंस सो दत्तऽवतरे, रुद्र अंस दुर्वासा धरे।
ब्रह्मा अंस चन्द्रमा भयौ, अत्रिऽनुसूया कौं सुख दयौ।
यौं भयौ दत्तात्रेय अवतार, सूर कह्यौ भागवतऽनुसार।[१]

५—यज्ञपुरुष-अवतार

सूरदास ने यज्ञपुरुष अवतार का वर्णन ठीक श्रीमद्भागवत के अनुसार किया है।[२] हिन्दी के अन्य कृष्णभक्त कवियों ने इस अवतार का वर्णन नहीं किया है।

भागवत पुराण के चतुर्थ स्कंध में बहुत विस्तार से यज्ञपुरुष-अवतार की कथा दी गई है। संक्षेप में वह इस प्रकार है :—

"एक समय बिना निमंत्रण के सती अपने पिता दक्ष के यहाँ यज्ञ में गईं। वहाँ उनका बहुत अनादर हुआ। उन्होंने देखा कि उस यज्ञ में उनके पति भगवान् शंकर के लिए कोई भाग नहीं दिया गया है और पिता दक्ष उनका बहुत अपमान कर रहा है। यह देख सती को बहुत क्रोध हुआ और उसने वहीं अपना शरीर त्याग दिया। जब महादेव जी ने देवर्षि नारद से यह सुना कि अपने पिता द्वारा अपमानित होकर सती ने प्राण त्याग दिये हैं तो उन्हें बहुत क्रोध हुआ। उन्होंने तुरन्त अपनी एक जटा को उखाड़ कर पृथ्वी पर पटक दिया। उससे तुरन्त ही वीरभद्र नाम का एक लम्बा-चौड़ा विशालकाय पुरुष उत्पन्न हुआ। वह महादेव की आज्ञा पाकर दक्ष को और उनके यज्ञ को नष्ट करने चला। उसके साथ शिव के अन्य अनेक पार्षद भी गये। वीरभद्र ने अत्यन्त कुपित होकर दक्ष के सिर को यज्ञ की दक्षिणाग्नि में डाल दिया और उस यज्ञशाला में आग लगाकर, यज्ञ को विध्वंश करके वे कैलाश पर्वत को लौट गये।

---

[१] सूरसागर, चतुर्थ स्कंध, पद सं० ३, ना० प्र० सभा, काशी। [२] सूरसागर, चतुर्थ स्कंध, पद सं० ५, ना० प्र० सभा, काशी।

इस प्रकार जब दक्ष का यज्ञ नष्ट हो गया और देवता हार गये तो वे ऋत्विज और सदस्यों सहित बहुत ही डरकर ब्रह्माजी के पास पहुँचे और प्रणाम करके उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया। ब्रह्माजी ने कहा कि "तुम लोगों ने यज्ञ में भगवान् शंकर का प्राप्य-भाग न देकर उनका बड़ा भारी अपराध किया है। किंतु शंकरजी बहुत शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले हैं, इसलिए तुम लोग शुद्ध हृदय से उनके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न करो, उनसे क्षमा माँगो।" इस प्रकार समझाकर ब्रह्माजी अपने साथ देवताओं को लेकर कैलाश पर्वत पर गये। ब्रह्माजी के विनय करने पर महादेवजी प्रसन्न हुए। फिर सभी देवता और ऋषियों ने महादेवजी से दक्ष की यज्ञशाला में पधारने की प्रार्थना की और उन्हें लेकर ब्रह्मा जी सहित यज्ञशाला में आये। महादेवजी ने दक्ष को जीवित कर दिया। दक्ष ने महादेवजी से क्षमा-याचना की और ब्रह्मा जी के कहने पर यज्ञ आरम्भ हुआ। तब ब्राह्मणों ने यज्ञ सम्पन्न करने के उद्देश्य से रुद्रगण सम्बन्धी भूत-पिशाचों के संसर्ग-जनित-दोष की शांति के लिए तीन पात्रों में विष्णु भगवान् के लिए तैयार किये गये पुरोडास नामक चरु का हवन किया। उस हवि को हाथ में लेकर खड़े हुए अध्वर्यु के साथ यजमान दक्ष ने ज्यों ही विशुद्ध चित्त से श्रीहरि का ध्यान किया त्योंही सहसा भगवान् वहाँ प्रकट हो गये। इस प्रकार यज्ञपुरुष का अवतार हुआ।[1]"

(६) पृथु अवतार

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूरदास ने पृथु अवतार का वर्णन किया है। इसके लिए भी सूर श्रीमद्भागवत के ही ऋणी हैं। श्रीमद्भागवत में भगवान् के पृथु अवतार की कथा पर्याप्त विस्तार से दी गई है। संक्षेप में यह कथा इस प्रकार है :—

"भृगु आदि मुनियों ने जब देखा कि अंग के चले जाने से अब पृथ्वी की रक्षा करनेवाला कोई नहीं रह गया है तब उन्होंने माता सुनीथा की सम्मति से मन्त्रियों के सहमत न रहने पर भी बेन को शासक बना दिया। बेन बड़ा कठोर शासक था। राज्यासन पाने पर बेन अभिमानवश अपने को ही सबसे बड़ा मानकर महापुरुषों का अपमान करने लगा। उसने अपने राज्य में यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई भी द्विजाति वर्ण का पुरुष कभी किसी प्रकार का यज्ञ, दान

[1] भाग० ४,५

और हवन न करे और उसने सारे धर्म-कर्म बन्द करवा दिये। बेन का ऐसा अत्याचार देखकर सारे ऋषि-मुनियों को बहुत क्रोध आया और वे एक बार बेन को समझाने गये। किन्तु जब समझाने का कोई फल न हुआ तो उन्होंने बेन को मार ही डाला। राजा के मरते ही पृथ्वी पर डाकुओं आदि का उपद्रव बढ़ने लगा। तब ऋषियों ने सोचा कि राजा तो एक होना ही चाहिए। साथ ही धर्मात्मा अंग का वंश भी चलना ही चाहिए। तब उन्होंने मृत बेन की भुजाओं को मथा तो उसमें से एक स्त्री-पुरुष का जोड़ा प्रकट हुआ। ब्रह्मवादी ऋषि उस जोड़े को उत्पन्न हुआ देख और उसे भगवान् का अंश जान बहुत प्रसन्न हुए। ऋषियों ने कहा कि यह पुरुष अपने सुयश का प्रथम विस्तार करने के कारण परम् यशस्वी पृथु नाम का सम्राट् होगा और यह सुन्दरी पृथु को ही अपना पति बनायेगी। इसका नाम अर्चि होगा। पृथु के रूप में साक्षात् श्रीहरि के अंश ने ही संसार की रक्षा के लिए अवतार लिया है और अर्चि के रूप में, निरन्तर भगवान् की सेवा में रहनेवाली उनकी नित्य सहचरी श्री लक्ष्मी जी ही प्रकट हुई हैं।

इस प्रकार भगवान् का पृथु अवतार हुआ। एक समय उनके राज्य में अन्न का बहुत अभाव हुआ। तब प्रजा ने जाकर राजा पृथु से कहा। पृथु प्रजा का क्रंदन सुनकर बहुत देर तक विचार करते रहे। तब उन्हें विदित हुआ कि पृथ्वी ने स्वयं ही अन्न एवं औषधियों को अपने भीतर छिपा लिया है। अतः उन्होंने क्रोधित होकर पृथ्वी को लक्ष्य कर धनुष पर बाण चढ़ाया। पृथ्वी गौ का रूप धर कर भागी। पृथु ने उसका पीछा किया। जब पृथ्वी को कहीं आश्रय न मिला तब उसने राजा पृथु के पास आकर उनकी अनेक प्रकार से वन्दना की और कहा कि यदि आपको समस्त प्राणियों के अभीष्ट एवं बल की वृद्धि करनेवाले अन्न की आवश्यकता है तो आप मेरे योग्य बछड़ा, दोहनपात्र और दुहनेवाले की व्यवस्था कीजिए। मैं उस बछड़े के स्नेह से पिन्हा कर दूध के रूप में आपको सभी अभीष्ट वस्तुएँ दे दूँगी। पृथ्वी के इस प्रकार विनय करने पर महाराजा पृथु ने क्रोध त्याग दिया और स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाकर अपने हाथ में ही समस्त धान्यों को दुह लिया।[1]"

सूर ने ठीक भागवतपुराण के अनुसार ही पृथु अवतार का वर्णन चतुर्थ स्कंध, सूरसागर में किया है।[2]

---

[1] भाग० ४, १४—१८

[2] सूरसागर, चतुर्थ स्कंध, पद सं० ११ : ना० प्र० सभा, काशी।

(७) ऋषभदेव अवतार

श्रीमद्भागवत में ऋषभदेव अवतार की कथा बहुत विस्तार से वर्णित है। हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य के अन्तर्गत सूरदास ने भी ऋषभदेव अवतार की कथा का वर्णन किया है जिसका आधार पूर्णरूप से भागवतपुराण है। संक्षेप में भागवतपुराण में यह कथा इस प्रकार है :—

"आग्नीध्र के पुत्र नाभि के कोई सन्तान न थी, इसलिए उन्होंने अपनी स्त्री मेरुदेवी के सहित पुत्र की कामना से एकाग्रतापूर्वक भगवान् यज्ञपुरुष का यज्ञ किया। भगवान् उनकी आराधना से प्रसन्न होकर प्रकट हो गये। तब ऋत्विजों ने भगवान् से कहा कि राजर्षि नाभि सन्तान को ही परम पुरुषार्थ मानकर आपके ही समान पुत्र पाने के लिए आपकी आराधना कर रहे हैं। भगवान् ने ऋषियों से कहा कि आपने मुझसे यह बड़ा दुर्लभ वर माँगा है। मेरे समान तो मैं ही हूँ, क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ। लेकिन ब्राह्मणों का वचन मिथ्या नहीं होना चाहिए। अतः मैं स्वयं ही अपनी अंशकला से नाभि के यहाँ अवतार लूँगा। इस प्रकार कहकर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। फिर महारानी मेरुदेवी के पुत्र रूप में प्रकट हुए। नाभि ने उनका नाम ऋषभ (श्रेष्ठ) रखा।

आगे चलकर लोगों को गृहस्थधर्म की शिक्षा देने के लिए इन्द्र की दी हुई उनकी कन्या जयन्ती से विवाह किया तथा सौ पुत्र उत्पन्न किये। उनमें महायोगी भरत जी सबसे बड़े और सबसे अधिक गुणवान् थे। भगवान् ऋषभदेव ने अपने पुत्रों को अनेक प्रकार के उपदेश दिये। यद्यपि ऋषभदेव जी के पुत्र स्वयं ही सब प्रकार सुशिक्षित थे, तथापि लोगों को शिक्षा देने के उद्देश्य से उन्हें परम ज्ञान का उपदेश दिया। अन्त में अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को पृथ्वी का पालन करने के लिए राजगद्दी पर बैठा दिया और स्वयं उपशमशीलनिवृत्ति परायण महामुनियों को भक्ति, ज्ञान और वैराग्य रूप परमहंसोचित धर्मों की शिक्षा देने के लिए बिल्कुल विरक्त हो गये। मोक्षपति भगवान् ऋषभदेव ने त्याग के आदर्श की शिक्षा देने के लिए कई तरह की योगचर्याओं का आचरण किया। भगवान् का यह अवतार रजोगुण से भरे हुए लोगों को मोक्ष मार्ग की शिक्षा देने के लिए ही हुआ था।[1]"

सूरदास ने भागवतपुराण के आधार पर ही ऋषभदेव-अवतार का

---

[1] भाग० ५, ३-६

वर्णन किया है।[1] कवि स्वयं इस अवतार वर्णन के अंत में यह स्वीकार करता है :—

"बरन्यौ ऋषभदेव अवतार, सूरदास भागवतऽनुसार।"

(८) नृसिंह-अवतार

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत नृसिंह अवतार का वर्णन सूर, नन्ददास मीरा, आदि कई कवियों ने किया है। नृसिंह अवतार की कथा के लिए भी हिन्दी कृष्णभक्त कवि भागवतपुराण के ही ऋणी हैं।

भागवतपुराण के सप्तम स्कंध में नृसिंह अवतार की कथा पर्याप्त विस्तार-पूर्वक दी गई है। संक्षेप में वह इस प्रकार है।

"एक समय हिरण्यकशिपु प्रह्लाद पर अत्यधिक क्रोधित होकर चिल्ला रहा था कि तू जो मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को जगत् का स्वामी बतलाता है तो वह कहाँ है ? वह यदि सब जगह है तो इस खंमे में क्यों नहीं दिखलाई पड़ता ? मैं अभी तेरा सिर धड़ से अलग किये देता हूँ। देखता हूँ तेरा वह सर्वस्व हरि तेरी कैसे रक्षा करता है। इस प्रकार वह दैत्य भगवान् के परम प्रेमी प्रह्लाद को डाँटता रहा। फिर एकाएक हाथ में खड्ग लेकर बड़े जोर से प्रह्लाद पर झपटा। उसी समय उस खंमे से एक बड़ा भयङ्कर शब्द हुआ और समस्त पदार्थों में अपनी व्यापकता दिखाने के लिए सभा के भीतर उसी खंमे से बड़े ही विचित्र, आधे नर और आधे नारायण रूप में भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने सभा के दरवाजे पर हिरण्यकशिपु को ले जाकर अपनी जाँघों पर गिरा लिया और खेल ही खेल में अपने नखों से उसे फाड़ डाला।[2]"

सूरदास ने भागवतपुराण के अनुसार ही काफी विस्तार-पूर्वक नृसिंह अवतार की कथा वर्णन की है।[3] नन्ददास ने भी भगवान् के नृसिंह अवतार का वर्णन किया है। भ्रमरगीत के एक पद में कवि कहता है—

कोउ कहै अहो कहा हिरनकस्यप ते बिगर्‌यौ।
परम ढीठ प्रह्लाद पिता के सनमुख झगर्‌यौ॥
सुत अपने को देत हो सिच्छा दंड बँधाय।
इन वपु धरि नरसिंह का नखन विदार्‌यो जाय॥
बिना अपराध ही।[4]

---

[1] सूरसागर, पंचम स्कंध, पद सं० २ [2] भाग० ७ [3] सूरसागर, सप्तम स्कंध, पद सं० २ [4] नन्ददास ग्रन्थावली, भ्रमरगीत, पद सं० ४०

मीराबाई के भी कुछ पदों में भगवान् के नृसिंह-अवतार की ओर संकेत मिलता है। एक पद में वे कहती हैं :—

"प्रहलाद की प्रतंग्या राखी हरणाकस नख उद्र विदारण[1]"

तथा,

भक्त कारण रूप नरहरि, धर्यौ आप सरीर।
हिरण्याकुस मारि लीन्हो, धरयौ नाहिंन धीर॥[2]

(९) गजमोचन-अवतार

श्रीमद्भागवत में गजमोचन-अवतार की कथा भी पर्याप्त विस्तारपूर्वक दी गई है। संक्षेप में यह कथा इस प्रकार है :—

"क्षीर-सागर में त्रिकूट नाम का एक प्रसिद्ध सुन्दर एवं श्रेष्ठ पर्वत था। उसकी तराई में महात्मा वरुण का एक उद्यान था। उसका नाम ऋतुमान था। उस उद्यान में एक बड़ा भारी सरोवर भी था। उस पर्वत के घोर जंगल में बहुत-सी हथिनियों के साथ एक गजेन्द्र निवास करता था। एक दिन वह सरोवर में जाकर जल-क्रीड़ा करने लगा। तभी प्रारब्ध की प्रेरणा से एक बलवान ग्राह ने क्रोध में भरकर उसका पैर पकड़ लिया। गजेन्द्र ने अपनी शक्ति के अनुसार अपने को छुड़ाने की बड़ी चेष्टा की परन्तु छुड़ा न सका। कभी गजेन्द्र ग्राह को जल के बाहर खींच लाता और कभी गज गजेन्द्र को जल के भीतर खींच लाता। इसी प्रकार लड़ते-लड़ते एक हजार वर्ष बीत गये। अन्त में गजेन्द्र की शक्ति क्षीण होने लगी और वह भगवान् विष्णु को स्मरण करने लगा। गजेन्द्र ने भगवान् की अनेक प्रकार से स्तुति की। उसने बिना किसी भेद-भाव के निर्विशेष रूप से भगवान् की स्तुति की थी, इसलिए भिन्न भिन्न-नाम और रूप को अपना स्वरूप माननेवाले ब्रह्मा आदि देवता उसकी रक्षा करने के लिये नहीं आये। उस समय सर्वात्मा होने के कारण सर्वदेव स्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि प्रकट हो गये। जब गजेन्द्र ने देखा कि आकाश में गरुण पर सवार होकर हाथ में चक्र लिए भगवान् श्रीहरि आ रहे हैं, तब अपनी सूँढ़ में कमल का एक सुन्दर पुष्प लेकर उसने ऊपर को उठाया और बड़े कष्ट से वह बोला—"नारायण, जगतगुरु भगवन! आपको नमस्कार है।" जब भगवान् ने देखा कि गजेन्द्र अत्यन्त पीड़ित हो रहा

---

[1] मीराबाई की पदावली, पद सं० १३५ [2] मीराबाई की पदावली, पद सं० ९३

है तब वे एक बारगी गरुण को छोड़कर कूद पड़े और कृपा करके गजेन्द्र के साथ ही ग्राह को भी बड़ी शीघ्रता से सरोवर से बाहर निकाल लाये।"[1]

गजेन्द्र और गज दोनों को शापवश ही यह योनि मिली थी। गजेन्द्र पूर्व जन्म में द्रविण देश का राजा इन्द्रद्युम्न था और गज हूहू नामक एक गंधर्व था।

सूरदास ने गजमोचन अवतार की कथा ठीक भागवतपुराण के अनुसार कही है।[2] मीरा ने भी अपने अनेक पदों में भगवान् के गजमोचन अवतार की ओर संकेत किया है। एक पद में वे कहती हैं—

गज की अरजि गरजि उठि ध्यायो,
संकट पड़्यो तब कष्ट निवारण।[3]

एक अन्य पद में देखिए :—

बूड़तो गजराज राख्यौ, कियौ बाहर नीर।[4]

और,

ग्राह गह्यो गजराज उबार्यो, बूड़ न दियो छे जान।[5]

(१०) कूर्म अवतार

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूरदास ने कूर्म अवतार का वर्णन किया है। सूरदास ने कूर्म अवतार की कथा श्रीमद्भागवत से ली है। संक्षेप में कूर्म अवतार की कथा इस प्रकार है :—

"भगवान् की आज्ञा से समुद्र-मंथन के लिए देवता और असुरों ने मंदराचल को उखाड़ लिया परन्तु एक तो वह पर्वत ही बहुत भारी था और दूसरे उसे ले जाना भी बहुत दूर था। इससे इन्द्र, बलि आदि सब के सब हार गये और विवश होकर उन्होंने उसे रास्ते में ही पटक दिया। मन्दराचल पर्वत बहुत ही भारी था। गिरते समय उसने बहुत से देवता और दानवों को चकनाचूर कर दिया। इससे उनका उत्साह भंग हो गया। यह देखकर गरुड़ पर चढ़े हुए भगवान् सहसा वहीं प्रकट हो गये और उन्होंने खेल ही खेल में एक हाथ से उस पर्वत को उठाकर गरुड़ पर रख दिया और स्वयं भी सवार हो गये। फिर पक्षिराज गरुड़ ने समुद्र के तट पर पर्वत को उतार दिया।

---

[1] भाग० ८, ३। [2] सूरसागर, अष्टम स्कंध, पद सं० २। [3] मीराबाई की पदावली, पद सं० १३५। [4] मीराबाई की पदावली, पद सं० ६३। [5] मीराबाई की पदावली, पद सं० १३४।

जब समुद्र-मंथन होने लगा तब बड़े-बड़े बलवान देवता और असुरों के पकड़े रहने पर भी अपने भार की अधिकता और नीचे कोई आधार न होने के कारण मन्दराचल समुद्र में डूबने लगा। देवता और दानव प्रयत्न को निष्फल जाता देख उदास होने लगे। तभी भगवान् ने उसके निवारण का उपाय सोचकर अत्यन्त विशाल एवं विचित्र कच्छप (कूर्म) का रूप धारण किया और समुद्र के जल में प्रवेश कर मन्दराचल को ऊपर उठा दिया।[1]"

सूर ने भी इस कथा का वर्णन भागवतपुराण के आधार पर ही विस्तार-पूर्वक सूरसागर में किया है। कूर्म अवतार का वर्णन करते हुए सूर कहते हैं :—

मन्दराचल समुद्र माहिं बूड़न लग्यो,
तब सबनि बहुरि अस्तुति सुनाई।
कूर्म कौ रूप धरि, धर्‌यौ गिरि पीठि पर,
सुर-असुर सबनि कैं मन बधाई।[2]

(११) वामन अवतार

भगवान् के वामन अवतार का वर्णन भागवतपुराण तथा 'वामनपुराण' में हुआ है। 'वामनपुराण' के तो नाम से ही मालूम पड़ता है कि इसमें भगवान् के वामन अवतार की कथा होगी। किंतु हिंदी कृष्णभक्ति-काव्य पर वामन-पुराण की अपेक्षा 'श्रीमद्भागवत' का प्रभाव अधिक पड़ा है। सूर ने जो वामन अवतार की कथा कही है, उसका आधार सम्भवतः श्रीमद्भागवत ही है। वामनपुराण में जो वामन अवतार की कथा दी गई है वह बहुत संक्षिप्त है। भागवतपुराण में जो वामन अवतार की कथा दी गई है उसका सार इस प्रकार है :—

"बलवान् दैत्यों ने देवताओं की माता अदिति को बहुत कष्ट दिये। शत्रुओं ने अदिति की संपत्ति और रहने का स्थान तक छीन लिया। तब अदिति ने भगवान् कृष्ण की आराधना की जिससे उसके पुत्रों को समस्त वस्तुएँ फिर से प्राप्त हो जायँ। भगवान् पुरुषोत्तम अदिति के सामने प्रकट हुए और अदिति से कहा कि तुम्हारी चिरकालीन अभिलाषा को मैं जानता हूँ। अतः मैं अंशरूप में अवतार लूँगा और तुम्हारा पुत्र बनकर तुम्हारी संतान की रक्षा करूँगा। इतना कहकर भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये।[3]"

---

[1]भाग० ८, ६ [2] सूरसागर, अष्टम स्कंध, पद सं० ८ [3] भाग० ८, १६

विजयाद्वादशी तिथि को अभिजित् मुहूर्त में भगवान् ने जन्म लिया। भगवान् के चार भुजाएँ थीं जिनमें वे शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये हुए थे। श्याम वर्ण के शरीर पर पीताम्बर शोभायमान् हो रहा था। भगवान् की अंगकांति से प्रजापति कश्यपजी के घर का अंधकार दूर हो गया। अदिति स्वयं भगवान् को उत्पन्न हुए देखकर चकित हो गई। उसी समय भगवान् ने अदिति और कश्यप के देखते-देखते वामन ब्रह्मचारी का रूप धारण कर लिया। भगवान् को वामन ब्रह्मचारी के रूप में देखकर महर्षियों को बहुत आनन्द हुआ। उन लोगों ने कश्यप प्रजापति को आगे करके उनके जातिकर्म आदि संस्कार करवाए।

उसी समय भगवान् ने सुना कि सब प्रकार की सामग्रियों से संपन्न यशस्वी बलि भृगुवंशी ब्राह्मणों के आदेशानुसार बहुत से अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। तब उन्होंने वहाँ के लिए यात्रा की। नर्मदा नदी के तट पर 'भृगुकच्छ' नाम का एक बड़ा सुन्दर स्थान है। वहीं बलि के भृगुवंशी ऋत्विज श्रेष्ठ यज्ञ का अनुष्ठान करा रहे थे। उसी समय हाथ में छत्र, दंड और जल से भरा कमण्डलु लिये हुए वामन भगवान् ने अश्वमेध-यज्ञ के मण्डप में प्रवेश किया। उन्हें देखकर बलि को बहुत आनंद हुआ और उन्होंने वामन भगवान् को एक उत्तम आसन दिया। साथ ही विभिन्न प्रकार से सत्कार करके कहा—"ब्राह्मणकुमार, ऐसा प्रतीत होता है कि आप कुछ चाहते हैं। आप जो कुछ भी चाहते हों मुझसे माँग लीजिए।" राजा बलि के इस प्रकार कहने पर वामन भगवान् ने कहा—"दैत्येन्द्र, आप मुँहमाँगी वस्तु देनेवालों में श्रेष्ठ हैं। इसी से मैं आपसे थोड़ी-सी पृथ्वी केवल अपने पैरों से तीन डग माँगता हूँ।" बलि ने वामन भगवान् से कुछ अधिक माँगने को कहा किंतु भगवान् ने केवल तीन पग पृथ्वी की ही इच्छा प्रकट की। तब बलि ने वामन भगवान् को तीन पग पृथ्वी का संकल्प करने के लिए जलपात्र उठाया।

शुक्राचार्य जी सब कुछ जानते थे। उन्होंने बलि को दान देने से मना किया और कहा—"ये स्वयं अविनाशी भगवान् विष्णु हैं। देवताओं का काम बनाने के लिए कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से अवतीर्ण हुए हैं। तुमने यह अनर्थ न जानकर इन्हें दान देने की प्रतिज्ञा कर ली है। यह तो दैत्यों पर बहुत बड़ा अन्याय होने जा रहा है। इसे मैं ठीक नहीं समझता।" लेकिन बलि ने कहा—"मैं प्रह्लाद का पौत्र हूँ और जब एक बार दान देने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ तो अब सत्य से नहीं डिग सकता।"

शुक्राचार्य ने जब देखा कि यह शिष्य गुरु के प्रति अश्रद्धालु है तो उन्होंने राजा बलि को शाप दे दिया—"तू शीघ्र ही अपनी समस्त सम्पति खो बैठेगा।" राजा बलि शाप से भी नहीं डिगे और उन्होंने वामन भागवान् की विधिपूर्वक पूजा की और हाथ में जल लेकर तीन पग भूमि का संकल्प कर दिया। इसी समय अनन्त भगवान् का त्रिगुणात्मक वामन रूप बढ़ने लगा। यहाँ तक कि पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पशु-पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषि सब के सब उसी में समाहित हो गये। उन्होंने अपने एक पग से बलि की सारी पृथ्वी नाप ली। शरीर से आकाश और भुजाओं से दिशाएँ घेर लीं। दूसरे पग से उन्होंने स्वर्ग को भी नाप लिया। तीसरा पग रखने के लिए बलि को तनिक-सी भी कोई वस्तु न बची। भगवान् का वह दूसरा पग ही ऊपर की ओर जाता हुआ महर्लोक, जनलोक और तपलोक से भी ऊपर सत्यलोक में पहुँच गया।

दैत्यों ने यह सब देखकर वामन भगवान् पर आक्रमण किया किन्तु भगवान् के पार्षदों ने उन्हें हरा दिया। फिर भगवान् के हृदय की बात जानकर पक्षिराज गरुण ने वरुण के पाशों से बलि को बाँध दिया। उस समय भगवान् ने बलि से कहा—"तुमने मुझे पृथ्वी के तीन पग दिए थे, दो पग में तो मैंने सारी त्रिलोकी नाप ली, अब तीसरा पग पूरा करो। प्रतिज्ञा पूरी न कर सकने के कारण तुम्हें नरक में रहना पड़ेगा।" यह सुनकर बलि ने कहा "कि मैंने आपको तीन पग का वचन दिया था। उसे मैं असत्य नहीं करना चाहता अतः आप अपना तीसरा चरण मेरे सिर पर रख दीजिए।"

बलि की यह बात सुनकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि—"मैंने छलभरी बातें कहीं, किन्तु इस सत्यवादी ने अपना धर्म न छोड़ा। अतः मैंने इसे वह स्थान दिया है, जो बड़े-बड़े देवताओं को भी दुर्लभ है। सावर्णि मन्वन्तर में यह मेरा परम् भक्त इन्द्र होगा। तब तक यह विश्वकर्मा के बनाये हुए, सुतल-लोक में रहे।"

इस प्रकार भगवान् के वामन अवतार की कथा भागवत पुराण में वर्णित है। सूर ने यह कथा संक्षेप में सूरसागर में कही है :—

> जैसैं भयौ बावन अवतार। कहौं, सुनौ सो अब चित धार।
> हरि जब अमृत सुरनि पियायौ। तब बलि असुर बहुत दुख पायौ।
> सुक्र ताहि पुनि जज्ञ करायौ। सुर-जय, राज-त्रिलोकी पायौ।

निन्यानबे यज्ञ जब किए। तब दुख भयौ अदिति के हिए।
हरि हित उन पुनि बहु तप करयौ। सूर स्याम बामन-बपु धर्‌यौ।[1]

इसी प्रकार अष्टम स्कंध के तेरहवें और चौदहवें पदों में वामन अवतार का वर्णन हुआ है।

नन्ददास ने भी भ्रमरगीत के प्रसंग में एक पद में वामन अवतार का वर्णन किया है। वे कहते हैं :—

कोउ कहै री सुनौ और इनके गुन आली।
बलि राजा पै गये भूमि माँगन बनमाली॥
माँगत वामन रूप धरि, परवत भयौ अकाय।
सत्त धर्म सब छाँढ़ि कै, धरयौ पीठ पै पाय॥
लोभ की नाव ये।[2]

हिन्दी के अन्य कृष्णभक्त कवियों ने वामन अवतार का वर्णन नहीं किया है।

(१२) मत्स्य अवतार

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूरदास ने मत्स्य अवतार की कथा पर्याप्त विस्तार से कही है। सूर की कथा का आधार संभवतः 'मत्स्यपुराण' है। मत्स्य पुराण में मत्स्य अवतार की कथा काफी विस्तारपूर्वक दी गई है। संक्षेप में यह कथा इस प्रकार है :—

"प्राचीन काल में सूर्य का पुत्र मनु दुःख-सुख में समान व्यवहार करनेवाला एवं संसार के सभी जीवों के ऊपर दया-भाव रखनेवाला एक क्षमाशील राजा था। उसने अपने सारे राजपाट को अपने पुत्र को सौंप कर घोर तपस्या की और मलयाचल के एक भाग में सब प्रकार के आत्म गुणों से संयुक्त होकर योगाभ्यास किया। लाखों वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरांत ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और मनु से वर माँगने का अनुरोध किया। मनु ने कहा—"आपसे मैं केवल एक उत्तम वरदान माँगने की अभिलाषा करता हूँ। वह यह कि प्रलय काल के आ जाने पर मैं इस स्थावर जंगमात्मक सम्पूर्ण जगत् की रक्षा कर सकूँ।" मनु की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा 'ऐसा ही हो' कहकर अन्तर्ध्यान हो गये।

---

[1] सूरसागर—अष्टम स्कंध, पद सं० १२ : ना० प्र० सभा, काशी।
[2] नन्ददास ग्रंथावली—भ्रमर गीत, पद सं० ३८ : ना० प्र० सभा, काशी।

कुछ समय व्यतीत हो जाने पर एक दिन मनु जी जिस समय अपने आश्रम में पितरों को अर्घ्य दे रहे थे, उसी समय उनके दोनों हाथों में होकर कमंडल के जल के साथ एक मछली नीचे गिर पड़ी। दयालु स्वभाव के राजा ने पृथ्वी पर दयनीय दशा में छटपटाती हुई उस छोटी मछली को उठाकर उसी कमंडल में प्राण-रक्षा के लिए छोड़ दिया। कमंडल में छोड़ने पर एक दिन और एक रात व्यतीत हो जाने के बाद वह छोटी मछली सोलह अंगुल लम्बे मत्स्य के आकार में परिणत हो गई और स्थान की संकीर्णता से उसे जब इधर-उधर तैरने में कष्ट होने लगा तब आर्त्त होकर पुकारने लगी—"हे राजन्! मेरी रक्षा कीजिए, मेरी रक्षा कीजिए।" राजा ने उसे कष्ट में देखकर मिट्टी के एक बड़े घड़े में छोड़ दिया। किन्तु वहाँ भी वह मत्स्य एक ही रात में तीन हाथ लम्बे आकार का हो गया और पुनः स्थान की संकीर्णता के कारण अत्यन्त आतुर होकर राजा से कहने लगा—"हे राजन्, मैं आपकी शरण में हूँ, मेरी रक्षा कीजिए।" राजा ने पुनः उसे कष्ट में देखकर एक कुएँ में छोड़ दिया, पर वहाँ भी उसकी वही दशा हुई। कुएँ में भी न समाता देख राजा ने उसे तालाब में छोड़ दिया। परन्तु तालाब में छोड़ने पर भी वह अत्यन्त मोटा और एक योजन लम्बे आकार में परिणत हो गया और उसमें से भी आर्त्त होकर कहने लगा कि "हे नृपश्रेष्ठवर, मेरी रक्षा कीजिए, मेरी रक्षा कीजिए।" तब मनु जी ने उसे गंगा के प्रवाह में छोड़ दिया। पर थोड़े ही समय में वह वहाँ भी इतने बड़े आकार वाला हो गया कि इधर-उधर घूमने का कष्ट होने लगा और पुनः राजा से दूसरे बड़े स्थान की प्रार्थना करने लगा। अन्त में राजा ने उसे समुद्र में डाल दिया, परन्तु थोड़े ही दिनों में उसने अपने विशाल शरीर से सारे समुद्र को भी छेंक लिया। तब राजा घबराए और मत्स्य से कहने लगे—"तुम अवश्य कोई महाराक्षस हो, अथवा स्वयं भगवान् विष्णु हो। क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त कौन ऐसा है जो ऐसा विस्मयजनक कार्य कर सके। संसार में ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो बीस अयुत योजन का शरीर धारण कर सके। हे केशव, तुम्हें हमारा नमस्कार है। अब हमें निश्चय हो गया कि तुम ही मत्स्य का रूप धारण कर हमें शोकाकुल कर रहे हो।[१]"

मनु की इस विनीत प्रार्थना को सुनकर मत्स्य का रूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु ने कहा—"निष्पाप मनु, सच में तुमने हमें भलीभाँति जान

---

[१] मत्स्य पुराण १, १०—२७

लिया है, तुम धन्य हो। थोड़े ही दिनों के अनन्तर पर्वत, जंगम आदि के साथ-साथ यह सारी पृथ्वी जल में डूब जायगी। अतः यह नौका लो, जिसे संसार के बड़े-बड़े जीवों की रक्षा के लिए सब देवताओं ने मिलकर बनाई है। इसमें संसार के सभी स्वेदज, अंडज, उद्भिज और जरायुज जीवों को, जो उस समय अनाथ से हो जायँगे, बैठाकर उनकी रक्षा करना। प्रलय काल की प्रचंड वायु से जब यह नौका डगमगाने लगे तो इसे एक बंधन लेकर मेरे इस सींग में बाँध देना। इस प्रकार प्रलय बीत जाने पर जब पुनः सृष्टि का निर्माण होगा तब सतयुग के प्रारम्भ में तुम इस सभी चराचर जगत् के प्रजापति होगे और मन्वन्तरों के अधिपति होकर देवताओं के भी पूज्य बनोगे।[1]"

समय आने पर जैसा कि विष्णु भगवान् ने मनु से कहा था, ठीक उसी प्रकार विष्णु सींगवाले मत्स्य का रूप धारण कर मनु के समीप प्रादुर्भूत हुए और रस्सी के रूप में एक सर्प भी मनु के समीप आ गया। राजा मनु ने अपने योग बल द्वारा संसार के सभी जीवों को आकृष्ट कर उसी नाव पर बिठा लिया और उक्त साँप रूपी रस्सी से मत्स्य के सींग में उसे बाँध दिया तथा भगवान् जनार्दन को प्रणाम कर वे स्वयं नाव पर बैठ गये।[2] इस प्रकार मत्स्य पुराण में मत्स्य अवतार की कथा वर्णित है।

श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के चौबीसवें अध्याय में भी मत्स्य अवतार की कथा वर्णित है। यह लगभग मत्स्य पुराण की कथा के ही अनुसार है, फिर भी कहीं-कहीं अंतर आ गया है। मत्स्य पुराण के अनुसार राजा सत्यव्रत के दोनों हाथों में होकर कमण्डल के जल के साथ मछली नीचे गिर पड़ी। राजा ने उसे पृथ्वी पर तड़पते देखकर प्राण-रक्षा के लिए पुनः कमंडल में डाल दिया। किन्तु भागवतपुराण में लिखा है कि राजा की अंजलि में एक छोटी सी मछली आ गई। सत्यव्रत ने अपनी अंजलि में आई हुई मछली को जल के साथ फिर नदी में डाल दिया। किन्तु मछली ने बड़ी दीनता से कहा—"राजन, आप बहुत दीनदयालु हैं आप जानते हैं कि जल में रहनेवाले जन्तु अपनी जातिवालों को भी खा जाते हैं। मैं उनके भय से व्याकुल हो रही हूँ। आप मुझे फिर इसी नदी के जल में क्यों छोड़ रहे हैं।" तब राजा ने उसे अपने पात्र के जल में रख लिया और अपने आश्रम पर ले आये।[3] यहाँ पर दोनों पुराणों की कथा में थोड़ा अन्तर है।

---

[1] मत्स्य पु० २, २८—३४ ; [2] मत्स्य पु० ३, १७—२० [3] भाग० ८, २४, १२—१६

मत्स्य पुराण में राजा सत्यव्रत मत्स्य के निरंतर बढ़ते जाने से अन्त में उसे समुद्र में डाल देते हैं। लेकिन भागवतपुराण की कथा में जब राजा उसे समुद्र में डालते हैं तो मत्स्य कहता है—"वीर! समुद्र में बड़े-बड़े बली मगर आदि रहते हैं, वे मुझे खा जायेंगे इसलिए आप मुझे समुद्र में मत छोड़िए।[1]"

यद्यपि इस प्रकार के छोटे-मोटे अन्तर कथा में अनेक स्थलों पर हैं तथापि मूल कथा समान ही है।

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूरदास ने मत्स्य अवतार की कथा का वर्णन किया है।[2] यह वर्णन भागवतपुराण की अपेक्षा मत्स्यपुराण की कथा के अधिक निकट है। हिन्दी के अन्य कृष्णभक्त कवियों ने इस अवतार का वर्णन नहीं किया है। केवल नन्ददास के एक पद में भगवान् के मत्स्य अवतार की ओर संकेत है। वे कहते हैं कि जिन भगवान् ने मत्स्य और कूर्म के रूप में अवतार लिया था वे ही यदुकुल में जन्मे थे :—

मच्छ कच्छ अवतार विभावन। भूतनि के भावन, मनभावन।
सो प्रभु इहि जदुकुल में आइ। कीने जे जे कर्म सुभाइ॥[3]

(१३) परशुराम अवतार

परशुराम अवतार का वर्णन हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूरदास तथा नन्ददास ने किया है। इनकी कथा का आधार भागवतपुराण ही है। भागवतपुराण में परशुराम अवतार की कथा पर्याप्त विस्तार से दी गई है। संक्षेप में यह कथा इस प्रकार है :—

"जमदग्नि ऋषि के वसुमान आदि कई पुत्र हुए। उनमें सबसे छोटे परशुराम जी थे। एक दिन उनकी माता रेणुका गंगातट पर गई हुई थीं। वहाँ वे गंधर्वराज चित्ररथ को अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते हुए देखने लगीं। इधर उनके पति के हवन का समय हो गया। जब रेणुका घर पहुँचीं तो महर्षि के सामने जल का कलश रखकर खड़ी हो गईं। महर्षि ने क्रोधकर अपने पुत्रों से कहा कि अपनी माता को मार डालो किन्तु किसी भी पुत्र ने ऐसा न किया। इसके

---

[1] भाग० ८, २४, २४। [2] सूरसागर—अष्टम स्कंध, पद सं० १६
[3] नन्ददास ग्रंथावली, भाषा दशम स्कंध, ना० प्र० सभा, काशी।

बाद पिता की आज्ञा से परशुरामजी ने माता के साथ ही अपने भाइयों को भी मार डाला। कारण यह था कि वे अपने पिता के योग और तप का प्रभाव भली-भाँति जानते थे। परशुराम के इस काम से जमदग्नि ऋषि बहुत प्रसन्न हुए और वर माँगने को कहा। तब परशुराम जी ने यह वर माँगा कि मेरी माता और सब भाई जीवित हो जायँ और उन्हें यह न मालूम हो कि मैंने उन्हें मारा था। जमदग्नि ऋषि ने वर दे दिया और वे सब जीवित हो उठे।[१]"

इसी अवतार में भगवान् ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से शून्य किया था। एक बार परशुराम जी अपने भाइयों के साथ आश्रम से बाहर वन की ओर गये हुए थे। अवसर पाकर वैर साधने के लिए सहस्रबाहु के लड़के वहाँ आ पहुँचे। उस समय जमदग्नि ऋषि अग्निशाला में बैठे हुए थे कि सहस्रबाहु के लड़कों ने उन्हें मार डाला। यह देखकर सती जोर-जोर से विलाप करने लगीं। परशुराम जी ने बड़ी दूर से माता का क्रन्दन सुना। वे शीघ्रता से आश्रम पर आये और पिता की दशा देखकर क्रोधित हो गये। उन्होंने पिता का शरीर भाइयों को सौंपा और स्वयं हाथ में फरसा उठाकर क्षत्रियों का संहार कर डालने का निश्चय किया। परशुराम जी ने महिष्मती नगरी में जाकर सहस्रबाहु अर्जुन के पुत्रों को मार डाला और उनके सिरों से नगर के बीचो बीच एक बड़ा भारी पर्वत खड़ा कर दिया। भगवान् परशुराम ने देखा कि वर्तमान क्षत्रिय अत्याचारी हो गये हैं, इसलिए उन्होंने अपने पिता के वध को निमित्त बनाकर इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन कर दिया।

ठीक इसी प्रकार सूरदास ने भी सूरसागर में भगवान् के परशुराम अवतार का वर्णन किया है :—

> परसुराम जमदग्नि - गेह लीनौ अवतारा।
> माता ताकी गई जमुन जल कौं इक बारा।
> लागी तहाँ अबार तिहिँ, रिषि करि क्रोध अपार।
> परसुराम सौं यौं कही, माँकौं वेग सँहार।
> और सुतनि तब कही, पिता नहिं कीजै ऐसी।
> क्रोधवंत रिषि कह्यौ करौ इनहूँ सौं वैसी।
> परसुराम तिन सबनि कौं, मार्‌यौ खंग प्रहार।
> रिषि कह्यौ होइ प्रसन्न, वर माँगौ देउँ कुमार।

---

[१] भाग० ९, १५, १६

परसुराम तब कह्यौ, यहै बर देहु तात अब।
जानैं नाहिंन मुए, फेरिकै जीवैं ये सब।
रिषि कह्यो, यह बर दियौ मैं, इनकौं देहु उठाइ।
परसुराम उनकौं दियौ, सोवत मनौ जगाइ।

× × ×

सहसबाहु के सुतनि पुनि, राखी घात लगाइ।
परसुराम जब बन गयौ, मारयौ रिषि कौं धाइ।
रिषि की यह गति देखि, रेनुका रोइ पुकारी।
परसुराम, तुम आइ लगत क्यौं नहीं गोहारी।
यह सुनिकै आयौ तुरत, मारयौ तिन्हैं प्रचारि।
बहुरौ जिय धरि क्रोध हते, छत्री इकइस बार।[1]

नन्ददास ने भी एक पद में परशुराम अवतार का वर्णन किया है :—

कोउ कहै इन परसुराम छै माता मारी।
फरसा कंधा धारि भूमि छत्रिन संघारी।
सोनित कुंड भरायकै पोषे अपने मित्र।
तिनके निरदय रूप में नाहिन कोऊ चित्र।
बिलग कहा मानियै[2]।

(१४) धन्वन्तरि अवतार

हिन्दी कृष्णभक्ति कवि सूरदास ने भगवान् के धन्वन्तरि अवतार का भी वर्णन किया है। इसका भी आधार भागवतपुराण है। भागवतपुराण के अष्टम स्कंध के आठवें अध्याय में यह कथा वर्णित है :—

"एक बार जब देवता और असुरों ने अमृत की इच्छा से समुद्र मंथन किया, तब उसमें से एक अत्यन्त अलौकिक पुरुष प्रकट हुआ। उसकी भुजाएँ लम्बी एवं मोटी थीं। गले में माला, प्रत्येक अंग आभूषणों से सुसज्जित, शरीर पर पीताम्बर, कानों में चमकीले मणियों के कुण्डल, चौड़ी छाती—सब मिलाकर अनुपम सौंदर्य था। उस पुरुष की छवि बड़ी अनोखी थी, उसके हाथों में कंगन

[1] सूरसागर-नवम स्कंध पद, सं० १४, ना० प्र० सभा, काशी।
[2] नंददास ग्रन्थावली—भ्रमरगीत, पद सं० ३६

और अमृत से भरा हुआ कलश था। वे साक्षात् विष्णु भगवान् के अंशांश अवतार थे। वे धन्वन्तरि नाम से प्रसिद्ध हुए।"[1]

सूरदास ने भी इसी के आधार पर धन्वन्तरि अवतार का वर्णन किया है। वे एक पद में कहते हैं—

× × ×

बहुरि धन्वंत्रि आयौ समुद सौं निकसि,
सुरा अरु अमृत निज संग लायौ।[2]

(१५) मोहिनी अवतार

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूरदास ने मोहिनी अवतार का वर्णन किया है। इसका आधार श्रीमद्भागवत ही है। श्रीमद्भागवत के आठवें स्कंध में भगवान् के मोहिनी अवतार की कथा पर्याप्त विस्तार से कही गई है। संक्षेप में वह इस प्रकार है :—

"जब समुद्र-मंथन से अमृत निकला तो दैत्यों ने, उसे बलात् छीन लिया। यह देखकर देवताओं का मन विषाद से भर आया और वे सब भगवान् की शरण में आए। देवताओं की दीन-दशा देखकर भगवान् ने कहा—"देवताओं, तुम लोग खेद मत करो, मैं अपनी माया से उनमें (दैत्यों में) आपसी फूट डालकर अभी तुम्हारा काम बना दूँगा।"

इधर अमृत-लोलुप दैत्य आपस में अमृत पीने के लिए झगड़ने लगे। दैत्यों में आपस में तू तू मैं-मैं हो ही रहा था कि भगवान् ने अत्यन्त अद्भुत और अवर्णनीय स्त्री का रूप (मोहिनी रूप) धारण किया और छलपूर्वक देवताओं को अमृत पिला दिया।[3] ठीक इसी प्रकार सूरदास ने भी भगवान् के मोहिनी अवतार की कथा कही है :—

× × ×

सुरनि भगवान सौं आनि विनती करी,
असुर सब अमृत लै गए छिनाई।
कह्यौ भगवान, चिंता न कछु मन धरौ,
मैं करौं अब तुम्हारी सहाई।

---

[1] भाग० ८, ८, ३१—३४ [2] सूरसागर, अष्टम स्कंध, पद सं० ८ ना० प्र० सभा, काशी [3] भाग०, ८, ८, ६

परसपर असुर तब युद्ध लागे करन,
होइ बलवंत सोइ लै छिनाई।
मोहिनी रूप धरि स्याम आए तहाँ,
देखि सुर-असुर सब रहे लुभाई।
आय असुरनि कह्यौ, लेहु यह अमृत तुम,
सबनि कौँ बाँटि मेटौ लराई।

× × ×

असुर-दिसि चिते मुसुक्याइ मोहे सकल,
सुरनि कौं अमृत दीन्हौं पियाई।[१]

(१६) व्यास अवतार

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूरदास ने व्यास अवतार का वर्णन भी किया है। इसका आधार भी श्रीमद्भागवत है। भागवतपुराण में लिखा है:—

"सत्यवती के गर्भ से पराशर जी के द्वारा स्वयं भगवान् व्यास के रूप में अवतीर्ण हुए। उस समय लोगों की समझ और धारणा शक्ति को कम देखकर आपने वेद रूप वृक्ष की कई शाखाएँ बना दीं।"[२]

सूरदास ने भी इसी प्रकार व्यास-अवतार का वर्णन किया है:—

सत्यवती मच्छोदरि नारी, गंगा-तट ठाढ़ी सुकुमार।
तहाँ परासर रिषि चलि आए, बिबस होइ तिहिँ कैँ मद छाए॥

× × ×

व्यास देव ताकैं सुत भए, होत जनम बहुरौ बन गए।
या बिधि भयौ व्यास अवतार, सूर कह्यौ भागवत बिचार।[३]

(१७) सनकादिक अवतार

सनकादिक अवतार का वर्णन भी हिंदी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूरदास ने भागवत पुराण के अनुसार ही किया है। भागवत पुराण में लिखा है:—

---

[१] सूरसागर, अष्टम स्कंध, पद सं० ८ [२] भाग०, १, ३, २१
[३] सूरसागर, विनय, पद सं० २२६

"सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ने विविध लोकों को रचने की इच्छा से तपस्या की। उस अखंड तप से प्रसन्न होकर उन्होंने (भगवान् ने) 'तप', अर्थवाले 'सन' नाम से युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार रूप से अवतार ग्रहण किया[1]।"

सूरदास सनकादिक अवतार का वर्णन करते हुए कहते हैं :—

ब्रह्मा ब्रह्मरूप उर धारि। मन सौं प्रगट किये सुत चारि।
सनक, सनन्दन, सनतकुमार। बहुरि सनातन नाम ये चार।[2]

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत भगवान् के अन्य अवतारों का वर्णन नहीं किया गया है।

[1] भाग० २, ७, ५ [2] सूरसागर, तृतीय स्कंध, पद सं० ६

अध्याय ७

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में सृष्टि तथा राजवंश और उस पर पुराणों का प्रभाव

(क) सृष्टि-उत्पत्ति

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत केवल सूरदास ने ही सृष्टि उत्पत्ति और विभिन्न राजवंशों का वर्णन किया है। अन्य कवियों ने कदाचित् इस विषय पर कुछ नहीं लिखा है।

सूरदास के सृष्टि उत्पत्ति और राजवंश-वर्णन पर भागवतपुराण का पूर्ण प्रभाव है। भागवतपुराण के तृतीय स्कंध के बारहवें अध्याय में सृष्टि-रचना का वर्णन है। भागवतपुराण के अनुसार, ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—ये चार निवृत्ति-परायण उर्ध्वरेता मुनि उत्पन्न किये। अपने इन पुत्रों से ब्रह्माजी ने कहा—"पुत्रो, तुम लोग सृष्टि उत्पन्न करो।" किन्तु वे जन्म से ही मोक्ष मार्ग का अनुसरण करनेवाले और भगवान् के ध्यान में तत्पर थे, इसलिए उन्होंने ऐसा नहीं करना चाहा। जब ब्रह्माजी ने देखा कि मेरी आज्ञा न मानकर ये मेरे पुत्र मेरा तिरस्कार कर रहे हैं, तब उन्हें असह्य क्रोध हुआ। उन्होंने उसे रोकने का प्रयत्न किया किन्तु बहुत रोकने पर भी वह क्रोध तत्काल प्रजापति की भौंहों के बीच से एक नील लोहित बालक के रूप में प्रकट हो गया। वे देवताओं के पूर्वज भगवान् रुद्र थे। वे रो-रोकर कहने लगे—"जगत्पिता, विधाता, मेरा नाम और रहने का स्थान बतलाइये।" तब ब्रह्मा ने उनसे कहा कि "तुम जन्म लेते ही बालक के समान फूट-फूट कर रोने लगे अतः प्रजा तुम्हें रुद्र नाम से पुकारेगी।[१]" फिर ब्रह्माजी ने उन्हें आज्ञा दी कि तुम प्रजा उत्पन्न करो। आज्ञा पाकर रुद्र अपने ही जैसी प्रजा उत्पन्न करने लगे। भगवान् रुद्र के द्वारा उत्पन्न हुए उन रुद्रों को असंख्य यूथ बनाकर सारे संसार का भक्षण करते देखकर ब्रह्मा जी को बड़ी शंका हुई। तब उन्होंने रुद्र से कहा—"सुरश्रेष्ठ, तुम्हारी प्रजा

---

[१] भाग० ३, १२, १०

तो अपनी भयंकर दृष्टि से मुझे और सारी दिशाओं को भस्म किये डालती है, अतः ऐसी सृष्टि और न रचो।"[1]

ठीक ऐसा ही वर्णन सूरदास ने किया है। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन की उत्पत्ति के विषय में वे भागवतपुराण के ही अनुसार कहते हैं :—

ब्रह्मा ब्रह्मरूप उर धारि। मन सौं प्रगट किए सुत चारि।
सनक, सनंदन, सनतकुमार। बहुरि सनातन नाम ये चार।
ये चारौं जब ब्रह्मा, किये। हरि कौ ध्यान धर्यो तिन हिये।
ब्रह्मा कह्यौ सृष्टि बिस्तारौ। उन यह बचन हृदय नहि धारौ।[2]

तब ब्रह्मा से रुद्र की उत्पत्ति हुई। सूरदास कहते हैं :—

सनकादिकनि कह्यौ नहिं मान्यौ। ब्रह्मा क्रोध बहुत मन आन्यौ।
तब इक पुरुष भौंह तैं भयौ। होत समय तिन रोदन ठयौ।
ताकौं नाम रुद्र बिधि राख्यौ। तासौं सृष्टि करन कौं भाख्यौ।
तिन बहु सृष्टि तामसी करी। सो तामस करि मन अनुसरी।
ब्रह्मा मन सो भली न भाई। सूर सृष्टि तब और उपाई।[3]

जब सनकादि और रुद्र से सात्विक प्रजा की सृष्टि न हुई तो ब्रह्माजी ने सप्तऋषि, दक्ष प्रजापति और स्वयम्भुव मनु की उत्पत्ति की। भागवत-पुराण में इसका वर्णन इस प्रकार है :—

"इसके पश्चात् जब भगवान् ब्रह्माजी ने सृष्टि के लिए संकल्प किया तब उनके दस पुत्र और उत्पन्न हुए। इनके नाम मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद थे।[4] फिर जब इनसे भी सृष्टि का अधिक विस्तार नहीं हुआ तो ब्रह्माजी सोचने लगे कि मालूम होता है कि इसमें दैव ही कुछ विघ्न डाल रहा है—"ब्रह्माजी ऐसा विचार कर ही रहे थे कि उसी समय अकस्मात् उनके शरीर के दो भाग हो गये। इन दोनों विभागों से एक स्त्री-पुरुष का जोड़ा प्रकट हुआ। उनमें जो पुरुष था, वह सार्वभौम सम्राट् स्वायम्भुव मनु हुए और जो स्त्री थी, वह उनकी महारानी शतरूपा हुई। इससे सृष्टि का विस्तार हुआ।[5]"

---

[1] भाग० ३, १२, १५, १७ [2] सूरसागर तृतीय स्कंध, पद सं० ६
[3] सूरसागर, तृतीय स्कंध, पद सं० ७ [4] भाग० ३, १२, २१, २२
[5] भाग०, ३, १२, ४६-५३

भागवतपुराण के अनुसार ही सूर ने भी सप्तऋषि और स्वायम्भुव मनु की उत्पत्ति का ऐसा ही वर्णन किया है :—

ब्रह्मा सुमिरन करि हरि-नाम । प्रगटे रिषय सप्त अभिराम ।
भृगु, मरीचि, अंगिरा, बसिष्ठ । अत्रि, पुलह, पुलस्त्य अति सिष्ठ ॥
पुनि दच्छादि प्रजापति भए । स्वायम्भुव सो आदि मनु जए ।
इनतैं प्रगटी सृष्टि अपार । सूर कहाँ लौं करै बिस्तार ॥[1]

इस प्रकार ब्रह्माजी से आदि मनु स्वायम्भुव उत्पन्न हुए और उन्होंने सृष्टि का बहुत विस्तार किया ।

(क) वंश-वर्णन

स्वायम्भुव मनु के वंश का वर्णन

आदि मनु स्वायम्भुव के वंश का वर्णन लगभग आधे वैष्णव पुराणों में हुआ है । किन्तु उन वंशावलियों में पर्याप्त अन्तर मिलता है । यदि सभी पुराणों की सभी वंशावलियों का मिलान किया जाय तो उनमें बहुत ही अधिक अन्तर मिलता है । यही नहीं, किसी भी पुराण की वंशावलि को बिना किसी दूसरे से तुलना किये हुए यदि हम क्रमशः देखते हैं, तो उसमें भी भ्रम होता है । किन्तु विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवत इस दोष से किसी सीमा तक मुक्त कहे जा सकते हैं । भागवत और विष्णुपुराण की वंशावलियों का मिलान करने से पता चलता है कि वे काफी समान हैं, फिर भी कई स्थानों पर ऐसे अन्तर मिलते हैं जिन्हें गौण नहीं कहा जा सकता ।

(१) स्वायम्भुव मनु की कन्याओं के वंश का वर्णन

स्वायम्भुव मनु के वंश का वर्णन करते हुए विष्णुपुराण में लिखा है कि "उन स्वायम्भुव मनु से शतरूपा देवी ने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा दो कन्याएँ, प्रसूति और आकूति नाम की उत्पन्न कीं । उनमें से प्रसूति को दक्ष के साथ और आकूति को रुचि प्रजापति के साथ विवाह दिया ।[2]"

श्रीमद्भागवत में भी स्वायम्भुव मनु के पुत्रों और पुत्रियों की गणना की गई है किन्तु उसमें विष्णुपुराण से अन्तर है । भागवतपुराण में स्वायम्भुव मनु की

---

[1] सूरसागर, तृतीय स्कंध, पद सं० ८ [2] विष्णु पु० १, ७, १८, १६

प्रसूति और आकूति के अतिरिक्त देवदूति नाम की कन्या का भी वर्णन है, जो कि विष्णुपुराण में नहीं है। भागवतपुराण में लिखा है :—

"स्वायम्भुव के महारानी शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तानपाद हुए। इन दो पुत्रों के अतिरिक्त तीन कन्याएँ भी हुईं। वे आकूति, देवहूति और प्रसूति नाम से विख्यात थीं।[1] उनमें से एक आकूति रुचिप्रजापति के साथ ब्याही गई।[2] मनुजी ने अपनी दूसरी कन्या देवहूति कर्दम को ब्याही और तीसरी कन्या प्रसूति का विवाह ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति से किया।"[3]

सूरदास पर विष्णुपुराण की अपेक्षा भागवतपुराण का स्पष्टतः अधिक प्रभाव पड़ा है। इसलिए उन्होंने भी भागवतपुराण के अनुसार ही स्वायम्भुवमनु की तीन कन्याओं का वर्णन किया है। वे कहते हैं—

स्वायम्भुवमनु सुत भये दोइ। तनया तीनि, सुनौ अब सोइ।
दक्ष प्रजापति कौं एक दई। इक रुचि, एक कर्दम तिय भई।[4]

स्वायम्भुवमनु की कन्याओं के वंश का वर्णन भागवतपुराण तथा विष्णुपुराण में पर्याप्त विस्तार से दिया गया है; किन्तु सूर ने उतने विस्तार से नहीं किया है। केवल मुख्य-मुख्य प्रख्यात राजाओं का ही वर्णन किया है।

भागवतपुराण में लिखा है कि देवहूति के पुत्र कपिलजी हुए। वे स्वयं विष्णु भगवान् के अवतार थे। भागवतपुराण के तृतीय स्कंध के चौबीसवें अध्याय में पर्याप्त विस्तार से कपिलजी के जन्म का वर्णन हुआ है। सूरदास ने भागवतपुराण के अनुसार ही स्वायम्भुव मनु की कन्या देवहूति के वंश में कपिलजी के जन्म का वर्णन किया है।

कर्दम पुत्र हेतु तप कियौ। तासु नारिहूँ यह व्रत लियौ।
हरिसों पुत्र हमारे होइ। और जगत सुख चहैं न कोइ।
नारायण तिनकों वर दियौ। मोसौं और न कोऊ बियौ।
मैं लैहौं तुम गृह अवतार। तप तजि, करौ भोग संसार।
दुहुँ तब तीरथ माँहि नहाए। सुन्दर रूप दुहुँ जन पाए।
भोग सामग्री जुरी अपार। विचरन लागे सुख संचार।
तिनके कपिलदेव सुत भए। परम सुभाग्य मानि तिन लए।[5]

---

[1] भा० ४, १, १ [2] भाग० ४, १, २ [3] भाग० ४, १, १०, ११
[4] सूरसागर तृतीय स्कंध, पद सं० १२ [5] सूरसागर तृतीय स्कंध, पद सं० १३

स्वायम्भुवमनु की दूसरी पुत्री आकूति के वंश का वर्णन भी भागवतपुराण के चतुर्थ स्कंध में पर्याप्त विस्तार से किया गया है। और ठीक उसी प्रकार से हिन्दी में कृष्णभक्त कवि सूरदास ने किया है।

रुचि कै अत्रि नाम सुत भयौ। ब्याहि अनुसुया सौं सो दयौ।
ताकैं भयो दत्त अवतार। सूर कहत भागवतऽनुसार।[1]

स्वायम्भुवमनु की तीसरी पुत्री प्रसूति के वंश का भी वर्णन भागवतपुराण और विष्णुपुराण में वर्णित है। भागवतपुराण में लिखा है :—

"ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति ने मनु-नन्दिनी प्रसूति से विवाह किया। उससे उन्होंने सुन्दर नेत्रों वाली सोलह कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमें से सती महादेव की पत्नी हुई[2]।"

विष्णुपुराण में लिखा है :—

"दक्ष ने प्रसूति से चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं।[3] उनमें से सती शिव को विवाही गई।"[4]

इन दोनों पुराणों में दक्ष की पुत्रियों की संख्या में परस्पर अन्तर है और सूरदास ने तो इनसे भी भिन्न दक्ष कन्याओं की संख्या बताई है।

दक्ष के उपजीं पुत्री सात। तिनमैं सती नाम विख्यात।
महादेव कौं सो तिन दई। पुनि सो दक्ष जज्ञ मैं मुई।[5]

भागवतपुराण तथा विष्णुपुराण में दक्ष कन्याओं के वंश का बहुत अधिक विस्तृत वर्णन है, किन्तु हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूर ने उनका वर्णन इतना ही किया है।

(२) उत्तानपाद के वंश का वर्णन

स्वायम्भुवमनु के पुत्र उत्तानपाद के वंश का विस्तृत वर्णन भागवतपुराण के चतुर्थ स्कंध में दिया गया है।[6] इसमें उत्तानपाद के वंश के समस्त राजाओं का वर्णन हुआ है और कुछ का जैसे ध्रुव, बेन, पृथु आदि का बहुत विस्तृत वर्णन हुआ है। विष्णुपुराण में भी उत्तानपाद के वंश का बहुत विस्तृत वर्णन

---

[1] सूरसागर चतुर्थ स्कंध, पद सं० २ [2] भाग ४, १, ४७ [3] विष्णु पु० १, ७, २२ [4] विष्णु पु० १, ७, २३, २७ [5] सूरसागर चतुर्थ स्कंध, पद सं० ४ [6] भाग ४, ८, ३१

हुआ है, साथ ही प्रमुख राजाओं के चरित्रों का भी विस्तृत वर्णन किया गया है।[1]

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूरदास ने भी उत्तानपाद के वंश के प्रमुख राजाओं का वर्णन किया है। सूरदास का यह वर्णन ठीक भागवतपुराण और विष्णुपुराण के समान है। सूरदास ने उत्तानपाद के वंश का वर्णन इस प्रकार किया है :—

उत्तानपाद पृथ्वीपति भयौ। ताकौ जस तीनो पुर छयौ।
नाम सुनीति बड़ी तिहिं दार। सुरुचि दूसरी ताकी नार।
भयौ सुरुचि तैं उत्तम कार। अरु सुनीति के ध्रुव सुकुमार।

× × ×

इसी वंश में आगे चलकर दुष्ट राजा बेन हुआ। उसका महात्मा पुत्र (भुजा के मंथन से) पृथु हुआ। इनकी कथा सूर ने इस प्रकार वर्णन की है :—

बेनु नृप भयौ बलवंत जब पृथी पर,
रिषिनि सौं कह्यौ जप तप निवारौ।
मोहिं विधि, विष्नु, सिव, इंद्र,
रवि-ससि गनौ, नाम मन लेइ आहुतिनि डारौ।
जज्ञ मैं करत तब मेघ बरसत मही
बीज अंकुर तबै जमत सारौ।
होइ तिन क्रोध तब साप ताकौं दयौ,
मारिकै ताहि जग दुःख टारौ।
भयौ आराज जब, रिषिनि तब मंत्र करि,
बेनु की जाँघ कौ मथन कीन्हौ।
जाँघ के मथे तैं पुरुष परगट भयौ,
स्याम तिहिं भील कौ राज दीन्हौ।
बहुरि जब रिषिनि भुज दछिन कीन्ही मथन,
लच्छमी सहित पृथु दरस दीन्हौ।[2]

यद्यपि पुराणों में उत्तानपाद के वंश का वर्णन बहुत विस्तार से दिया गया है तथापि सूर ने इतना ही वर्णन किया है।

---

[1] विष्णु पु० १, ११-१५ [2] सूरसागर, चतुर्थ स्कंध, पद ११

(३) प्रियव्रत के वंश का वर्णन

स्वायम्भुव मनु के द्वितीय पुत्र प्रियव्रत के वंश का वर्णन भी पुराणों में पर्याप्त विस्तार से दिया गया है। भागवतपुराण के पंचम स्कंध में प्रियव्रत का वंश-वर्णन हुआ है। ब्रह्मा से स्वायम्भुवमनु हुए, स्वायम्भुवमनु से प्रियव्रत हुए, प्रियव्रत से आग्नीध्र हुए, आग्नीध्र से नाभि हुए, नाभि से ऋषभ और ऋषभ से भरत हुए। भागवतपुराण तथा विष्णुपुराण में और आगे काफी लम्बी वंशावली दी गई है। विष्णुपुराण में भी द्वितीय अंश के प्रथम अध्याय में पर्याप्त विस्तार से प्रियव्रत के वंश का वर्णन दिया हुआ है।

सूरदास ने भी ठीक भागवतपुराण और विष्णुपुराण के समान ही प्रियव्रत के वंश का वर्णन किया है। लेकिन सूर ने पूरी वंशावली न देकर केवल राजा भरत तक की ही वंशावली दी है :—

ब्रह्मा स्वायम्भुव मनु जायौ। तातैं जन्म प्रियव्रत पायौ।
प्रियव्रत के अग्नीध्र सु भयौ। नाभि जन्म ताही तैं लयौ।
नाभि नृपति सुत-हित जग कियौ। जज्ञ-पुरुष तब दरसन दियौ।
विप्रनि अस्तुति विविध सुनाई। पुनि कह्यौ सुनियै त्रिभुवनराई।
तुम सम पुत्र नाभि कैं होइ। कह्यौ मो सम जग और न कोइ।
मैं हरता - करता - संसार। मैं लैहौं नृप-गृह अवतार।
रिषभदेव तब जनमे आइ। राजा कै घर बजी बधाइ।
बहुरौ रिषभ बड़े जब भए। नाभि राज दै बन कौं गए।

× × ×

रिषभ राज सब मन उत्साह। कियौ जयन्ती सौं पुनि ब्याह।
तासौं सुत निन्यानबै भए। भरतादिक सब हरि-रंग रए।[1]

(४) वैवस्वतमनु के वंश का वर्णन

वैवस्वत मनु के दस पुत्र हुए। इनमें से इक्ष्वाकु के वंश में अनेक बड़े-बड़े राजा हुए। उनमें एक मान्धाता भी प्रसिद्ध थे। मान्धाता ने शतविंदु की पुत्री विंदुमती से विवाह किया और उससे पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द नामक तीन पुत्र हुए तथा पचास कन्याएँ हुईं। इन पचास कन्याओं का वरण महर्षि

---

[1] सूरसागर पंचम स्कंध, पद सं० २

सौभरि ने किया। इसका वर्णन पर्याप्त विस्तार से भागवतपुराण[1] और विष्णु-पुराण[2] में दिया गया है।

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूरदास ने भी महर्षि सौभरि और इक्ष्वाकु वंश के राजा मान्धाता की पचास पुत्रियों की कथा पर्याप्त विस्तार से दी है। सूरदास द्वारा वर्णित यह कथा भागवतपुराण और विष्णुपुराण की कथा से पूर्णरूप से मिलती है। फिर भी अधिक प्रभाव भागवतपुराण का ही दिखाई पड़ता है। सूरदास ने सौभरि ऋषि और मान्धाता की पचास पुत्रियों के विवाह का वर्णन इस प्रकार किया है :—

सौभरि रिषि जमुना तट गयौ। तहाँ यच्छ इक देखत भयौ।
सहित कुटुम्ब सो क्रीड़ा करै। अति उत्साह हृदय मैं धरै।
ताहि देखि रिषि कैँ मन आई। गृह आस्रम है अति सुखदाई।
तप तजि के गृह-आस्रम करौ। कन्या एक नृपति की बरौं।
कह्यौ मान्धाता सों जाइ। पुत्री एक देहु मोहिं राइ।
नृप कह्यौ देखि वृद्ध रिषि-देह। हैं पचास पुत्री मम गेह।
अंतःपुर भीतर तुम जाहु। बरैं तुम्हें तिहिं करौ बिबाहु।
तब ऋषि मन मैं कियौ विचार। बिरध पुरुष को बरै न नार।
तप बल कियौ रूप अति सुन्दर। गयौ तहाँ जहँ नृप कौ मन्दिर।
सब कन्यनि सौभरि को बरयौ। रिषि विवाह सबहिन सौं करयौ।

× × ×

तिनकैं बहुत भई संतान। कहँ लगि तिनकौं करौं बखान।[3]

मान्धाता के पुत्र पुरुकुत्स के वंश में राजा सगर हुए। विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवत में राजा सगर और उनके वंश के कई राजाओं का वर्णन पर्याप्त विस्तार से हुआ है। भागवतपुराण की यह कथा संक्षेप में इस प्रकार है :—

राजा सगर चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्होंने और्व ऋषि के उपदेशानुसार अश्वमेध यज्ञ के द्वारा भगवान् की आराधना की। उस यज्ञ में जो घोड़ा छोड़ा गया उसे इन्द्र ने चुरा लिया। उस समय महारानी सुमति के गर्भ से उत्पन्न सगर के पुत्रों ने अपने पिता की आज्ञा से घोड़े के लिए सारी पृथ्वी छान डाली।

---

[1] भाग० ९, ६ [2] विष्णु पु० ४, २ [3] सूरसागर, नवम स्कंध, पद सं० ८

जब उन्हें कहीं घोड़ा न मिला तो उन्होंने बड़े घमंड से सब ओर से पृथ्वी को खोद डाला। खोदते-खोदते उन्हें पूर्व और उत्तर के कोने पर कपिल पुनि के पास अपना घोड़ा दिखाई दिया। घोड़े को देखकर वे साठ हजार राजकुमार शस्त्र उठाकर चिल्लाते हुए उनकी ओर दौड़े कि—"यही हमारा घोड़ा चुराने-वाला चोर है। इसे मारो, इसे मारो।" उसी समय कपिल मुनि ने अपनी पलकें खोलीं जिसके फलस्वरूप उन राजकुमारों के शरीर में आग लग गई, और क्षण भर में वे जलकर भस्म हो गए।

राजा सगर को जब पता चला तो उन्होंने अपनी दूसरी रानी केशिनी से उत्पन्न असमंजस के पुत्र अंशुमान को घोड़ा खोजने को भेजा। अंशुमान ने अपने आचार्यों के द्वारा खोदे हुए समुद्र के किनारे-किनारे चलकर उनके शरीर के भस्म के पास ही घोड़े को देखा। वहीं भगवान् के अवतार कपिल मुनि बैठे हुए थे। उनको देखकर उदार हृदय अंशुमान ने चरणों में प्रणाम किया और हाथ जोड़कर एकाग्र मन से उनकी स्तुति की। तब कपिल मुनि ने कहा कि "यह घोड़ा तुम्हारे पितामह का यज्ञपशु है। इसे तुम ले जाओ, तुम्हारे जले हुए आचार्यों का उद्धार केवल गंगाजल से होगा और कोई उपाय नहीं है।" यह सुन अंशुमान घोड़ा लेकर चले आये।

तत्पश्चात् राजा सगर ने अंशुमान को राज्य देकर परम पद की प्राप्ति की। अंशुमान ने गंगा जी को पृथ्वी पर लाने की कामना से बहुत वर्षों तक तपस्या की परन्तु उन्हें सफलता न मिली। उनकी मृत्यु के पश्चात् अंशुमान के पुत्र दिलीप ने भी वैसी ही घोर तपस्या की परन्तु उन्हें भी सफलता न मिली। दिलीप के पुत्र थे भगीरथ, उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवती गंगा ने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि "मैं तुम्हें वर देने के लिए आई हूँ।" तब राजा भगीरथ ने बड़ी नम्रता से अपना अभिप्राय प्रकट किया कि 'आप मर्त्यलोक में चलिए'।

तब गंगा जी ने कहा—"जिस समय मैं स्वर्ग से पृथ्वीतल पर गिरूँ, उस समय मेरे वेग को कोई धारण करनेवाला होना चाहिए। ऐसा न होने पर मैं पृथ्वी को फोड़कर रसातल में चली जाऊँगी।" तब भगीरथ ने कहा कि भगवान् शंकर तुम्हारा वेग धारण कर लेंगे। भगीरथ ने फिर भगवान् शंकर को तपस्या द्वारा प्रसन्न किया और शिव जी ने सावधान होकर गंगा जी को अपने सिर पर धारण किया। इसके बाद राजर्षि भगीरथ त्रिभुवन-पावनी गंगा जी को वहाँ ले गए, जहाँ उनके पितरों के शरीर राख के ढेर बने पड़े थे।

गंगाजल से शरीर की राख का स्पर्श हो जाने से सगर के पुत्रों को स्वर्ग की प्राप्ति हो गई।[१]

इसी प्रकार भागवतपुराण के अनुसार ही सूर ने भी इक्ष्वाकुवंशी पुरुकुत्स के वंश के राजाओं का वर्णन किया है।[२]

(५) चन्द्रवंश का वर्णन

चन्द्रवंश का विशद वर्णन भागवतपुराण[३] और विष्णुपुराण[४] में हुआ है। इनमें चन्द्रवंशी पुरूरवा के चरित्र का वर्णन अधिक विस्तार से हुआ है। इसी वंश में यदु हुए और यदु से ही यदुवंश चला जिसमें आगे चलकर आनक-दुन्दुभि वसुदेव हुए। वसुदेव के वंश का वर्णन विष्णुपुराण में पर्याप्त विस्तार से दिया गया है।[५] विष्णुपुराण के पंचम अंश में कृष्ण का चरित्र बहुत विस्तार से वर्णित है। भागवतपुराण में भी वसुदेव के वंश का वर्णन और श्रीकृष्ण-चरित्र का वर्णन बहुत विस्तार से है।[६]

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत सूरदास ने भी चन्द्रवंशी पुरुरवा के चरित्र का वर्णन पर्याप्त विस्तार से किया है[७] और यदुवंशी श्रीकृष्ण का भी वर्णन बहुत विस्तार से किया है।[८]

---

[१] भाग० ६, ८, ९ [२] सूरसागर, नवम स्कंध, पद सं० ८ [३] भाग० ६, १४, १५ [४] विष्णु पु० ४, ६, ७, ८ [५] विष्णु० ४।१५, [६] भागवत १० [७] सूरसागर, नवम स्कंध, पद सं० २ [८] सूरसागर, दशम स्कंध (पूर्वार्ध-उत्तरार्द्ध)।

अध्याय ८

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर पुराणों के काव्य सम्बन्धी अंशों का प्रभाव

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य के अन्तर्गत नन्ददास के काव्य पर सबसे अधिक पौराणिक काव्य का प्रभाव पड़ा है। यों तो सूरदास के सूरसागर का मूल आधार भी श्रीमद्भागवत पुराण ही है, किन्तु काव्य सम्बन्धी अंशों का जितना अधिक प्रभाव नन्ददास पर पड़ा है उतना सूरदास पर नहीं। नन्ददास ने श्रीमद्भागत से अनेक स्थानों पर ज्यों के त्यों भाव ले लिये हैं। भाव ही नहीं, कहीं-कहीं तो शब्दावली तक ले ली गई है।

विरह-वर्णन—नन्ददास के विरह-वर्णन का आधार पूर्णरूप से भागवत पुराण का विरह-वर्णन ही है। "रासपंचाध्यायी" के तीसरे अध्याय का गोपी-विरह-वर्णन भागवतपुराण के दशम स्कंध के ३१ वें अध्याय के गोपिकागीत पर ही आधारित है। नन्ददास ने 'गोपिकागीत' से केवल भाव ही नहीं, वरन शब्द भी ले लिये हैं। नन्ददास की गोपी कहती है :—

नैन मूँदिबो महाशब्र लै हाँसी हाँसी।
भारत हौ कित सुहृथ नाथ बिनु मोल की दासी।[1]

भागवत में लिखा है :—

शरदुदाशये साधुजातसत् सरसिजोद्र श्रीमुषा द्दशा।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद् निघ्नतो नेह किं वधः ॥[2]

इसमें 'तेऽशुल्कदासिका' देखने योग्य है। नन्ददास ने इसका अनुवाद "बिनु मोल की दासी" करके रख दिया है। इसी प्रकार नन्ददास ने भावों के साथ ही साथ अनेक शब्दों को भी श्रीमद्भागवत से ले लिया है।

गोपियाँ वियोगावस्था में, श्रीकृष्ण द्वारा किये गये उपकारों का स्मरण करती हुई कहती है :—

---

[1] नंददास ग्रन्थावली, रासपंचाध्यायी, छन्द २ [2] भाग० १०।३१।२

विष तैं, जल तैं, व्याल अनल तैं चपला झर तैं।
क्यों राखी, नहिं मरन दई नागर, नगधर तैं ॥[१]

यह भाव भी भागवत के एक श्लोक से ही लिया गया है, जिसमें गोपियाँ कहती हैं—"पुरुष शिरोमणे! यमुना जी के विषैले जल से होनेवाली मृत्यु, अजगर के रूप में लानेवाले अघासुर, इन्द्र की वर्षा, आँधी, बिजली, दावानल, वृषभासुर और व्योमासुर आदि से एवं भिन्न-भिन्न अवसरों पर सब प्रकार के भयों से तुमने बारम्बार हम लोगों की रक्षा की है।"[२]

कुछ समय पश्चात् श्रीकृष्ण उन गोपियों के बीच से ही प्रकट हो गये। इसका नन्ददास ने वर्णन इस प्रकार किया है :—

तब तिनहीं में ते निकसे नंदनंदन पिय यौं।
दृष्टि बंध कै दुरै बहुरि प्रगटै नटवर ज्यौं॥
पीत बसन बनमाल बनी मंजुल मुरली हथ।
मन्द मधुरतर हँसत निपट मनमथ के मनमथ।[3]

नन्ददास ने यह भाव भागवत के निम्नलिखित श्लोक से लिया है :—

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥[४]

भाव के साथ ही श्लोक के उत्तरार्द्ध का अनुवाद करके ऊपर दिये हुए छन्द में कवि ने रख दिया है।

श्रीकृष्ण के पुनः प्रकट हो जाने पर श्रीमद्भागवत की गोपियाँ उनसे पूछती हैं कि "नटनागर! कुछ लोग तो ऐसे होते हैं जो प्रेम करनेवाले से ही प्रेम करते हैं और कुछ लोग प्रेम न करनेवालों से भी प्रेम करते है; परन्तु कोई-कोई दोनों से ही प्रेम नहीं करते। इन तीनों में तुम्हें कौन-सा अच्छा लगता है?"[५]

---

[१] नंददासग्रन्थावली, 'रासपंचाध्यायी', अ० ३, छन्द ३ [२] भाग० १०।३१।३ [3] नन्ददासग्रन्थावली, 'रासपंचाध्यायी' अ० ४, छन्द २३ [४] भाग० १०।३२।२

[५] भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम्।
नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः॥ —भाग० १०।३२।१६

नन्ददास की गोपियाँ भी ठीक इसी प्रकार श्रीकृष्ण से कहती हैं :—

इक भजते को भजैं एक अनभजतनि भजहीं।
कहौ, कान्ह ते कवन आहि जे दुहुँ अनि तजहीं।[1]

नन्ददास के भ्रमरगीत में भी विरह की अनुभूति बहुत तीव्र है। जब गोपियाँ सुनती हैं कि उद्धव श्रीकृष्ण का संदेश लेकर आये हैं, तो उनकी अवस्था देखिये—

सुनत स्याम को नाम बाम गृह की सुधि भूली।
भरि आनंद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली॥
पुलक रोम सब अंग भए भरि आए जल नैन।
कंठ घुटे गद्गद् गिरा बोल्यो जात न बैन॥
विवस्था प्रेम की।

और,

अर्घासन बैठाय बहुरि परिकरिया दीनी।
स्याम-सखा निज जानि बहुत हित सेवा कीनी॥
बूझत सुधि नंदलाल की बिहँसत मुख ब्रजबाल।
नीके हैं बलवीर जू, बोलनि बचन रसाल॥
सखा ! सुन श्याम के।[2]

श्रीमद्भागवत में भी गोपियों की यही दशा हो जाती है :—

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं,
सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः।
रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने,
विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः॥[3]

अर्थात् जब उन्हें मालूम हुआ कि ये तो रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण का संदेश लेकर आये हैं, तब उन्होंने विनय से झुककर सलज्ज हास्य, चितवन और मधुर वाणी आदि से उद्धव जी का अत्यंत सत्कार किया तथा एकान्त में आसन पर बैठकर वे उनसे इस प्रकार कहने लगीं।

---

[1] नन्ददास ग्रन्थावली, 'रासपंचाध्यायी' अ० ४ छ० १४ [2] नन्ददास-ग्रन्थावली, 'भ्रमरगीत'। [3] भाग० १०।४७।३

उद्धव से वार्त्तालाप करते समय गोपियों की 'वियोग में संयोग' वाली अवस्था हो गई। श्रीमद्भागवत में यह वर्णन इस प्रकार है—

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदन्त्यश्च गतह्रियः।
तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥[१]

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण ने बचपन से लेकर किशोर अवस्था तक जितनी भी लीलाएँ की थीं, उन सबको याद कर करके गोपियाँ उनका गान करने लगीं। वे आत्म-विस्मृत होकर स्त्री-सुलभ लज्जा को भी भूल गईं और फूट-फूट कर रोने लगीं।

'वियोग में संयोग' वाली अवस्था का चित्रण नन्ददास ने और भी अधिक सजीव किया है—

ऐसे में नंदलाल रूप नैननि के बागे।
आय गयौ छबि छाय बने बीरी अरु आगे॥
ऊधौ सो मुख मोरिकै कहत तिनहिं सो बात।
प्रेम अमृत मुख तें स्रवत अंबुज नैन चुचात॥
तरक रस रीति की।[२]

तत्पश्चात् गोपियाँ श्रीकृष्ण के पूर्व अवतारों का स्मरण कर कहने लगीं—

कोउ कहै ये परम धर्म इस्त्रीजित पूरे।
लच्छ लाघव संधान धर आयुध के सूरे॥
सीता जू के कहे ते सूपनखा पै कोपि।
छेदे अंग विरूप करि लोगनि लज्जा लोपि॥
कहा ताकी कथा।[3]

कोउ कहै री सुनौ और इनके गुन आली।
बलिराजा पै गए भूमि माँगन बनमाली॥
माँगत बामन रूप धरि, परबत भयौ अकास।
सत्त धर्म सब छाँड़ि कै, धर्यौ पीठ पै पाँय॥
लोभ की नाव ये।[४]

---

[१] भाग० १०।४७।१० [२] नन्ददास ग्रंथावली, भ्रमरगीत, पद २६
[3] नन्ददास ग्रन्थावली, भ्रमरगीत, पद ३७ [४] नंददास ग्रन्थावली, भ्रमरगीत, पद ३८

यह वर्णन नन्ददास ने भागवतपुराण के निम्नलिखित श्लोकों से लिया है—

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधेलुब्धधर्मा
स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम्।
बलिमपि बलिमत्वावेष्टयद् ध्वांक्षवद्य-
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥[1]

अर्थात् जब वे राम बने थे, तब उन्होंने कपिराज बलि को व्याध के समान छिपकर बड़ी निर्दयता से मारा था। बेचारी शूर्पणखा कामवश उनके पास आई थी, परन्तु उन्होंने अपनी स्त्री के वश होकर उस बेचारी के नाक-कान काट लिए और इस प्रकार उसे कुरूप कर दिया। ब्राह्मण के घर वामन के रूप में जन्म लेकर उन्होंने क्या किया? बलि ने तो उनकी पूजा की, उनको मुँहमाँगी वस्तु दी और उन्होंने उसकी पूजा ग्रहण करके भी उसे वरुड़पाश से बाँध कर पाताल में डाल दिया। ठीक वैसे ही जैसे कौआ बलि खाकर भी बलि देनेवाले को अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर घेर लेता है और परेशान करता है। अच्छा, तो अब जाने दें, हमें कृष्ण से क्या, किसी भी काली वस्तु के साथ मित्रता से कोई प्रयोजन नहीं है। परन्तु यदि तू यह कहे कि "जब ऐसा है तब तुम लोग उनकी चर्चा क्यों करती हो?" तो भ्रमर! हम सच कहती हैं, एक बार जिसे उसका चसका लग जाता है वह उसे छोड़ नहीं सकता। ऐसी दशा में हम चाहने पर भी उनकी चर्चा नहीं छोड़ सकतीं।

भागवतपुराण में भ्रमरगीत के प्रकरण में गोपियाँ उद्धव के लिए कहती हैं— "मधुप कितवबन्धो"[2] अर्थात् "मधुप तू कपटी का सखा है।" नन्ददास की गोपी भी कहती है :—

"तुमहीं सो कपटी हुतो नागर नंद, किसोर।[3]"

यहाँ नन्ददास ने भाव के साथ ही साथ 'कितब' का 'कपटी' ही अनुवाद करके ले लिया है।

रास-वर्णन

रास वर्णन में भी नन्ददास ने भागवतपुराण के अनेक भाव और छंद ज्यों

---

[1] भाग० १०।४७।१७ [2] भाग १०।४७।१२ [3] नन्ददास ग्रन्थावली, भ्रमरगीत, पद ४६

के त्यों ले लिये हैं। कृष्ण जब गोपियों का आह्वान करने के लिए बंशी बजाते हैं तो गोपियाँ अपने सब कार्यों को छोड़कर श्रीकृष्ण के पास चल देती हैं। नन्ददास के इस वर्णन के आधार, भागवतपुराण के कुछ श्लोक हैं। भागवतपुराण में लिखा है—"जो भोजन परस रही थीं वे परसना छोड़कर, जो छोटे छोटे बच्चों को दूध पिला रही थीं वे दूध पिलाना छोड़कर, जो पतियों की सेवा कर रही थीं वे सेवा-शुश्रूषा छोड़कर और जो स्वयं भोजन कर रही थीं वे भोजन करना छोड़कर अपने प्रियतम कृष्ण के पास चल पड़ीं।"[1]

नन्ददास ने भी निम्नलिखित पंक्तियों में लगभग वही भाव व्यक्त किये हैं—

> कोइ गमनी तजि सौंहन, दौंहन, भोजन सेवा।
> अंजन, मंजन, चंदन, द्विज-पति-देव निषेवा।
> धर्म अर्थ अरु काम कर्म इह निगम निदेशा।
> सब परिहरि हरि भजति भई करि बड़ उपदेशा।[2]

श्रीकृष्ण मिलन की आतुरता में गोपियाँ आभूषण वस्त्र आदि भी उलटे-पुलटे धारण कर लेती हैं। भागवतकार ने लिखा है :—

> "व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः।[3]"

अर्थात्, उल्टे-पुल्टे वस्त्र और आभूषण धारण कर श्रीकृष्ण के पास पहुँचने के लिए चल पड़ीं। नन्ददास ने भी 'कहूँ के कहूँ आभरन' पहनने का वर्णन किया है—

> जदपि कहूँ के कहू बहु आभरन आनि बनाये।
> हरि पिय पैं अनुसरन जहाँ क तहाँ चलि आये।[4]

श्रीकृष्ण के पास जाने से, उनके माता, पिता, भाई, पति आदि ने उन्हें रोका किन्तु वे न रुकीं। भागवतकार ने लिखा है—

> ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः।
> गोविन्दापहृतात्मानो नन्यवर्तन्त मोहिताः।[5]

---

[1] परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः।
शुश्रूषन्त्यः पतीन् कश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम्। —भाग० १०।२६।६

[2] नन्ददास ग्रन्थावली, सिद्धांत पंचाध्यायी, छंद ३०-३१ [3] भाग०१०।२६।७

[4] नन्ददास ग्रंथावली, सिद्धांत पंचाध्यायी, छंद ३३ [5] भाग० १०।२६।८

अर्थात् पिता और पतियों ने, भाई और जाति बन्धुओं ने उन्हें रोका, उनकी मंगलमयी प्रेमयात्रा में विघ्न डाला; परन्तु वे इतनी मोहित हो गयी थीं कि रोकने पर भी न रुकीं। रुकतीं कैसे? विश्वविमोहन श्रीकृष्ण ने उनके प्राण, मन और आत्मा सब कुछ का अपहरण जो कर लिया था। नन्ददास ने भी लगभग यही भाव निम्नलिखित छन्द में व्यक्त किये हैं :—

मातु, पिता, पति कुल पति, सुत, पति रोक रहे सब।
नहिंन रूकी रस घुकीं जाय सो मिली तहाँ सब।[1]

उन गोपियों में से कुछ ऐसी भी थीं जिन्हें घर से निकलना न मिल सका किन्तु वे भी अपना गुणमय शरीर त्याग कर चिद्स्वरूप से अपने प्रिया से मिल गईं। भागवत के दो श्लोकों में यही भाव कुछ विस्तार से दिया गया है :—

अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः।
कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः॥
दुःसह प्रेष्ठविरहतीव्रतापधुता शुभाः।
ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेष निर्वृत्या क्षीणमंगला॥[2]

अर्थात् उस समय कुछ गोपियाँ घरों के भीतर थीं। उन्हें बाहर निकलने का मार्ग ही न मिला। तब उन्होंने अपने नेत्र मूँद लिये और बड़ी तन्मयता से श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, माधुर्य और लीलाओं का ध्यान करने लगीं। अपने परम प्रियतम श्रीकृष्ण के असह्य विरह की तीव्र वेदना से उनके हृदय में इतनी व्यथा, इतनी जलन हुई कि उनमें जो कुछ अशुभ संस्कारों का लेशमात्र अवशेष था, वह भस्म हो गया। इसके बाद तुरंत ही ध्यान लग गया। ध्यान में उनके सामने भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने मन ही मन बड़े प्रेम से, बड़े आवेग से उनका आलिंगन किया। उस समय उन्हें इतना सुख, इतनी शान्ति मिली कि उनके सबके सब पुण्य संस्कार एक साथ ही क्षीण हो गये।

विष्णुपुराण में भी लगभग ऐसा ही वर्णन मिलता है। एक स्थान पर लिखा है—"कोई गोप कुमारी जगत् के कारण परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण का चिंतन करते-करते (मूर्च्छावस्था में) प्राणापान के रुक जाने से मुक्त हो गयी, क्योंकि भगवद्ध्यान के विमल आह्लाद से उसकी समस्त पुण्यराशि क्षीण हो गई और भगवान् की अप्राप्ति के महान् दुःख से उसके समस्त पाप लीन हो गये।"

---

[1] नंददास ग्रन्थावली, सिद्धांतपंचाध्यायी, छंद ३५ [2] भाग० १०।२९।९,१०

तच्चित्तविमलाह्लादक्षीणपुण्यचया तथा ।
तदप्राप्तिमहादुःखविलीनाशेषपातका ॥२१॥
चिन्तयन्ती जगत्सूतिं परब्रह्मस्वरूपिणम् ।
निरुच्छ्वासतया मुक्तिं गतान्या गोपकन्यका ॥२२॥[1]

मुरली की ध्वनि सुनकर जब गोपियाँ शरद-रात्रि में श्रीकृष्ण के पास पहुँच गईं तो श्रीकृष्ण ने उन्हें लोक-मर्यादा का उपदेश देते हुए लौट जाने के लिए कहा। तब गोपियाँ उनसे कहती हैं :—

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग
स्त्रीणांस्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ।[2]

अर्थात्, तुम सब धर्मों का रहस्य जानते हो। तुम्हारा यह कहना कि 'अपने पति, पुत्र और भाई-बन्धुओं की सेवा करना ही स्त्रियों का स्वधर्म है'—अक्षरशः ठीक है; परन्तु इस उपदेश के अनुसार हमें तुम्हारी ही सेवा करनी चाहिए, क्योंकि तुम्हीं सब उपदेशों के पद (चरण लक्ष्य) हो, साक्षात् भगवान् हो। तुम्हीं समस्त शरीरधारियों के सुहृद् हो, आत्मा हो और परम प्रियतम हो।

नन्ददास की गोपियाँ भी इसी प्रकार कहती हैं—

तिन कहुँ हो तुम प्रान नाथ फिर धर्म सिखावहु ।
समुझि कहौ पिय बात 'चतुर सिरमौर कहावहु ।
दार गार सुत पति इन करि कहो कवन आहि सुख ।
बढ़ै रोग सम दिन-दिन छिन-छिन देहिं महादुःख ।[3]

रास के समय एकाएक श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं, फिर कुछ समय पश्चात् प्रकट हो जाते हैं। उस समय गोपियाँ विरह-जन्य शोक, क्रोध आदि को छोड़ देती हैं। भागवतपुराण का एक श्लोक देखिये—

इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ।
जहुर्विरहजं तापं तदगोपचिताशिषः ॥[4]

---

[1] विष्णु पु० ५।१३।२१, २२ [2] भाग० १०।२६।३२ [3] नन्ददास ग्रंथावली, सिद्धांतपंचाध्यायी, छंद ५७,५६ [4] भाग० १०।३२।१

अर्थात् गोपियाँ भगवान् की इस प्रकार प्रेमभरी सुमधुर वाणी सुनकर जो कुछ विरह-जन्य ताप शेष था, उससे भी मुक्त हो गईं और सौंदर्य-माधुर्यनिधि प्राणप्यारे के अंग-संग से सफल मनोरथ हो गईं।

नन्ददास ने भी इस भाव को ज्यों का त्यों ले लिया है। वे कहते हैं—

सुनि पिय के रस बचन सबनि गँसि छाँडि दयौ है।
बिहँसि आपने उर सौं लाल लगाय लयौं है ॥[१]

तत्पश्चात् रास का आरम्भ हुआ। रास में रत गोपियों के आभूषणों की झंकार का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

नूपुर, कंकन, किंकिनि, करतल, मंजुल मुरली।
ताल मृदंग उपंग चंग एकै सुर जुरली ॥[२]

इन्हीं आभूषणों का वर्णन भागवतपुराण के इस श्लोक में देखिये—

बलयानां नूपुराणां किंकिणीनां च योषिताम्।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥[3]

अर्थात् रासमंडल में सभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्यामसुन्दर के साथ नृत्य करने लगीं। उनकी कलाइयों के कंगन, पैरों के पायजेब और करधनी के छोटे-छोटे घुँघरू एक साथ बज उठे। असंख्य गोपियाँ थीं, इसलिए यह मधुर-ध्वनि भी बड़े ही जोर की हो रही थी।

भागवतपुराण में रास के अंत में रास की निर्दोषिता दिखाई गई है। एक स्थान पर लिखा है—

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः।
द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षज प्रिया ॥[४]

अर्थात् चेदिराज शिशुपाल भगवान् के प्रति द्वेषभाव रखने पर भी अपने प्रकृत शरीर को छोड़कर अप्राकृत शरीर से उनका पार्षद हो गया। ऐसी स्थिति में जो समस्त प्रकृति और उसके गुणों से अतीत भगवान् श्रीकृष्ण की प्रिय हैं और उनसे अनन्य प्रेम करती हैं, वे गोपियाँ उन्हें प्राप्त हो जायँ—इसमें कौन-सी आश्चर्य की बात है।

---

[१] नंददास ग्रंथावली, रासपंचाध्यायी अ० ५, ६०१ [२] नंददास ग्रंथावली, रासपंचाध्यायी, अ०५, ६०६ [3]भाग० १०|३३|६ [४] भाग० १०|२९|१३

सिद्धांत पंचाध्यायी में भी कवि ने ठीक इसी प्रकार शिशुपाल का दृष्टांत देकर रास की गोपियों की निर्दोषिता दिखाई है :—

> महाद्वेष करि महाशुद्ध शिशुपाल भयौ जब।
> मुकुत होत वह दुष्टपनौ कहुँ संग न गयौ तब।
> अरज्यौ मखा श्रुवा यज्ञ साधन अवशेषै।
> स्वर्ग जाइ सुख पाइ बहुरि को तिन तन देखै।
> योगी जिहिं अष्टांग साधनाहू साधत ते।
> पाइ परम परमातम बहुरि का बहुरि करत ते।
> तैसेहिं ब्रज की बाम काम रस उत्कट करिकै।
> शुद्ध प्रेममय भईं लईं गिरिधर उर धरिकै।[1]

इस प्रकार रास के प्रकरण में नन्ददास ने भागवत के काव्य-संबंधी अंशों का पूर्ण आधार लिया है।

प्रकृति-वर्णन

भागवत के प्रकृति-वर्णन का नन्ददास के काव्य पर कहीं-कहीं बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा है। 'सिद्धांतपंचाध्यायी' में रासलीला के आरंभ में चंद्रदेव की मनोहर छटा का वर्णन कवि भागवतपुराण के एक श्लोक से प्रभावित होकर इस प्रकार करता है :—

> तिहि छिन सोइ उडुराज उदित सुरराज सहायक।
> कुंकुम मंडित प्रिया-बदन जनों रंजित नायक।
> कमल नैन प्रिय कौं हिय सुन्दर प्रेम समुद जस।
> पूरन शशि तनु निरषि हरषि बाढ़ी तरंग रस।[2]

यह प्रकृति-वर्णन भागवत के निम्नलिखित श्लोक पर आधारित है :—

> दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं
> रमाननाभं नवकुंकुमारुणम्।
> वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं
> जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्।[3]

---

[1] नन्ददास ग्रन्थावली, सिद्धांतपंचाध्यायी, छंद १११—११४ [2] नन्ददास ग्रन्थावली, सिद्धांतपंचाध्यायी, छंद २३, २४ [3] भाग० १०।२९।३

अर्थात् उस दिन चन्द्रदेव का मंडल अखंड था। पूर्णिमा की रात्रि थी। वे नूतन केशर के समान लाल-लाल हो रहे थे। कुछ संकोच मिश्रित अभिलाषा से युक्त जान पड़ते थे। उनका मुखमंडल लक्ष्मीजी के समान मालूम हो रहा था। उनकी कोमल किरणों से सारा वन अनुराग के रंग में रंग रहा था। वन के कोने-कोने में उन्होंने अपनी चाँदनी के द्वारा अमृत का समुद्र उड़ेल दिया था। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने दिव्य उज्ज्वल रस के उद्दीपन की पूरी सामग्री उन्हें और उस वन को देखकर अपनी बाँसुरी पर व्रजसुन्दरियों के मन को हरण करनेवाली कामबीज 'क्लीं' की अस्पष्ट एवं मधुर तान छोड़ी।

पुराणों में स्वतन्त्र प्रकृति-वर्णन को स्थान नहीं दिया गया है, इसी कारण हिन्दी कृष्णभक्त कवियों में भी उसका आधार कम दिखाई पड़ता है।

सौन्दर्य-वर्णन

नन्ददास पर भागवत के काव्य सम्बन्धी अंशों का पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है। नन्ददास के 'रासपंचाध्यायी' में श्री शुकदेव जी के नखशिख का वर्णन भागवत पुराण से लिया गया है, जिसमें यह वर्णन प्रथम स्कंध के १९वें अध्याय में आया है। नन्ददास के इस नखशिख वर्णन पर भागवत पुराण के वर्णन का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। नन्ददास लिखते हैं :—

"नीलोत्पल-दल श्याम अंग नव-जोबन भ्राजै।[1]"

भागवत पुराण में भी ठीक ऐसा ही लिखा है—"श्याम रंग था, चित्त को चुराने वाला भरा यौवन था—"श्यामं सदापीच्यवयोऽङ्ग लक्ष्म्या[2]।"

नन्ददास ने लिखा है कि उनकी "उन्नत नासिका थी।[3]" भागवत पुराण में भी लिखा है कि "नासिका कुछ ऊँची थी।"[4] नन्ददास ने उनके कंठ की उपमा शंख से दी है।[5] भागवत पुराण में भी उनके कंठ को 'कम्बुसुजातकण्ठम्' कहा गया है।[6] नन्ददास ने श्री शुकदेवजी के वक्षस्थल, उदर, नाभि आदि का वर्णन भी भागवत पुराण से ही लिया है। वे लिखते हैं :—

---

[1] नंददास ग्रन्थावली, रासपंचाध्यायी, अं० १, पृ० ३ [2] भाग० १।१९।२८
[3] नंददास ग्रन्थावली, रासपंचाध्यायी, अं० १, पृ० ३ [4] भाग० १।१९।२६
[5] नंददास ग्रन्थावली, रासपंचाध्यायी, अं० १, पृ० ३ [6] भाग० १।१९।२६

उर.बर पर अति छवि की भीर कछु बरनि न जाई।
जिहि अंतर जगमगत निरंतर कुँवर कन्हाई।
सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हिय सरवर रस पूरि चली मनु उमगि पनारी।
ता रस की कुंडिका नाभि अस सोभित गहरी।
त्रिबली ता महँ, ललित भाँति मनु उपजति लहरी।[1]

भागवतपुराण में यह वर्णन इस प्रकार है—

निगूढ़जंत्रु पृथुतुंगवक्षसमावर्तनाभिं वलिवल्गूदरं च।
दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम्॥[2]

अर्थात् हँसली ढकी हुई, छाती चौड़ी और उभरी हुई, नाभि भंवर के समान गहरी तथा उदर बड़ा ही सुन्दर, त्रिवली से युक्त था। लंबी-लंबी भुजाएँ थीं। मुख पर घुँघराले बाल बिखरे हुए थे। इस दिगम्बर वेष में वे श्रेष्ठ देवता के समान तेजस्वी जान पड़ते थे।

'रुक्मिणी मंगल' में नन्ददास ने कृष्ण के कुण्डनपुर आने पर उनके रूप का वर्णन किया है। जब कुण्डनपुर के निवासियों ने सुना कि श्रीकृष्ण वहाँ पधारे हैं तो वे सब जहाँ-तहाँ से उन्हें देखने आये। नन्ददास कहते हैं:—

पुर के लोगन सुनि कै श्री सुन्दर बर आए।
जहँ तहँ तै आये देखनि हरि बिसमय पाए।[3]

और उनमें से कोई कहने लगा कि ये ही रुक्मिणी के लायक नायक हैं:—

"कोऊ कहै यह नायक रुकमिनी बाके लायक।"[4]

भागवतकार ने भी ऐसा ही लिखा है:—

कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः।
आगत्य नेत्राञ्जलिभिः पपुस्तन्मुखपङ्कजम्॥[5]

अर्थात् विदर्भ देश के नागरिकों ने जब सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे हैं, तब वे लोग भगवान् के निवास-स्थान पर आए और अपने नयनों

---

[1] नन्ददास ग्रन्थावली, रासपंचाध्यायी, अ० १, पृ० ३, ४ [2] भाग० १।१६।२७। [3] नन्ददास ग्रंथावली, रुक्मिणी परिचय, छन्द ८४ [4] नंददास-ग्रन्थावली, रुक्मिणी परिचय, छन्द ९४ [5] भाग० १०।५३।३६

की अंजलि में भर-भर कर उनके वदनारविन्द का मधुर मकरंद रस पान करने लगे और वे आपस में इस प्रकार बातचीच करते थे—"रुक्मिणी इन्हीं की अर्द्धांगिनी होने के योग्य है और ये परम पवित्र मूर्ति श्यामसुन्दर रुक्मिणी के ही योग्य पति हैं। दूसरी कोई इनकी पत्नी होने योग्य नहीं है :—

अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा।
असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्यां समुचितः पतिः॥[१]

भाषा दशमस्कंध

नन्ददास ने 'भाषा दशमस्कंध' के प्रारम्भ में ही कहा है—"मित्र के कहने से ही मैं संस्कृत 'भागवत' का भाषा में वर्णन करता हूँ।[२]" ग्रंथ के पढ़ने से ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ भागवतपुराण का अक्षरशः अनुवाद नहीं है। श्रीमद्भागवत के भावों का इसमें विशेष रूप से समावेश है। कहीं-कहीं भागवत-पुराण की पंक्तियाँ की पंक्तियाँ ही ले ली गई हैं।

'भाषा दशमस्कंध' के दूसरे अध्याय में देवकी के गर्भ में स्थित श्रीकृष्ण की ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा की गई स्तुति में नन्ददास ने अपने कुछ धार्मिक विचारों का परिचय दिया है। श्रीमद्भागवत में भी यह स्तुति है, परन्तु नन्ददास ने अपने साम्प्रदायिक विचार अधिक मिला दिये हैं। तीसरे अध्याय में कृष्ण-जन्म-वर्णन है। श्रीमद्भागवत में भी यह विषय वर्णित है। चौथे अध्याय में कंस का कुपरामर्श वर्णित है। भागवतपुराण में भी यही विषय वर्णित है। पाँचवें अध्याय में नन्द के घर में कृष्ण के जन्म का उत्सव वर्णित है। भागवत-पुराण में भी यही विषय वर्णित है। इसी प्रकार छठे अध्याय में बकासुर और पूतनावध की कथा है। सातवें अध्याय में कृष्ण का बाल-चरित्र वर्णित है। भागवतपुराण की कथा के अनुसार शकटासुर और तृणावर्त-वध का भी इसमें वर्णन है। आठवें अध्याय में भागवत के अनुसार कृष्ण का उत्तरोत्तर बढ़ने और उनकी बाल-क्रीड़ाओं का वर्णन है। नन्ददास ने यह वर्णन अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से किया है। नवें अध्याय में कृष्ण के ऊखल-बंधन की कथा है। दसवें अध्याय में यमलार्जुन के उद्धार की कथा है और श्रीकृष्ण की स्तुति है। श्रीद्भागवत में भी यही विषय है। ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें अध्यायों में वत्सासुर, बकासुर और अघासुर के वध की कथा है। ब्रह्मा के मोह और उसके नाश का भी वर्णन है। भागवतपुराण में भी इन्हीं

---

[१] भाग० १०।५३।३७ [२] नन्ददास ग्रंथावली, भाषा दशमस्कंध, अ० १

अध्यायों में यही कथा है । चौदहवें अध्याय में ब्रह्मा द्वारा कृष्ण की स्तुति है। भागवतपुराण में भी यही प्रसंग है। पन्द्रहवें अध्याय में श्रीकृष्ण का वृन्दावन में गोचारण और वहीं धेनुकासुर के वध का वर्णन है। गोचारण प्रसंग में 'रास-पंचाध्यायी' के वर्णन के ढंग का वृन्दावन का वर्णन दिया गया है। भागवत-पुराण में भी यही विषय है। सोलहवें अध्याय में भागवतपुराण के अनुसार ही दावाग्नि का वर्णन है। अठारहवें अध्याय में कृष्ण की विविध-क्रीड़ाओं का वर्णन है और भागवत के अनुसार ही बलराम द्वारा प्रलम्बासुर वध का वर्णन है। उन्नीसवें अध्याय में भागवत के अनुसार दावाग्नि से गोप, गो और ग्वालों की रक्षा का वर्णन है। बीसवें अध्याय में वर्षा और शरद ऋतुओं का वर्णन है। श्रीमद्भागवत में भी यही विषय है। इक्कीसवें अध्याय में भागवतपुराण के अनुसार गोपी-गीत वर्णित है। बाईसवें अध्याय में भागवतपुराण के अनुसार ही चीरहरण-लीला का वर्णन है। तेईसवें अध्याय में भागवतपुराण के अनुसार कृष्ण की आज्ञा से गोपों का ब्राह्मणों के यज्ञ में भोजन माँगने के लिए जाने की कथा वर्णित है। चौबीसवें अध्याय में भागवतपुराण के अनुसार ही इन्द्र-यज्ञ भंग करने की कथा वर्णित है। पच्चीसवें अध्याय में श्रीमद्भागवत के अनुसार कृष्ण के गोवर्द्धन-धारण और गोवर्द्धन पूजा की कथा वर्णित है। छब्बीसवें अध्याय में भागवतपुराण के क्रमानुसार नन्द और गोपों के वार्त्तालाप का वर्णन है। सत्ताईसवें अध्याय में इन्द्र द्वारा कृष्ण की स्तुति है। अट्ठाईसवें अध्याय में भागवतपुराण के अनुसार वरुणालय से नन्द के छुटाने की कथा का वर्णन हैं। उन्तीसवें अध्याय में भागवतपुराण के अनुसार वेणुगीत संगृहीत है और कृष्ण की रास-लीला का वर्णन है। श्रीमद्भागवत में २९ से ३३ अध्याय तक रास-क्रीड़ा काव र्णन है किन्तु 'भाषा दशमस्कंध' में २९ अध्याय ही हैं और इस उन्तीसवें अध्याय में पूरी रास-लीला का वर्णन नहीं है।

'भाषा दशमस्कंध' में भागवतपुराण के २९ अध्यायों की कथा ठीक उसी रूप में ली गई है।

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पौराणिक परम्परा का साहित्य

भारतवर्ष की जिन महान् आत्माओं ने मानव जाति के विचारों को स्थायी रूप से प्रभावित किया है, उनमें श्रीकृष्ण का नाम प्रमुख है। संस्कृत साहित्य और हिन्दी साहित्य का एक बड़ा भाग श्रीकृष्ण-चरित्र से ही सम्बन्धित है। श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं के मनोरम आख्यान, उनके गीताशास्त्र के महत्

उपदेश तथा महाभारत के युद्ध में उनके विविध आदर्शोचित कर्मों की कथाएँ आज प्रत्येक घर में प्रचलित हैं। असंख्य मनुष्यों का जीवन आज भी श्रीकृष्ण के आदर्श से प्रभावित होता है। वस्तुतः हमारे साहित्य का एक बड़ा भाग श्रीकृष्ण चरित्र से अनुप्राणित हुआ है।

श्रीकृष्ण के प्रति धार्मिक भावना का आविर्भाव ईसा की चौथी शताब्दी पूर्व ही हो चुका था। महाभारत के अधिकांश भागों में श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व एक राजनीतिज्ञ तथा नीतिनियामक के रूप में प्रकट हुआ है। वहाँ पर उनका जीवन केवल एक ऐतिहासिक महापुरुष से अधिक नहीं है। हायकिन्स आदि कतिपय यूरोपीय विद्वानों का विचार है कि महाभारत में श्रीकृष्ण केवल मनुष्य के रूप में ही आते हैं, बाद में वे देवत्व के पद पर अधिष्ठित हुए। किंतु कीथ के विचारानुसार महाभारत के कृष्ण देवत्त्व की भावना से पूर्ण हैं।[1] फिर भी इतना तो निश्चित है कि ईसा के चार सौ वर्ष के पूर्व के लगभग कृष्ण में देवत्त्व की भावना आ गई थी, क्योंकि पाणिनि के व्याकरण में वासुदेव और अर्जुन देव-युग्म हैं।

महाभारत में ब्रह्मा, विष्णु और महेश, तीनों का निर्देश है। किंतु विष्णु का महत्त्व सर्वोपरि है, क्योंकि विष्णु की भावना में अवतारवाद है। महाभारत में कृष्ण, विष्णु के अवतार हैं अवश्य किंतु उनका वर्णन इस अवतारी रूप की अपेक्षा एक श्रेष्ठ राजनीतिक पुरुष के रूप में ही अधिक हुआ है। महाभारत के भगवद्गीता के अंश में श्रीकृष्ण एक महान् उपदेशक के रूप में आते हैं, किंतु उनके गीता-शास्त्र के महान् उपदेशों का प्रभाव भी हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर नहीं पड़ा है।

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य को प्रभावित करनेवाला श्रीकृष्ण का वह बाल और किशोर जीवन है जो गोकुल, वृन्दावन और मथुरा में व्यतीत हुआ था। हिंदी कृष्णभक्ति-काव्य के कृष्ण न तो महाभारत वाले राजनीतिज्ञ कृष्ण हैं और न गीता के ही, बल्कि वे पूर्ण रूप से पुराणों के असुर-संहारी और गोपी-वल्लभ श्रीकृष्ण हैं। निःसंदेह उनकी अलौकिक वीरता—कंसवध, असुर-संहार, स्वेच्छा और स्वेच्छाचारी-शासकों का दमन—यह सभी कुछ महाभारत में है; परन्तु वहाँ वे गोप जीवन से दूर, बहुत दूर और राधा से तो सर्वथा शून्य ही हैं। इसके लिए हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पूर्ण रूप से पुराणों का आभारी है। हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य

---

१ Journal of the Royal Asiatic Society 1915 Page—548.

की भक्ति का मूल पुराणों में और विशेषकर वैष्णव पुराणों में सन्निहित है, और वैष्णव पुराणों में भी विशेष रूप से भागवतपुराण में। श्रीमद्भागवत में भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति होते हुए भी भक्ति की साकार मूर्ति राधा का निर्देश कृष्ण के साथ नहीं है, जब कि हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में श्रीकृष्ण के साथ ही राधा का भी पर्याप्त विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। वे कृष्ण की शक्ति कही गई हैं। राधा का वर्णन भागवत में तो नहीं है किन्तु ब्रह्मवैवर्त्तपुराण और पद्म-पुराण में पर्याप्त विस्तार से मिलता है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में राधा को कृष्ण की शक्ति और सर्वशक्तिस्वरूपा कहा गया है।[१] एक स्थान पर कहा गया है कि राधा कृष्ण की प्राणों से भी अधिक प्रिय है :—

प्राणाधिके राधिके त्वं श्रूयतां प्राणवल्लभे।
प्राणाधिदेवि प्राणेश प्राणाधारे मनोहरे।[२]

पद्मपुराण में भी राधा श्रीकृष्ण की शक्ति और माया के समान वर्णित हैं।[३] इस प्रकार यद्यपि श्रीमद्भागवत में राधा का वर्णन नहीं है, तथापि ब्रह्मवैवर्त्त और पद्मपुराण में राधा का वर्णन पर्याप्त रूप से हुआ है, जिसका हिन्दी कृष्ण-भक्ति-काव्य पर पूर्ण प्रभाव पड़ा है।

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य वस्तुतः पौराणिक परम्परा का ही साहित्य है। भक्ति, दर्शन, अवतारवाद और सृष्टिक्रम तथा राजवंश आदि जितने भी विषय हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य में हैं—सब पर पुराणों की स्पष्ट छाप है, जिन्हें हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं।

श्रीकृष्ण अवतार का जैसा विशद और काव्यमय वर्णन श्रीमद्भागवत में है, वैसा ही सरस और पूर्ण वर्णन हिन्दी के कृष्णभक्त कवियों ने किया है। हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य पर भागवत तथा अन्य वैष्णव पुराणों का पूर्ण प्रभाव है। अतः इस साहित्य को पौराणिक परम्परा का साहित्य मानना सर्वथा उचित है।

---

[१] ब्रह्मवैवर्त्त पु०, कृष्ण जन्म खण्ड, १५।६५ [२] ब्रह्मवैवर्त्त पु०, कृष्ण जन्म खण्ड, ५०।११ [३] पद्म पु० पाताल खण्ड, ७६।१५-१७

हिन्दी कृष्णभक्ति-काव्य

१—सूरसागर—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

२—सूरसागर सार—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा।

३—साहित्य लहरी—पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, पटना।

४—नन्ददास ग्रंथावली—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

५—नन्ददास : दो भाग—उमाशंकर शुक्ल।

६—परमानन्ददास पद संग्रह—दीनदयाल गुप्त।

७—मीराबाई की पदावली—परशुराम चतुर्वेदी।

८—रसखान और उनका काव्य—चन्द्रशेखर पाण्डेय।

९—रसखान दोहावली—जमुना प्रिंटिंग वर्क्स, मथुरा।

१०—रसखान कवितावली—नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।

११ रसखान रत्नावली—भारतवासी प्रेस, प्रयाग।

१२—सुजान रसखान—भारत जीवन प्रेस, काशी।

१३—सुदामाचरित्र—नरोत्तमदास, बैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

१४—रहिमन विलास—ब्रजरत्नदास।

१५—कवित्त रत्नाकर—सेनापति, सम्पादक, उमाशंकर शुक्ल।

१६—घनानन्द रत्नावली—संक० कवि 'किंकर'।

१७—भारतेन्दु ग्रंथावली—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

१८—रुक्मिणी परिचय—महाराज रघुराज सिंह, बैंकेटेश्वर प्रेस, बम्बई।

१९—उद्धवशतक—जगन्नाथदास 'रत्नाकर'।

२०—द्वापर—मैथिलीशरण गुप्त।

२१—प्रियप्रवास—अयोध्यासिंह उपाध्याय।

२२—कृष्णायन—द्वारकाप्रसाद मिश्र।

२३—हितचौरासी—हितहरिवंश।

२४—संक्षिप्त सूरसागर—बेनीप्रसाद।

२५—भँवरगीत—विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा।

२६—सुन्दर ग्रंथावली—पुरोहित श्रीहरिनारायण शर्मा।

हिन्दी के सहायक-ग्रन्थ

१—अष्टछाप—धीरेन्द्र वर्मा ।
२—मध्यकालीन धर्म-साधना—हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
३—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—दीनदयाल गुप्त ।
४—भारत सावित्री—वासुदेवशरण अग्रवाल ।
५—भारतीय साधना और सूर साहित्य—मुंशीराम शर्मा ।
६—भागवत-संप्रदाय—बलदेव उपाध्याय ।
७—हिन्दुत्व—रामदास गौड़ ।
८—हिन्दी-काव्य धारा—राहुल सांकृत्यायन ।
९—श्री राधा का क्रम विकास—शशिभूषण दास गुप्त ।
१०—चौरासी वैष्णवन की वार्ता—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।
११—सूरदास जी का जीवन चरित्र—मुंशी देवीप्रसाद ।
१२—हिन्दी साहित्य की भूमिका—हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
१३—राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य—विजयेन्द्र स्नातक ।
१४—हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल ।
१५—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—रामकुमार वर्मा ।
१६—हिन्दी साहित्य—श्यामसुन्दरदास ।
१७—हिन्दी साहित्य—हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
१८—हिन्दी साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन—रामकुमार वर्मा ।
१९—संस्कृत साहित्य का इतिहास—वरदाचार्य, अनु०-डॉ०कपिलदेव द्विवेदी
२०—महाभारत—इंडियन प्रेस, प्रयाग ।
२१—सूरदास—ब्रजेश्वर वर्मा ।
२२—प्राचीन कवियों की साधना—राजेन्द्र सिंह गौड़ ।
२३—ब्रजमाधुरी सार—वियोगी हरि ।
२४—मीराबाई का जवीन चरित्र—मुंशी देवीप्रसाद ।
२५—मीराबाई की शब्दावली—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद ।
२६—रासपंचाध्यायी और भँवरगीत—बालमुकुन्द गुप्त ।
२७—विद्यापति—जनार्दन मिश्र ।

२८—विद्यापति ठाकुर—उमेश मिश्र।

२९—श्री सूरदास जी का दृष्टकूट सटीक—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

३०—श्री हरिश्चन्द्र कला—खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर।

३१—सूर-सुषमा—नन्ददुलारे वाजपेयी।

३२—महिला मृदुबानी—मुंशी देवीप्रसाद।

३३—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—श्रीकृष्ण लाल।

३४—कला और संस्कृति—वासुदेवशरण अग्रवाल।

संस्कृत के सहायक-ग्रंथ

१—हरिभक्ति रसामृत-सिंधु—श्री रूपगोस्वामी, प्रकाशक—अच्युत ग्रंथमाला, काशी।

२—लघुभागवतामृत—श्री रूपगोस्वामी, प्रकाशक—खेमराज श्रीकृष्णदास, वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

३—काव्य-प्रकाश—मम्मट, प्रकाशक—आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना।

४—वेणी-संहार—भट्टनारायण

५—ध्वन्यालोक—आनन्दवर्धन

६—नलचम्पू—त्रिविक्रम भट्ट

७—उज्ज्वल नीलमणि—रूपगोस्वामी, टीका जीवगोस्वामी, सं०—दुर्गाप्रसाद वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पाणशीकर, प्रकाशक—पाण्डुरंग जनजी, निर्णय सागर, बम्बई।

८—श्री युग्मतत्व-समीक्षा—भगीरथ झा, 'मैथिल'।

९—युगल-शतक—श्रीभट्ट, प्रकाशक—व्रज विहारीशरण, वृन्दावन।

१०—गोपालोत्तर तापनी उपनिषद्

११—राधिका तापनी उपनिषद्

१२—नृसिंहोत्तर तापनी उपनिषद्।

अंग्रेजी के सहायक-ग्रन्थ

1—History of Indian Literature—Winternitz.

2—Vishnu Purana—H. H. Wilson.

3—Vaishnavism, shaivism and Minor Religious Systems—R. G. Bhandarkar.

4—The Purana text of the Dynastics of the Kali age with Introduction and notes.—Pargiter.

5—An outline of the Religious Literature of India—J. A. Farquhar.

6—Classical Sanskrit Literature—A. Kyth.

7—Chaitanya and his companions—Dinesh Chandra Sen.

8—Encyclopaedia of Religion and Ethics—James Hastings.

9—System of Vedanta—Diuision.

10—History of Indian Philosophy— Vol. I)—Das Gupta.

11—The Culturage Herital of India.
—Published by Ram Krishna Mission.

———

पौराणिक-साहित्य

१—श्रीमद्भागवत महापुराण—गीता प्रेस, गोरखपुर।
२—विष्णु महापुराण—गीता प्रेस, गोरखपुर।
३—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण—(भाषा दोनों भाग)—आनन्दाश्रम प्रेस, पूना।
४—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण—वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
५—पद्म पुराण—आनन्दाश्रम प्रेस, पूना।
६—वाराह पुराण—वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
७—नारद पुराण—अनु०—रामचन्द्र शर्मा, सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद।
८—गरुण पुराण—वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
९—लिंग पुराण—वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
१०—लिंग पुराण—नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।
११—मत्स्य पुराण—अनु०, रामप्रताप त्रिपाठी 'शास्त्री', हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
१२—स्कंद पुराण—वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
१३—अग्नि पुराण—आनन्दाश्रम प्रेस, पूना।
१४—कूर्म पुराण—वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
१५—वामन पुराण—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
१६—वामन पुराण—वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
१७—वायु पुराण—अनु०, रामप्रताप त्रिपाठी 'शास्त्री'।
१८—वायु पुराण—आनन्दाश्रम प्रेस, पूना।
१९—ब्रह्माण्ड पुराण—वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
२०—भविष्य पुराण—वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
२१—पद्म पुराण—(सदाम क्रियायोग सार खण्ड) अनु०, रामबिहारी शुक्ल, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
पद्म पुराण—(चतुर्थ ब्रह्म खण्ड) नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
पद्म पुराण—(स्वर्ग खंड तृतीय) नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
२२—पद्म पुराण—(सृष्टि-खंड प्रथम) वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
पद्म पुराण—(द्वितीय भूमि खंड) वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

पद्म पुराण—(पंचम पातालखंड) बैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
पद्म पुराण—(चतुर्थ ब्रह्मखंड) " " "
पद्म पुराण—(षष्ठमुत्तर-खंड) " " "
पद्म पुराण—(सप्तम खंड-क्रियायोगसार) " " "
२३—गरुण पुराण—अनु०—खूबचन्द्र शर्मा, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।
२४—गरुण पुराण—बैंकटेश्वर प्रेस, बंबई।